सुबह के भूले

लेखक

इलाचन्द्र जोशी

प्रकाशक

हिन्दी-भवन

जालंधर और इलाहाबाद

१९५४]

[मूल्य ५)

प्रकाशक—

इन्द्रचन्द्र नारंग

हिन्दी भवन

३१२ रानी मंडी

इलाहाबाद ३

पहला संस्करण १९५२

दूसरा संस्करण १९५४

मुद्रक—

इन्द्रचन्द्र नारंग

कमल मुद्रणालय

३१२ रानी मंडी

इलाहाबाद ३

सुबह के भूले

१

बंबई नगर के उत्तरी छोर पर, जहाँ शहराती तड़क-भड़क की रंगीनी मिटते-मिटते केवल एक अत्यंत सूक्ष्म धुएँ की रेखा के रूप में अवशिष्ट रह जाती है, गंदी झोपड़ियों की लंबी कतारें खड़ी हैं। कूड़ेखानों से बटोरे गये गंदे चीथड़ों, कागजों, गत्ते के टुकड़ों, नालियों में पड़ी हुई गंदी थैलियों या बाँस की खपचियों और इधर-उधर से भीख के रूप में माँगी गयी या चोरी-छिपे पेड़ों से काटी गयी मोटी लकड़ियों को जुटा कर वे झोपड़ियाँ तैयार की गयी हैं। म्युनिसिपल कार्पोरेशन ने बार-बार उन्हें गिराने का प्रयत्न किया है, पर बार-बार वे फिर-फिर ज्यों की त्यों खड़ी हो जाती हैं। कार्पोरेशन ने हार मान कर अंत में चुप्पी साध ली है। उन झोपड़ियों की संख्या बढ़ती ही चली जाती है और उनमें रहने वाले लोग दीन-हीन, क्लिष्ट-प्राण और जर्जर-शरीर होने पर भी इस कल्पना से प्रसन्न दिखायी देते हैं कि उन्होंने सारे विरोधों के बावजूद अपने लिये मुफ्त में 'जायदाद' जोड़ ली है; और वह भी बंबई शहर में!

उस गंदी बस्ती की सीमा पर बहने वाली घोर दुर्गंधयुक्त गंदी नाली के उस पार, टीन के शेडों या शेडनुमाँ छोटे-छोटे मकानों की एक छोटी सी कतार दिखायी देती है। एक शेड में एक ओर कुछ गायें खड़ी हैं और दूसरी ओर भैंसे। वे सभी अलग-अलग नाँदों से सानी-पानी ले रही हैं और साथ ही अपने शरीर के चारों ओर

भिनभिनाती मक्खियों को कभी पूँछ से भगाती हैं और कभी खुरों को जमीन पर पटक कर। पास ही दूध के कई बड़े-बड़े गोलाकार खाली टिन रखे हुए हैं।

दूसरी शेडनुमाँ कुटिया के बरामदे में एक तख्त पर मैली सी दरी बिछी है और उस पर एक साँवले रंग के, दुहरे बदन के तिलक-धारी सज्जन, जिनकी आयु प्रायः तीस वर्ष की होगी, लाल रंग के कपड़े की जिल्दवाला लंबा-सा बही-खाता खोले बैठे हैं। उनके चारों ओर कई व्यक्ति बैठे हैं, जो दूध की बिक्री का हिसाब बता रहे हैं।

उसी शेड के बाहर एक पेड़ के नीचे एक प्रायः छः साल की लड़की और एक आठ साल का लड़का गीली मिट्टी का एक छोटा स्तूप-सा खड़ा करने में व्यस्त हैं। लड़की एक गंदा-सा फ्राक पहने है। उसके रूखे और बिखरे बाल कई दिनों से धोये नहीं गये हैं, ऐसा लगता है। उसकी नाक बहती जाती है और वह बार-बार उस बहते हुए गाढ़े पानी को लंबी साँस द्वारा ऊपर को खींचती जाती है। हाथ से नाक साफ करने का अवकाश ही उसे जैसे नहीं है। लड़का बड़ा तेज-तर्रार मालूम होता है। वह लड़की के काम की अनिपुणता के लिए उस पर छींटे कस रहा है। स्वयं वह वास्तव में बड़ी सफाई से काम कर रहा है। बड़े ढंग से, दोनों हाथों में मिट्टी को उठाता है और बड़े करीने से, अभ्यस्त मिस्त्री की तरह, उसे सजाता है। बीच-बीच में दोनों में इस बात को ले कर बहस चल पड़ती है कि जिस मंदिर का निर्माण वे लोग कर रहे हैं उसमें शिवजी की प्रतिष्ठा होगी या महावीर हनुमानजी की। लड़की हनुमानजी की स्थापना के पक्ष में है। उसकी बातों से ऐसा लगता है कि

हनुमानजी का लाल-लाल, बंदरों का-सा, हँसता हुआ मुख उसे बहुत प्रिय लगता है। पर लड़का शिवजी की महत्ता के पक्ष में अकाट्य तर्क उपस्थित करता है। वह कहता है कि शंकर भगवान् बड़े सिद्ध देवता हैं। वह हँस-हँस कर विष पी जाते हैं। केवल पीते ही नहीं, गले में विष बराबर रखे भी रहते हैं। विष के कारण उनका गला एकदम नीला दिखायी देता है, पर चेहरा एकदम गोरा, उजला, खिला हुआ, प्रसन्न रहता है। वह तनिक सी स्तुति से प्रसन्न हो जाते हैं, पर हनुमान बाबा विना लड्डू लिये मानते ही नहीं। लड़की उसके तर्क को ध्यानपूर्वक सुनती है और उससे बहुत प्रभावित होती हुई सी लगती है; पर पलटे में हनुमानजी के पक्ष में प्रमाण उपस्थित करने से नहीं चूकती। वह कहती है कि हनुमान बाबा बहुत वीर हैं, उनकी कृपा रहने से भूत-पिशाच का कोई डर नहीं रहता और वह भक्त के दुश्मनों को पल में नष्ट कर देते हैं। वह हिचक-हिचक कर और कुछ-कुछ तुतला कर बोलती है। उसके कहने के ढंग से लगता है कि वह स्वयं अपने तर्क पर अधिक विश्वास नहीं करती और लड़के के तर्कों को पहले ही से अकाट्य माने बैठी है। और अपने आत्म-विश्वास की कमी के कारण वह मन-ही-मन अपने पक्ष में और अधिक तगड़े प्रमाणों को बटोरती जाती है। लड़का उसे बताता है कि हनुमानजी शिवजी के पुत्र हैं, क्योंकि वह शकर-सुवन कहलाते हैं, और लड़का अपने पिता से बड़ा कभी नहीं हो सकता। इस तथ्य के आगे फिर कोई तर्क चलाना व्यर्थ जान कर भी लड़की चुप नहीं होती। वह कुछ कहने ही जाती है कि सहसा भीतर से किसी स्त्री की तीखी आवाज़ सुनायी देती है :

"गुलबिया, अरी कहाँ खो गयी री !"

लड़का सुन कर कहता है : "जाओ, तुम्हारी अम्माँ बुला रही है।"

"आयी!" कह कर लड़की फिर अपनी बात का महत्त्व प्रमाणित करने की भरपूर चेष्टा करती है।

वह कहती है : "पुत्र होने से क्या होता है! रामचंद्र जी दशरथ जी के लड़के थे, पर इस कारण क्या दशरथ जी राम से बड़े माने जाते हैं?"

"गुलबिया, क्या कर रही है? आज क्या खाना खाने की भी सुध नहीं रह गयी?" भीतर से फिर नारी-कण्ठ का तीखा स्वर सुनायी देता है।

"आयी, अम्माँ!" पूरी ताकत से चिल्ला कर लड़की कहती है, पर अपनी जगह से टस से मस नहीं होती और मंदिर के गुंबद में मिट्टी थोपती हुई यह सुनने के लिए जम कर बैठी रहती है कि उसके अकाट्य तर्क के उत्तर में लड़का फिर क्या कहने का साहस करता है।

लड़का कुछ क्षणों के लिए बड़ी गंभीरता से सोचता रहता है। सहसा उसका मुरझाया चेहरा चमक उठता है। लगता है जैसे लड़की के अणु-बम के उत्तर में कोई परमाणु-बम उसके हाथ लग गया हो। वह कहता है : "दशरथ जी बड़े क्यों नहीं माने जाते! निश्चय ही माने जाते हैं। बप्पा अक्सर यह दोहा पढ़ा करता है :

राम नाम सब कोई कहे, दशरथ कहै न कोय।
एक बार दशरथ कहै, कोटि-जन्म फल होय॥

दशरथ कैसे छोटे हो सकते हैं! बेटा बाप से कैसे बड़ा हो सकता है!" और यह कह कर वह विजय के उल्लास से चमकती आँखों से, चुनौती की मुद्रा में लड़की की ओर देखता है।

लड़की का चेहरा एकदम फक रह जाता है। संभवतः वह सोचती है कि दोहे के खंडन में उसका कोई भी तर्क क्या काम कर सकता है। वह सकपकायी हुई सी रह जाती है और रोनी सी सूरत बन जाने पर उसके तमतमाये हुए चेहरे से लगता है, वह भीतर ही भीतर अपनी हार को निश्चित समझने पर भी प्रकट में हार स्वीकार करने के लिए कतई तैयार नहीं है। वह अपनी खीझ को भरसक दबाने का प्रयत्न करती हुई कुछ सोचती रहती है। सोचते-सोचते एक नया तर्क उसे सूझ जाता है। वह कहती है: "दोहे में ऐसा कहा गया तो क्या हुआ, चौपाई दोहे से बड़ी होती है। चाचा एक बार अम्माँ को बता रहे थे कि राम नाम की यह महिमा है कि उलटा नाम जपने—'मरा' 'मरा' कहने—से वाल्मीकि ब्रह्म के समान हो गये थे। दशरथ के नाम को उलटा जपने से कोई फल नहीं होता।" कहती हुई वह बलपूर्वक अपनी विजय प्रमाणित करने के लिये खीझ में ही दो-तीन बार लड़के को अँगूठा दिखाती है।

"तुम दोनों को झगड़ने से ही फुर्सत नहीं मिलती, खाने की सुध कहाँ से होगी," पीछे से प्रायः छब्बीस-सत्ताइस साल की एक स्त्री आ कर कहती है। "चिल्लाते-चिल्लाते मेरा गला फट गया है, पर इस दुष्ट लड़की के कान में जूँ तक नहीं रेंगती! अपना सारा फ्राक और दोनों हाथ मिट्टी से गंदे कर लिये हैं। तिस पर गुस्सा देखो! यह सब क्या हो रहा है? किस बात के लिए झगड़ रहे हो तुम दोनों? चल उठ! दोपहर हो गयी—सुबंह एक टुकड़ा मठरी का खाया था, उसके बाद पानी तक मुँह में नहीं डाला। तिस पर भी लड़ने को ताकत जाने कहाँ से आ गयी है!" कह कर उस झल्लाहट की ही मनोदशा में वह लड़की का दायाँ हाथ पकड़

कर उसे उठाती है।

"अच्छा अम्माँ, तुम्हीं बताओ, दशरथ से राम बड़े हैं कि नहीं ?" अम्माँ के आँचल का सहारा पा कर लड़की दुगने उत्साह से अपनी बात पर जोर देती है।

लड़की का विचित्र प्रश्न सुन कर और उसके मुख के गंभीर भाव और चेहरे की तमतमाहट पर गौर करके युवती अपनी खिज-लाहट में भी हँस पड़ती है।

"क्या इसी बात को ले कर तुम दोनों झगड़ रहे हो, क्यों किशन ?" वह लड़के को संबोधित करके पूछती है।

किशन गुलबिया की अम्माँ को देख कर कुछ सहम जाता है। झेंपता हुआ-सा कहता है : "हाँ चाची, दोहे में कहा गया है कि 'एक बार दशरथ कहै कोटि जन्म फल होय।' दोहा क्या कभी गलत हो सकता है !"

"पर चौपाई में जो राम के लिए कहा गया है कि 'उलटा नाम जपत जग जाना, बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।' चौपाई क्या दोहे से बड़ी नहीं होती ? क्यों अम्माँ ?" लड़की कहती है।

"बड़ी नहीं होती, चौपाई छोटी होती है", अपनी जिद में किशन गुलबिया की अम्माँ के अस्तित्व को भूल जाता है और तमक कर उठ खड़ा होता है।

"तुम झूठ कहते हो।" गुलबिया अपना अँगूठा दिखाती हुई कहती है।

"तुम हो झूठी।" किशन ढिठाई में उत्तर देता है।

"मुझे झूठा बताते हो ? तब लो ! लो ! लो !" कह कर क्रोध में काँपती हुई गुलबिया मंदिर पर तीन बार लात मार कर गिरा देती है।

"बप्पा कहता है कि मंदिर पर लात मारने से पाँव में कुष्ट हो जाता है !"

"जो दूसरे को गाली देता है उसी के पाँवों में कुष्ठ होगा !" पूरी ताकत से चिल्ला कर गुलबिया कहती है ।

"अरे ये दोनों तो सचमुच लड़ने लगे !" युवती कहती है । "किशन, तुम्हें क्या हो गया ? तुम उम्र में सयाने हो, तुम्हीं चुप क्यों नहीं हो जाते ?"

"क्या बात हो गयी ?" कहते हुए बरामदे से तिलकधारी सज्जन उठ कर घटना-स्थल पर पहुँच जाते हैं । यह वही व्यक्ति है जो कुछ ही समय पहले बहीखाते में दूध की बिक्री का हिसाब लिख रहे थे । उनके मुख पर चिंता की छाप स्पष्ट दिखाई देती है । उनके पीछे दो-तीन आदमी और चले आते हैं ।

"चाचा, यह किशन मुझसे कहता है कि तुम झूठी हो । यह मुझे गाली देता है और कहता है कि तुम्हारे पाँवों में कुष्ठ हो जायगा ।"

"क्या बात है, किशन ?" तिलकधारी सज्जन कुछ गंभीर भाव से प्रश्न करते हैं ।

"कुछ नहीं, चाचा । हम लोग मंदिर बना रहे थे, गुलबिया ने लात मार कर मंदिर को गिरा दिया"

"क्यों बिटिया, क्या बात है ?" तिलकधारी सज्जन लड़की से पूछते हैं ।

"कुछ नहीं, चाचा, यह कह रहा था, राम से दशरथ बड़े हैं । अच्छा चाचा, तुम्हीं बताओ, राम बड़े हैं कि नहीं ?"

"ज़रूर हैं बिटिया, पर इस बात के लिए इस तरह लड़ने-

झगड़ने की नौबत कैसे आ गयी ?"

"यह किशन बहुत दुष्ट है चाचा, मैं आज से इससे कभी नहीं बोलूँगी, देख लेना ? मैं कभी इसका मुँह नहीं देखूँगी।" और यह कहते हुए उसकी आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगते हैं।

"पगली कहीं की" कह कर तिलकधारी सज्जन उसके गालों पर स्नेह से हाथ फेर कर उसे चुमकारते हैं। "अब चलो, घर चल कर खाना खा लो।" कह कर वह उसका हाथ पकड़ कर धीरे से घर की ओर ले जाते हैं।

"जाओ किशन, तुम्हारे बप्पा तुम्हें बुला रहे हैं" युवती किशन से कहती है। किशन भी धीरे से घर की ओर चला जाता है।

२

जो साँवले रंग के, दुहरे बदन के तिलकधारी सज्जन बहीखाते में हिसाब लिख रहे थे उनका नाम है महावीर सिंह। वह बंबई में दूध का व्यवसाय करते थे। वह रहने वाले सीतापुर जिले के थे। एक दिन किसी कारण से अपने बाप से, जो एक गरीब किसान था, झगड़ कर, एक धोती, एक चादर और एक लोटा बगल में दबा कर घर से भाग निकले थे और कई जगह भटकने के बाद अंत में बंबई जा पहुँचे थे। वहाँ भी कुछ दिनों तक अकेले माथा पटकते रहे, यहाँ तक कि भूखों मरने की नौबत आयी। एक दिन बड़े भाग्य से एक मोटर के नीचे दबने से बच गये थे। उन्हें इस बात का पता था कि उनके गाँव के कुछ आदमी बंबई में दूध का व्यवसाय करते हैं। पर वे कहाँ रहते हैं इसकी कोई जानकारी उन्हें नहीं थी। कई दिनों तक भटकने के बाद अंत में एक दिन उन्हें विक्टोरिया टार्मिनस के बाहर

एक दूधवाला 'भैया' दिखाई दिया। उसे घेर कर उन्होंने कई महत्त्व-पूर्ण सूचनाएँ उससे प्राप्त कीं। उत्तरप्रदेश से आये हुए दूध वाले किन-किन स्थानों में रहते हैं और उनके अपने परिचित व्यक्ति के मिलने की संभावना किन स्थानों में हो सकती है, यदि कोई नया आदमी, जिसके पास अधिक पैसा न हो, दूध का व्यवसाय चलाना चाहे तो किस तरह के उपाय उसे करने होंगे, आदि प्रश्नों का उत्तर उन्होंने प्राप्त कर लिया। उसके बाद अपने परिचित व्यक्ति को ढूँढने में उन्हें कोई खास परेशानी नहीं उठानी पड़ी।

उस परिचित व्यक्ति का नाम बैजनाथ था। वह महावीर से उम्र में प्रायः तीन साल बड़ा था। उस समय बैजनाथ की अवस्था प्रायः २८ वर्ष की थी और हमारे महावीर सिंह की प्रायः पचीस वर्ष की। बैजनाथ शींव में टीन की चादरों से छाये हुए एक शेडनुमाँ मकान में रहता था। उस समय उसके पास केवल तीन भैंसे थीं। उसने अपने ही गाँव के एक लड़के को नौकर रख लिया था। वह सुबह (बल्कि रात) तीन ही बजे उठ जाया करता था और भैंसों को दुह कर, लड़के को साथ ले कर पौ फटने के पहले ही दूध के दो बड़े-बड़े टिन ले कर एक स्थानीय गाड़ी पर सवार हो जाता था। कुछ सत्तू, नमक और मिर्चा भी साथ में रख लेता था। प्रायः नित्य ही उसे लौटने में देर हो जाया करती थी, इसलिए कहीं किसी पार्क में बैठ कर दोनों सत्तू फाँक कर काम चला लेते थे।

महावीर की यह हालत थी कि प्रारंभ में कुछ दिनों तक उसे व्यस्त बैजनाथ से खुल कर बातें करने का मौका नहीं मिला। एक दिन महावीर ने निश्चय किया कि तड़के उठ कर बैजनाथ के साथ गाड़ी पर सवार हो कर दिन-भर उसी के साथ चक्कर काटता रहेगा।

उसने ऐसा ही किया और उस दिन दोनों के बीच खुल कर बातें हो पायीं। बैजनाथ ने उसे सलाह दी कि वह पहले कुछ समय तक कहीं नौकरी कर ले और प्रति मास कुछ रुपये बचाता जाय। एक भैंस खरीदने लायक़ रुपये जमा हो जायँ तो तुरंत भैंस खरीद लें।

महावीर ने उसकी बात गाँठ बाँध ली। एक महीने के भीतर ही उसे एक मिल में नौकरी मिल गयी। वहाँ वह कभी दिन भर और कभी रात की ड्यूटी पड़ने पर रात भर खटता रहता था। रूखा-सूखा खा कर वह प्रतिमास रुपये बचाता रहा। छः महीने की नौकरी के बाद वह इस स्थिति में हो गया कि एक भैंस खरीद सके। बैजनाथ ने एक अच्छी सी भैंस उसके लिये खरीद दी। कुछ रुपया कम पड़ गया था, उसे बैजनाथ ने उधार दे कर पूरा कर दिया। महावीर नौकरी छोड़ कर भैंस की सेवा में जुट गया।

वह भैंस उसके लिये कामधेनु सिद्ध हुई। दूसरे ही वर्ष उसने एक भैंस और खरीद ली। उसे दूध के व्यवसाय में अच्छा लाभ होने लगा और प्रतिवर्ष वह नयी भैंस या गाय खरीदता रहा। इस तरह उसका स्टाक बढ़ता चला गया।

इस बीच बैजनाथ गाँव जा कर एक स्त्री को अपने साथ बंबई ले आया था। एक प्रायः तीन साल की लड़की भी उसके साथ थी। स्त्री की आयु बाईस-तेईस के करीब लगती थी। महावीर ने उस स्त्री को पहले कभी नहीं देखा था। उसे यह भी मालूम था कि बैजनाथ का विवाह भी तब तक नहीं हुआ था। तब वह स्त्री कौन हो सकती है, जिसके साथ तीन वर्ष की एक लड़की भी है? अपना कुतूहल न दबा सकने के कारण उसने अकेले में बैजनाथ से पूछा। बैजनाथ ने मंद-मंद मुस्कराते हुए बताया कि वह अपनी बिरादरी के

किसी एक आदमी के विवाह में दूसरे गाँव गया हुआ था, वहाँ उस स्त्री से उसकी भेंट हो गयी। पहली भेंट से वह उसे चाहने लगा था। उसने किसी तरह सिलसिला लगा कर उसके यहाँ आना-जाना शुरू कर दिया। मालूम हुआ कि वह विधवा है और अपनी इकलौती लड़की को साथ ले कर अपनी मौसी के यहाँ रहती है, क्योंकि मायके में भी उसका कोई नहीं है। जल्दी ही इस बात का पता भी उसे लग गया कि मौसी के यहाँ वह बहुत कष्ट के दिन बिता रही है।

"जानते हो महावीर," बैजनाथ ने पुलक भरी आँखों से महावीर की ओर देखते हुए कहा, "उसे देखते ही मेरा जी ललचा गया था, और जब मैंने जाना कि न उसकी ससुराल में और न मायके में कोई रह गया है और मौसी के यहाँ वह कष्ट में रहती है, तब मैंने निश्चय कर लिया कि जैसे भी हो उसे हथिया कर ही रहूँगा। मैंने पहले ही दिन ताड़ लिया था कि वह मुझसे बाहर से नाराज है पर भीतर से नहीं। इसलिए मेरी हिम्मत और बढ़ गई। एक दिन जब मैं उसके घर गया तब वह उपले पाथ रही थी। उसने मुझे नहीं देखा, पर मौसी ने दूर ही से मुझे देख और पहचान लिया था। मौसी मुझे पहले ही से जानती थी। रिश्ते में वह मेरी भी मौसी ही लगती थी। 'कहो बैजू, कब आये बेटा? अच्छे तो हो? आओ बैठो', कह कर उन्होंने चौपाल के पास एक खटिया पर बैठने को कहा। मैं बैठ गया। झमिया ने एक बार मेरी ओर देखा और फिर भीतर चली गयी। कुछ देर तक मैं मौसी से बातें करता रहा। उसके बाद मैंने कहा कि मुझे प्यास लगी है। 'अरी ओ झमिया, सुनती नहीं', मौसी ने वहीं से हाँक लगाना शुरू किया; 'बैजू आया हुआ

है बंबई से। उसके लिये पानी ले आ। कहाँ मर गयी तू, कुलच्छनी राँड़ कहीं की! जब से यह सत्यानासी लड़की विधवा हो कर मेरे यहाँ आयी है बेटा, तब से मेरे घर से लछमी चली गयी है। पिछले साल से फसल ही मारी गयी है। अपने भतार को तो यह चुड़ैल खतम ही कर चुकी थी, मेरे यहाँ पाँव रखते ही इसने मेरे देवर पर न जाने क्या धूल फेंकी, एक ही महीने बाद वह भी चल बसे। अभी न जाने यह घर-वाली क्या क्या करने वाली है। अरी, पानी लाती है या नहीं!' कह कर मौसी खुद उठ खड़ी हुई। पर इतने में झमिया नीची नजर किये हुए, एक गिलास में पानी ले आयी। मैंने पानी पिया और फिर मौसी से विदा हो कर घर लौट गया। दूसरे दिन मैं फिर उसके घर गया। उस दिन भी वह कंडे पाथ रही थी। पता चला कि घर पर कोई नहीं है, मुझे देखते ही वह लजाती हुई मुँह फेर कर खड़ी हो गयी। मैंने कहा: 'झमिया, क्या मेरे साथ बंबई चलोगी? मेरे भी कोई नहीं है, मैं तुम्हें वहाँ बड़े सुख से रखूँगा। तुम्हें किसी तरह की तकलीफ नहीं होने दूँगा।' मेरी बात सुनते ही झमिया ने घूँघट तनिक लंबा खींच लिया। मैं शर्मिंदा हुआ कि मेरे मुँह से क्या बात निकल गयी। मैं कुछ देर तक चुपचाप खड़ा रहा। वह भी चुपचाप उपले पाथती रही। एक लंबी साँस खींच कर जब मैंने कहा: 'अच्छा, तब मैं चलता हूँ, झमिया। कह नहीं सकता, फिर तुमसे कभी भेंट होगी या नहीं।' उसने बिना मेरी ओर देखे ही पूछा: 'कब जा रहे हो बंबई?' मैंने कहा: 'जाना तो जल्दी ही चाहता हूँ। पर तुम कहो तो कुछ दिन और रुक जाऊँ।' 'नहीं' 'नहीं,' उसने धीरे से कहा: 'पर जब जाने लगो तो एक बार जरूर मिल लेना। मेरी आशा ने फिर

जोर मारा। 'अच्छी बात है, तो इस समय जाता हूँ', कह कर मैं चलने लगा। 'तनिक सुनना!' पीछे से आवाज आयी। मैं लौटा। झमिया का चेहरा उदास हो आया था। आँखों के कोयों में आँसू चमक रहे थे। 'क्या बात है?' उसके पास जा कर मैंने घबराहट के साथ पूछा। 'तो क्या तुम सचमुच बंबई लौट जाओगे? यहीं आ कर क्यों नहीं बस जाते? उतनी दूर तुम्हें क्या अच्छा लगता है?' मैंने कहा : 'वहाँ मैंने दूध का व्यापार खोल रखा है, झमिया। कई भैंसें और कई गायें हैं। कारबार बहुत बढ़ा लिया है, उसे छोड़ कर अभी नहीं आ सकता। बंबई बड़ी अच्छी जगह है, तुम देखोगी तो तबीयत खुश हो जायगी। बहुत बड़ा शहर है और हर सड़क में चौबीसों घंटे चहल-पहल रहती है। मेला सा लगा रहता है। जहाँ जाओ वहीं ट्रामों, बसों और मोटरकारों की भरमार रहती है। आसमान के ऊपर हवाई जहाज चलते रहते हैं। रात में सारा शहर बिजली की बत्तियों से जगमगा उठता है। रोज सिनेमा देखोगी। 'पर तीन साल की नन्हीं बच्ची को साथ ले कर मैं कैसे जा सकती हूँ?' जमीन की ओर देखते हुए उसने कहा। मैंने कहा : 'इससे भी छोटी बच्चियों को साथ ले कर लोग बड़ी दूर-दूर से वहाँ आते हैं। अपना मन पक्का कर लो झमिया, और मेरे साथ चली चलो। तुम्हें और तुम्हारी बच्ची को मैं हर तरह से आराम से रखूँगा...' 'अच्छा तीन दिन बाद फिर कहीं अकेले में मिलने की कोशिश करना।' कहते ही उसने फिर मुँह फेर लिया और उपले पाथने लगी। मेरा मन आशा और निराशा के बीच में झूल रहा था। एक लंबी साँस खींच कर उस दिन मैं अपने गाँव वापस चला गया। तुम जानते हो, बाबाखेड़ा से हमारा गाँव दो कोस पर है। मैं रास्ते भर इतना

सोचता रहा कि सारा रास्ता कब और कैसे पार हो गया, इसकी कोई खबर ही मुझे नहीं रही। तीन दिन बाद मैं फिर बाबाखेड़ा गया। दोपहर ही झमिया की मौसी के यहाँ पहुँच गया। न मौसी मिली, न झमिया। अकेले मौसा चोपाल के पास इमली के पेड़ की छाया में बैठे हुए तमाखू पी रहे थे। 'कहो बैजनाथ, कैसे आये?' मौसा ने पूछा। मैंने कहा : 'यों ही; बहुत दिनों से मौसी से भेंट नहीं हुई थी। कहाँ हैं मौसी?' 'खेत में गयी है, अभी आती ही होगी। बैठो।' 'फिर आऊँगा मौसा, तब तक एक दूसरी जगह हो आऊँ।' कह कर मैं मौसा से पिंड छुड़ा कर भागा। मौसा का खेत किस ओर हो सकता है, इसका कुछ-कुछ अंदाज मुझे था। मैं उसी ओर बढ़ा। कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर मैंने देखा, झमिया लकड़ियों का एक गट्टर सिर पर रख कर अकेली चली आ रही है। मुझे देखते ही वह पहले कुछ सिटपिटायी और इधर उधर देखने लगी। मैंने उसकी ओर उँगली से इशारा करके पास ही पीपल के एक पेड़ की ओट में चलने के लिये कहा। उसने फिर एक बार इधर-उधर झाँका और फिर मेरी ओर चली आयी। पेड़ की ओट में जब हम दोनों खड़े हो गये तब मैंने धीरे से उससे पूछा : 'तो झमिया, तुमने क्या तय किया? मैं परसों जा रहा हूँ।' उसने कहा : 'मैं भी चलूँगी।' और उसने दो बूँद आँसू टपका दिये। मैंने कहा : 'तब रोती क्यों हो? अपना मन मजबूत कर लो और खुशी खुशी चलो।' मैंने अपना मन मज़बूत कर लिया है,' बायें हाथ से लकड़ी का गट्टर दबा कर दायें हाथ से आँखें पोंछते हुए उसने कहा। मैंने पूछा : 'तो मैं कब और किस समय आऊँ?' वह बोली : 'परसों संझा को अँधेरा होने पर सामने वाले मुतहा कुएँ पर मिलो।' मैंने कहा : 'अच्छी बात

है, इस समय तुम जाओ। कोई हमें देख लेगा तो सारा भंडा फूट जायगा।' और मैं अपने गाँव की ओर लौट चला।

"तीसरे दिन मैंने अपनी गठरी बगल में दबायी और साँझ होने तक बाबाखेड़ा पहुँच गया। जब काफी अँधेरा हो गया तब उसी 'भुतहा' कुएँ पर पहुँचा जहाँ झमिया ने मिलने के लिये कहा था। काफी देर हो गयी और वह नहीं आयी। मेरी घबराहट और नाउम्मेदी का ठिकाना नहीं था। आखिर एक काली छाया सी मेरी ओर आती हुई दिखायी दी। एक बार खयाल आया कि मैं भुतहा कुएँ पर खड़ा हूँ। कहीं सचमुच कोई भूत न हो। थोड़ी देर में जब वह छाया एकदम निकट आ गयी तब मैंने कहा : 'तुम झमिया हो या कोई और ?' मैंने देखा कि वह काले रंग की धोती पहने और घूँघट काढ़े हुए थी और हाथ में कुछ लिये हुए थी, जिसे उसने धोती से ढक रखा था। उसे चुप देख कर मैं सचमुच घबरा उठा। मैंने सुन रखा था कि उस भुतहा कुएँ में भुतनियाँ मर्दों को बहकाने के लिये तरह-तरह का रूप धर कर आती हैं। एक सेकेंड तक मुझे अपने पाँवों से ले कर सिर तक झनझनाहट सी मालूम होती रही। पर फिर मैंने हिम्मत बाँध कर उसका हाथ पकड़ ही लिया। अगर वह भुतनी होती तो मेरे उसे छूते ही वह गायब हो जाती। इसलिये जब मैंने देखा कि वह गायब भी नहीं हुई और उसका हाथ भी बरफ की तरह ठंडा नहीं है—जैसा कि भूत-भुतनियों का होना चाहिये—बल्कि काफी गरम लगता है, तब मैं समझ गया कि वह या तो झमिया हैं या कोई दूसरी औरत। मैंने जेब से दिया-सलाई निकाल कर जलायी और उसका घूँघट खोल कर देखा। वह झमिया ही थी। वह चुपचाप रो रही थी और सिर नीचा किये उदास

खड़ी थी। उसकी गोद में बच्ची सो रही थी। मेरा जी भी उसे उस हालत में देख कर उदास हो गया। मैंने धीरे से—फुसफुसाते हुए उसके कानों में कहा : "झमिया, अगर तुम्हारा जी चलने को न हो तो यहीं रह जाओ। मैं तुम्हें इस तरह रुला कर ले चलना नहीं चाहता।" उसने आँखें पोंछते हुए कहा : 'नहीं, मुझे जरूर ले चलो। मैं अब मौसी के साथ नहीं रह सकती।' मैंने कहा : 'तब रोओ मत, खुशी-खुशी चले चलो। मैं फिर तुम्हें यकीन दिलाता हूँ कि तुम सुख से रहोगी। बिलकुल न घबराओ। चलो।' और हम दोनों उस अँधेरे में, जब कि सारा गाँव मसान की तरह सूना पड़ा हुआ मालूम होता था, लंबे सफर के लिये बढ़ चले। स्टेशन वहाँ से तीन कोस पर है, यह तुम जानते हो। चूँकि हम लोग चुपचाप भाग कर जा रहे थे, इसलिये बैलगाड़ी का कोई इंतजाम मैंने नहीं किया था। किसी तरह गिरते-पड़ते हम लोग रात बारह बजे के करीब स्टेशन पहुँचे। सुबह पाँच बजे के पहले लखनऊ की गाड़ी नहीं मिल सकती थी। इसलिये स्टेशन पर ही रात काटी। मुझे डर था कि गाँव का कोई आदमी हम लोगों को पहचान न ले। झमिया सब समय लंबा घूँघट काढ़े रही। किसी को पता न चला। हम लोग कुशल से लखनऊ पहुँच गये और वहाँ से सीधे बंबई चले आये।"

महावीर ने जब यह किस्सा सुना तब उसके मन की जीभ में पानी भर आया। झमिया को उसने अच्छी तरह देख लिया था। वह जैसी ही स्वस्थ और सुंदर थी वैसी ही सुशील और शांत भी। वह मन ही मन बैजू के भाग्य की सराहना करने लगा। बैजू भी अपने भाग्य पर स्वयं बहुत प्रसन्न था। झमिया को बंबई ला कर

उसने एक उत्तर प्रदेश के ही पंडित को बुला कर उससे नियमित रूप से—मंत्रविधि द्वारा—विवाह कर लिया। झमिया की बिरादरी में विधवा-विवाह प्रचलित था। झमिया नयी जगह में आ कर प्रारंभ में कुछ दिन काफी उदास रही, पर फिर धीरे-धीरे उसे आदत पड़ गयी और वह भी काफी खुश दिखायी देने लगी।

झमिया की वजह से महावीर को बहुत आराम मिलने लगा था। दिन भर की मेहनत और दौड़-धूप के बाद रात में उसे 'भौजी' के हाथ की पकी-पकायी रोटी मिल जाती थी, जिसे खा कर उसकी सारी थकावट दूर हो जाती थी।

तड़के सबेरे उठ कर, रात सात आठ बजे तक भैंसों को सानी-पानी देने, दुहने और शहर में दूर-दूर तक रेलगाड़ी से जा कर दूध बाँटने में महावीर का सारा समय बीत जाता था। अपने संबंध में सोचने का उसे केवल उतना ही समय मिलता था जितना गाड़ी में जाने और आने में लगता था। गाड़ी में बैठे-बैठे या खड़े-खड़े वह सोचता कि यदि बैजनाथ की तरह वह अकेले से दुकेला हो पाता तो सुखी जीवन बिता पाता। सुबह से शाम तक वह जो खट रहा है और एक घड़ी चैन की साँस नहीं ले पाता, वह सब किसके लिये? अकेले के लिये इतना करने की क्या जरूरत है? थोड़ा-थोड़ा करके वह जो रुपया-पैसा जमा करता जाता है वह सब किसके लिये? अहा, बैजनाथ कैसा सुखी है! भौजी की तरह सयानी, समझदार और हमदर्द कोई औरत अगर उसे भी मिल जाती तो...! और ऐसा सोचते हुए उसकी आँखें चमक उठतीं। फिर वह सोचता : "अच्छा भौजी ने इतनी हिम्मत कहाँ से पायी कि एक बेवा औरत होने पर भी कुछ ही दिनों की जान पहचान से बैजू के साथ भाग

निकली ? देखने में वह बहुत ही सीधी, भोली और भली लग
है। जरूर मौसी के यहाँ उसे बहुत तकलीफ रही होगी और ि
जिसका संसार में अपना कहने का कोई न हो उसका दिल किसी
आदमी से थोड़ी-सी हमदर्दी पा कर पिघल ही जाता है। बैजू
बताया कि जब वह चलने को राजी हुई तब रोने लगी थी। बेच
को अपने पिछले आदमी की याद आयी होगी। वह जरूर
बहुत भला आदमी रहा होगा। बेचारा ऐसी सुन्दर मेहरारू
भरी जवानी में अकेला छोड़ कर चल बसा।" और महावीर
मन में उस अनजाने और अनदेखे आदमी के प्रति ऐसी सहानुभू
उमड़ उठती कि उसकी पलकें गीली हो जातीं।

३

दिन बीतते चले गये और महावीर का कारबार भी बढ़ता चर
गया। यहाँ तक कि उसने कुछ ही समय के भीतर अपनी भैंसों
संख्या बैजनाथ से अधिक बढ़ा ली। बैजनाथ के पास अभी त
केवल तीन ही भैंसें थीं और महावीर ने पाँच तक संख्या पहुँचा
थी और दो आदमी नौकर रख लिये थे। अब वह बैजनाथ के य
नहीं खाता था। स्वयं उसका आदमी उसके लिये खाना बनाता था
टीन के छाये जिस 'शेड' में बैजनाथ रहता था उसे महावीर
कुछ और बढ़ा लिया था और अलग रहते हुए भी उसी में रहता था
दिन में वह अब भी कभी-कभी सत्तू फाँक कर ही काम चला लि
करता था और कभी रात की बनी हुई रोटी से काम चला लेता
पर भौजी के हाथ की पकी रोटियाँ खाने का प्रलोभन अब भी उस
मन में बराबर बना रहता था। और बीच-बीच में वह शाम को ठी

बैजनाथ के खाना खाने के समय पहुँच जाता था। "भौजी, प्रसाद पाने आया हूँ।" कह कर बैठ जाता।

"आओ देवर, आओ, बैठो। अरी गुलबिया, एक पीढ़ा तो बिछा दे अपने चाचा के लिये।"

तीन साल की बच्ची अब पाँच साल की गुलबिया में बदल गया थी। लड़की काफी समझदार मालूम होती थी। जब से वह बंबई आयी थी तभी से महावीर उसे गोद में खेलाता था और उसके लिये प्रायः प्रतिदिन एक या दो पैसे की कोई चीज़—लेमन ड्राप, बिसकुट आदि—ले आता था। फल यह हुआ कि बच्ची अपने नये बाप की अपेक्षा 'चाचा' को अधिक चाहने लगी थी। माँ की आज्ञा पाते ही गुलबिया चट से एक छोटी सी चटाई उठा कर महावीर के आगे रख देती और साफ शब्दों में कहती : "बैठो चाचा !"

महावीर तत्काल उसे प्यार से गोद में बिठा लेता और उसकी पीठ पर हाथ फेरता हुआ कहता : "अच्छा रानी बिटिया, यह तो बताओ, तुम्हारे बाबू अच्छे हैं या चाचा ?'

"चाचा अच्छे हैं, बाबू गंदे हैं।" लड़की तत्काल उत्तर देती।

बैजनाथ और झमिया दोनों हँस पड़ते। उसके बाद ही बैजनाथ डाँट बताते हुए कहता : "कल से बाबू तुम्हें खाने को नहीं देंगे, अपने घर से निकाल देंगे। तुमने बाबू को गंदा क्यों बताया ?"

"खूब बताया, ठीक बताया !" गुलबिया निडर हो कर उत्तर देती। "तुम निकाल दोगे तो हम अपने चाचा के यहाँ चले जायेंगे ! क्यों चाचा ?"

"हाँ, रानी बिटिया, चाचा के यहाँ रहोगी तो चाचा तुम्हें बढ़िया-बढ़िया चीजें खाने को देंगे। पर बाबू भले ही गंदे हों, अम्माँ

के बिना तुम चाचा के यहाँ कैसे रहोगी ?" महावीर पूछता।

"अम्माँ भी गंदी है, हमें मारती है। कल हमने थोड़ा सा दू गिरा दिया तो इसने हमें क्यों मारा ! हम उसके साथ भी नह रहेंगे !"

सुन कर फिर तीनों हँस पड़ते। झमिया एक छोटी सी थाल में एक रोटी और साग महावीर के लिए बढ़ा देती। महावीर स्व भी भौजी का 'प्रसाद' पाता और गुलबिया को भी खिलाता था।

संध्या के भोजन के बाद प्रायः प्रतिदिन एक घंटे के लिये बैजना के 'शेड' के बाहर खुले पर पास-पड़ोस के प्रायः सभी 'भैया' लो इकट्ठे होते। सभी उत्तर प्रदेशीय दूधवाले प्रारंभ ही से बंबई 'भैया' नाम से प्रसिद्ध हैं। (और अब यह 'आदर-सूचक' श केवल दूधवालों तक ही सीमित न रह कर सभी हिंदी भाषाभाषि के लिये प्रयुक्त होता है।) उस बैठक में मातादीन चौबे नाम एक मथुरावासी सज्जन भी अक्सर सम्मिलित होते थे। सच पू जाय तो मातादीन चौबे के बिना बैठक जमती ही नहीं थी। चौबे का जन्मस्थान खेरी जिले में था, जो सीतापुर के पास ही है। उन कहना था कि उनके पुरखे मथुरा के निवासी थे। और बाद में खे जा कर बस गये थे। उन्हें कोई 'चौबे जी' कहता, कोई 'पंडित जी' चौबे जी शींव में पान बीड़ी की दुकान खोले हुए थे। उनके ग्राह अधिकतर भैया ही लोग होते थे। चौबे जी का रंग गोरा, शर मोटा और मिजाज तीखा था। वह बंबई के उत्तरी भाग में रह वाले प्रायः सभी उत्तर प्रदेशीय दूधवालों के गुरु, नेता और पुरोहि थे। झमिया के साथ बैजनाथ का विवाह उन्हीं ने कराया था दूधवालों के बीच कोई व्यावसायिक या सामाजिक झगड़ा

खड़ा होने से उसका पंचायती फैसला उन्हीं की अध्यक्षता में होता था। विशेष अवसरों पर वह उन लोगों के बीच में सत्यनारायण की कथा भी बाँचा करते थे। दशहरा या रामनवमी के अवसर पर कभी राधेश्यामी और कभी तुलसीदासी रामायण लहजे में गा कर सुनाया और अर्थ समझाया करते थे। लोग बड़े ही चाव और भक्तिभाव से सुनते थे। धीरे-धीरे चौबे जी का प्रभाव केवल उत्तर प्रदेशीय दूधवालों तक ही सीमित न रह कर कालबादेवी के हिंदी भाषाभाषी व्यापारियों और दुकानदारों तक भी फैल गया। वहाँ से भी समय-समय पर उनके लिये कभी रामायण सुनाने और कभी सत्यनारायण की कथा बाँचने के लिये बुलावा आता रहता था। ज्यों-ज्यों उनका प्रभाव-क्षेत्र बढ़ता जाता था त्यों-त्यों दूधवालों पर उनके रौब में भी वृद्धि होती जाती थी। कालबादेवी के सेठों और सेठानियों में उनकी मान्यता हो जाने पर भी वह रहते शींव ही में थे। अति-परिचय से अवज्ञा हो जाती है यह वह जानते थे। इसलिये दूर ही रह कर सेठों को अपने चेले बनाये हुए थे।

झमिया चौबे जी को बहुत मानती थी। जब वह आते तो उनके चरण छूती थी और गाढ़ी मलाई से भरा हुआ एक गिलास गरमागरम दूध उनके आगे रख देती थी। तिथि-त्योहारों के अवसरों पर उनसे कभी पूजा करवाती कभी पाठ। चौबे जी उसकी सेवाओं से बहुत खुश थे, यद्यपि ऊपर से बहुत गंभीर बने रहते थे। वह कभी अपने किसी चेले वा भक्त के आगे जाते तो एक क्षण के लिये भी यह भाव न जताते कि वह अपने किसी स्वार्थ से उसके पास आये हैं। सब को यही विश्वास होता कि निःस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा करना ही उनका धर्म है। सप्ताह में एक या दो बार दूध

वालों में से प्रत्येक के घर जा कर गार्हस्थिक, सामाजिक या व्याव सायिक विषयों में सलाह दे जाते थे। अपनी दुकान पर वह अधिक नहीं बैठते थे। अधिकतर उनका नौकर ही, जो उन्हीं के गाँव का था, वहाँ बैठता था। चौबे जी या तो इधर-उधर भक्तों के यहाँ चक्कर काटते या घर में सोये रहते। वह घर में केवल एक ही बार, दोपहर को, स्वयं अपने हाथ से खाना बना कर, खाते थे। उसके पहले या उसके बाद भक्तों के यहाँ दूध पी कर या 'शुद्ध' मिष्टान्न खा कर कर्म पूरी कर लेते।

वैसे तो सभी लोग चौबे जी से डरते थे, पर झमिया विशेष रूप से डरती थी। वह जान गयी थी कि पंडित बड़ा मुँहफट आदमी है और सब पर उसकी धाक जमी हुई है। इसलिये वह कब पंचों के बीच में बैठ कर उस पर छींटे कस बैठे, इस बात की शंका सब समय उसके मन में बनी रहती थी। बैजनाथ के साथ वह जो भाग आयी थी और नाममात्र के वैवाहिक संस्कार द्वारा ही उससे एक विशेष संबंध में बँध गयी थी, यह बात पंडित को पसंद नहीं थी। वह जानती थी कि पंडित किसी भी समय उन दोनों के संबंध को ले कर कोई कड़ी और मार्मिक बात कह सकता है। इसलिये समय-समय पर वह जो उसे बढ़िया दूध पिलाती और मलाई खिलाती थी वह केवल उसका मुँह बंद करने के लिये।

बैजनाथ यद्यपि काछी था और महावीर कुर्मी, तथापि चौबे जी दोनों को ठाकुर कह कर पुकारते थे। पंडित का ठाकुर कहना बहुत बड़ी बात थी। उनकी बात को कोई दूसरा परिहास में लेने का साहस नहीं कर सकता था। बैजनाथ और महावीर दोनों उनके इस संबोधन से खुश रहते थे। और सबसे अधिक प्रसन्नता होती

थी भमिया को—जब चौबे जी उससे "कहो ठकुराइन, क्या हाल हैं ?" कह कर कुशल मंगल पूछते। इस तरह भमिया उनसे जितना सशंकित रहती थी उतना ही प्रसन्न भी।

धीरे-धीरे बैजनाथ और महावीर के सम्मिलित परिवार से चौबे जी की घनिष्ठता इस हद तक बढ़ गयी कि वह एक प्रकार से उसके सदस्य ही बन गये। स्थानाभाव के कारण रहते वह अलग ही थे, और धार्मिक कट्टरता के कारण खाना भी स्वयं अपने ही हाथ का पकाया खाते थे, पर उनके राशन का प्रबंध महावीर करता था और दूध, घी, मिठाई आदि का प्रबंध कभी भमिया करती थी कभी महावीर। चौबे जी से परामर्श किये बिना वे लोग कोई काम नहीं करते थे और आपस में ही छोटी-छोटी बातों के कारण उत्पन्न होने वाली शिकायतों से भी उन्हें परिचित कराते रहते और उनका फैसला चाहते।

४

एक दिन बैजनाथ जब प्रायः तीन बजे रात एक भैंस को दुह रहा था तब अचानक उसे न जाने क्या हुआ, दुहना छोड़ कर वह अपने मुँह और सारे शरीर को ऐंठता हुआ-सा धम से नीचे गिर पड़ा। दूध का बर्तन भी उलट कर नीचे गिर गया। उसका जो आदमी पास में खड़ा था उसने शोर मचाना आरंभ किया। देखते-देखते वहाँ कई आदमियों की भीड़ लग गयी। भमिया भी गयी। उसने सिर पीटना शुरू किया। बैजनाथ अचेत पड़ा था। भमिया सिर पीटती हुई भी अपने अंतर्मन में यह आशा बाँधे हुए थी कि कुछ देर बाद बेहोशी दूर होने पर बैजनाथ उठ बैठेगा। जो दूसरे लोग

खड़े थे वे सब भी ऐसे गँवार थे कि यही नहीं जानते थे कि वह बेहोशी है या क्या है और यदि बेहोशी है तो उसे दूर करने का क्या उपाय करना चाहिये। केवल बेवकूफों की तरह मुँह बाये खड़े थे। महावीर तक देर से खबर पहुँची। वह आया, पर वह भी कोई राय न दे सका। पर उसने बुद्धिमानी यह की कि सीधा चौबे जी के पास दौड़ा गया। चौबे जी ने आ कर जब देखा तो उनका मुँह एकदम गंभीर हो आया। एक लंबी साँस ले कर धीरे से बोले : "बेचारे का अन्न-जल यहीं पूरा होना था। बिना कुछ कहे-सुने चल बसा! नारायण! नारायण! राम तुम ही मालिक हो!"

"हैं! क्या बैजू भैया सचमुच चल बसे!" आतंक भरी आवाज़ में चीखता हुआ महावीर बहुत कम 'पावर' वाली बत्ती के प्रकाश में एक बार गौर से बैजनाथ की ओर देखने लगा। भमिया ने तो सारा आसमान ही जैसे सिर पर उठा लिया था।

"देखते क्या हो, डाक्टर लोग जिसे कहते हैं 'हार्ट फेल' कर जाना वह यही है! राम! राम! शिव! शिव!" चौबे जी बोले।

महावीर सचमुच रो पड़ा। वह बैजनाथ को हृदय से चाहता था और उसके उदार स्वभाव के कारण उसकी इज्जत करता था।

उस दिन जब बैजनाथ की दाहक्रिया करके महावीर लौटा तब भमिया पत्थर की तरह जड़ हो कर सीमेंट पर माथा टेक कर लेटी हुई थी। छोटी बच्ची रोती मचलती हुई उसे अपने अशक्त हाथों से जगाने का प्रयत्न कर रही थी, महावीर को कमरे के भीतर जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। उसकी समझ में नहीं आता था कि भौजी को किन शब्दों में सांत्वना दे। साथ ही कायरों की तरह कर्तव्य से विमुख हो कर सद्यःअनाथा भमिया और उसकी निःस्सहाय बच्ची की एकदम

उपेक्षा कर के टल जाना भी उसे जँच नहीं रहा था। वह काफी देर तक दरवाजे पर ही खड़ा रहा। झमिया उसी तरह पत्थर की तरह पड़ी हुई थी। न हिलती थी न डुलती थी। अंत में किसी तरह हिम्मत बाँध कर वह भीतर गया।

"भौजी, उठ बैठो। गुलबिया बहुत देर से रो रही है, तनिक उसे देखो। इस तरह हिम्मत हारने से कैसे काम चलेगा!" उसने प्रायः काँपती हुई आवाज में कहाँ। पर उसकी बात का कोई प्रभाव उस औंधी पड़ी हुई प्रस्तर-मूर्ति पर नहीं पड़ा। वह टस से मस न हुई। चाचा का सहारा पा कर गुलबिया और अधिक रोने लगी।

"भौजी उठो। जो अनर्थ होना था वह हो चुका, अब आगे की सुध लो!" अपनी आवाज से उसे लगता कि कहीं वह स्वयं भी न रो पड़े।

पर फिर भी भौजी टस से मस न हुई। गुलबिया हार मान कर चाचा की शरण में चली गयी। उसने रोते हुए चाचा के दोनों पाँवों को अपनी नन्ही सी बाँहों से बाँध लिया। महावीर की आँखें भर आयीं। उसने बड़े प्रेम से उसे गोद में उठा लिया और उसे दिलासा देते हुए बोला: "रोओ मत, रानी बिटिया, हम अभी तुम्हारे लिये बढ़िया चीज मँगा देंगे।"

लड़की जब कुछ शांत हुई तब उसने पहला प्रश्न यह पूछा कि "बाबू कहाँ गया?"

"स्वर्ग में चले गये, बिटिया।"

"कब आयेगा?"

"अब लौट कर नहीं आयेंगे, बिटिया," बायें हाथ से अपनी आँखें पोंछता हुआ महावीर बोला। "अब वह वहीं से तुम्हारे लिये

अच्छी-अच्छी चीजें भेजेंगे।"

"नहीं, मैं जाऊँगी बाबू के पास!" मचलती हुई गुलबिया बोली।

"नहीं रानी बिटिया, अब तुम बाबू के पास नहीं जाओगी। अब चाचा के साथ रहोगी।"

"बाबू कहाँ गया?" गुलबिया ने फिर अपने प्रश्न को दुहराया —शायद इस आशा से कि इस बार सारी स्थिति उसके आगे सुस्पष्ट हो जायगी।

"स्वर्ग में," महावीर ने उत्तर दिया।

"सरग से वह हमारे लिए लड्डू भेजेगा न चाचा?"

"हाँ, रानी बिटिया, और चाचा भी तुम्हें मलाई खिलायेगा।"

"और मलाई में चीनी भी डालेगा न?"

उस दुःख में भी महावीर की गीली आँखों में मुसकान चमक उठी। 'उसे याद आया कि एक दिन गुलबिया उसके यहाँ चली गयी थी। उसने एक कटोरे में उसे मलाई खाने को दी थी, पर चीनी डालना वह भूल गया था। गुलबिया उस बात को अभी तक नहीं भूली थी।

"हाँ बिटिया, जरूर डालेगा चीनी", कह कर उसने बच्ची का मुँह चूम लिया।

झमिया वैसी ही पड़ी हुई थी। महावीर की बुद्धि उसका साथ नहीं दे रही थी। वह सोच नहीं पाता था कि उसका क्या कर्तव्य है और किस उपाय से भौजी को समझा कर तसल्ली दी जाय। सहसा उसे याद आया कि भौजी ने दिन-भर कुछ नहीं खाया होगा। वह अपने यहाँ गया और अपने नौकर से पूछा। उसने बताया कि वह

खाना पका कर ले गया था, पर उन्होंने छुआ तक नहीं। गुलबिया को अपने हाथ से खिला कर वह चला आया था। झमिया की थाली बहुत देर तक उसके आगे वैसे ही पड़ी रही। अंत में मुहल्ले का एक कुत्ता भीतर घुस कर सारी थाली साफ़ कर गया।

महावीर एक गिलास गरमागरम दूध ले कर फिर झमिया के पास पहुँचा। "भौजी! गरम दूध लाया हूँ, उठ कर पी लो। देवर का इतना कहना तो मान लो, भौजी!" बड़े ही अनुनय भरे स्वर में उसने कहा।

इस बार झमिया कुछ हिली। "मुझे तनिक भी भूख नहीं है। मैं अभी न कुछ खाऊँगी न पीऊँगी।" रुँधे हुए गले से उसने कहा।

"जो गया है वह लौट कर कभी नहीं आयेगा," अपने दार्शनिक ज्ञान को कुरेदते हुए महावीर ने कहा। "प्राण दे कर भी उसे वापस न पाओगी। और फिर, अपने लिये न सही, बिटिया के लिये तो तुम्हें जीना ही होगा!"

"मैं कब कहती हूँ कि मैं मरने जा रही हूँ, देवर!" उसी तरह सीमेंट पर माथा टेके हुए झमिया भर्रायी हुई आवाज में बोली। "मैं मरने वाली होती तो तभी मर गयी होती जब गुलबिया का बाप मुझे छोड़ कर चल बसा था। मैं मरना भी चाहूँ तो मर नहीं सकती, ऐसे बेहया प्राण हैं मेरे। इसलिये तुम बेफिक्र रहो। सिर्फ इस समय दो घड़ी के लिये मुझे यों ही पड़े रहने दो।"

इसके बाद महावीर फिर कुछ नहीं बोला। गुलबिया को ले कर बाहर निकल पड़ा।

समय बलवान है। वह आकस्मिक, अप्रत्याशित और गहरी चोट भी धीरे-धीरे झमिया के लिये सहनीय होती चली गयी, यद्यपि

नयी समस्या का भयावना रूप उसके लिए दिन-प्रति-दिन विकट से विकटतर होता चला गया। जब वह गाँव में थी तब भी अकेली, असहाय और अनाथ थी, पर मौसी के साथ कष्टमय जीवन बिताने पर भी उस जीवन को निर्विवाद सहते चले जाने की आदत उसने डाल ली थी। किंतु बैजनाथ के साथ बंबई आने पर उसके जीवन ने एक बिलकुल ही नया मोड़ ले लिया था। जीवन का सारा रूप ही उसके आगे एक दम बदल गया था। उसके सारे स्वप्नों, सारी आकांक्षाओं का ढाँचा ही दूसरा बन गया था। अब फिर नये सिरे से देहाती जीवन को अपनाने की न तो उसमें समर्थना रह गयी थी न प्रवृत्ति—विशेष कर जब उस जीवन में मानवीय सहृदयता का लेश भी पा सकने की कोई संभावना उसे कहीं नहीं दिखायी देती थी। इसके अलावा सामाजिक दृष्टिकोण से भी उसके लिये गाँव को लौट चलना असंभव था। वह स्वेच्छा से, सारी सामाजिक शक्तियों की अवहेलना करके बैजनाथ के साथ भाग निकली थी। अब किस मुँह से गाँव में वापस जाय? और किसके पास? "मौसी' की 'किरपा' उस पर यों ही रहती थी, और अब तो......!

पर यदि वह गाँव नहीं जाती तो बंबई में उसका कौन ठिकाना है? गुलबिया को ले कर वह किसके दरवाजे भीख माँगने जाय? वहाँ उसका अपना कौन है? यह ठीक है कि 'देवर' हैं और वह बेचारे बहुत भले आदमी हैं। अपना सगा आदमी भी ऐसा नहीं होता। 'उनके' मरने के बाद अभी तक उन्होंने उसके और उसकी लड़की के लिये किसी बात में कोई कमी नहीं की है, और हर तरह यही कोशिश करते रहते हैं कि वह और गुलबिया दोनों प्रसन्न रहें और जो भारी संकट उन लोगों पर आ पड़ा है उसे भूले रहें। पर आखिर

वह कब तक इस तरह उन लोगों का खयाल करते रहेंगे ? वह कितने ही भले हों, पर उसकी अपनी—और गुलबिया की भी—पूरी जिन्दगी इस तरह तो कट नहीं सकती। तब क्या करना चाहिये ? भगवान, इस घुप अँधेरे में कोई रास्ता सुझाओ, मालिक ! इस तरह सोचती हुई वह हनुमानजी की उस छोटी-सी मूर्ति के आगे माथा टेक देती जो उसकी इच्छानुसार चौबेजी ने कहीं से ला कर बैजनाथ की मृत्यु के कुछ महीने पहले उसे दी थी। वह हनुमानजी की बहुत बड़ी भक्त थी। सब देवताओं से हनुमानजी ही उसे क्यों अधिक पसंद थे, यह वह स्वयं नहीं जानती थी। बचपन में जब वह रामलीला देखने के लिये अपने माँ-बाप के साथ अपने गाँव से प्रायः एक मील की दूरी पर नियमित रूप से जाती तब बड़ी अधीरता से उस दिन की प्रतीक्षा करती रहती जब हनुमानजी पहले-पहल रामलीला में प्रकट होने वाले होते। जिस दिन हनुमानजी को वह पहली बार रामलक्ष्मण के साथ देखती उस दिन उसके उल्लास और उत्साह का ठिकाना न रहता। जब दर्शकगण सम्मिलित रूप से उल्लसित स्वर में चिल्लाते : "बोलो, बजरंगबली की जै ! बोलो पवनसुत महावीर की जै !" तब वह भी पूरी शक्ति से, अंतरात्मा की सच्ची लगन से उनके स्वर में स्वर मिलाती हुई कहती : "जै—ऐ—ऐ—ऐ !" उसके भीतर किसी अज्ञात, रहस्यमय कारणों से हनुमानजी के प्रति यह भक्ति-भावना जैसे जन्म से ही घर किये हुए थी। ज्यों-ज्यों वह बड़ी होती गयी त्यों-त्यों हनुमानजी के प्रति उसका आकर्षण भी बढ़ता चला गया। उसका बाप भी 'पवन-सुत महावीर' का बहुत बड़ा भक्त था और अपनी बिटिया को समय-समय उनके अलौकिक पराक्रमों के किस्से सुनाता रहता था। इन किस्सों को सुन कर झमिया

के अंतर्मन में, उसके अनजान में, यह विश्वास जमता जाता था कि जिस सर्वशक्तिमान ईश्वर की बातें वह बराबर सुनती रहती है वह हनुमानजी ही हैं। विवेचन और विश्लेषण की न तब उसकी उम्र ही थी न बुद्धि। जब वह बड़ी हुई तब भी वह इस तरह से नहीं सोच सकती थी। पर एक अनुभूति उसने ऐसी पायी थी जो विवेचन और विश्लेषण के ऊपर थी। वही अज्ञात अनुभूति उसे हनुमानजी की सर्वशक्तिमत्ता पर अंधभाव से विश्वास करने के लिये प्रेरित करती रहती थी। इसलिये जब-जब, जिस-जिस क्षण में अपनी और अपनी बच्ची की अनाथ अवस्था की कल्पना से उसके मन में आतंक छा जाता तब-तब वह हनुमानजी का ध्यान करती हुई उस छोटी-सी मूर्ति के आगे माथा नवाती हुई अपने को आत्म-समर्पित कर देती। उस क्षण में उसके मन में यह विश्वास दृढ़ हो जाता कि हनुमानजी निश्चय ही कोई रास्ता दिखायेंगे जो उसके और उसकी लड़की के लिये कल्याणकर सिद्ध होगा।

जब कभी वह अपनी अनाथ अवस्था का रोना, न चाहने पर भी, महावीर के आगे व्यक्त कर बैठती तब महावीर उसे दिलासा देता और समझाता रहता कि "भौजी, भाग्य में जो बदा था सो तो हो गया, पर अब आगे के लिये तुम निश्चिंत रहो। जब तक मेरे दम में दम है तब तक मैं तुम्हें अनाथ बनने के लिये नहीं छोड़ सकता। बैजू भैया जो कारबार छोड़ गये हैं उसमें कोई कमी नहीं आने दूँगा। और फिर मेरा अपना कारबार तो है ही। वह सब किसके लिये है? तुम दोनों को छोड़ कर मेरा अपना कहने को है ही कौन? इसलिये तुम तनिक भी न घबराओ। तुम्हारे घबराने से मेरा जी जाने कैसा कर उठता है।"

"तुम लाख बरस जीते रहो, देवर !" झमिया बरबस निकलती हुई आँसुओं की झड़ी को न रोक सकती हुई कहती । "मुझे तुम्हारा पूरा भरोसा है । मुझे अपने लिये कोई चिंता नहीं है । चिंता सिर्फ इस नन्ही सी छोकरी के लिये है । उसे कहीं सड़क में भीख माँग कर गुजारा न करना पड़े, यह चिंता कभी-कभी भूत की तरह मेरे सिर पर सवार हो जाती है और तब मेरी आँखों के आगे एकदम अँधेरा छा जाता है । मैं जानती हूँ कि तुम उसे बराबर अपनी बेटी की तरह मानते आये हो और कभी उस हालत तक न पहुँचने दोगे, पर यह सब जानते हुए भी, जाने क्यों, कभी-कभी मेरा दिमाग एकदम खराब हो जाता है......"

महावीर एक करुण मुसकान मुख पर झलकाता हुआ कहता : "ऐसा न होने दो, भौजी, अपने मन को मजबूत करो।"

बैजनाथ की भैंसों की देख-भाल महावीर स्वयं ही करता था। बैजनाथ की मृत्यु के बाद महीने के अंत में दूध की बिक्री का सारा हिसाब-किताब करके, उसके नौकरों का वेतन चुका कर और भैंसों को खिलाने-पिलाने का खर्चा काट कर जितना बचा वह सब पाई-पाई करके उसने झमिया को सौंप दिया । फिर एक बार झमिया के आँसू उमड़ आये । उन आँसुओं में कितने दुःख के थे और कितने सुख के इसका हिसाब लगाना कठिन था ।

५

इस तरह महीने पर महीना और साल पर साल बीतते चले गये । महावीर ने बैजनाथ का भी कारबार काफी बढ़ा लिया और अपना भी । उसने भौजी की राय ले कर दोनों को मिला कर एक

सम्मिलित डेयरी खोल दी। काफी लाभ होने लगा। अब वह अपने 'आफिस' में केवल हिसाब-किताब देखता था और पहले की तरह न तो दौड़-धूप करने की कोई आवश्यकता उसके लिये रह गयी थी न तड़के उठ कर दूध दुहने की चिंता। सब काम नौकर-चाकरों के द्वारा अपने-आप, तरतीब से, घड़ी की तरह नियमित रूप से, चलता रहता था। महावीर को अब इतना अधिक अवकाश रहता था कि समय काटना दूभर हो जाता। उसने चौबे जी से कह कर कुछ धार्मिक पुस्तकें अपने लिये मँगा लीं। तुलसी रामायण, हिंदी महाभारत के अलावा भागवत के दशम स्कंध का हिंदी अनुवाद भी चौबे जी ने उसके लिये मँगा दिया। वह बारी-बारी से उन तीनों पुस्तकों का पाठ प्रतिदिन करता रहता और अवसर मिलने पर झमिया को पढ़ी हुई बातें, अपनी समझ के अनुसार, सुनाता। झमिया मंत्र-मुग्ध सी उन पौराणिक और धार्मिक कथाओं को सुनती।

एक दिन महावीर ने आधे परिहास में और आधे गंभीर भाव से कहा : "भौजी, तुम भी पढ़ना सीख लो। मैं सिखा दूँगा। जब स्वयं पढ़ने लगोगी तब इन बातों को पढ़ने और समझने से जो सुख तुम्हें मिलेगा उसे अभी तुम सोच भी नहीं सकती हो।"

"तुम भी अच्छी ठठोली करते हो, देवर," झमिया बोली। "मैं अब इस उमिर में क्या सीखूँगी पढ़ना! जिन्दगी के इतने बरिस जाहिली में बिता चुकी हूँ, बाकी उमिर भी इसी तरह कट जायगी। इसलिये मेरी बात तो छोड़ो। पर तुमसे मेरी हाथ जोड़ कर बिनती है कि अपने लिये अब जल्दी ही एक ऐसी मेहरिया ढूँढ कर ले आओ जो देखने में भी अच्छी हो और जिसकी उमिर भी सोलह-सत्रह बरिस से ज्यादा न हो। उसे खूब पढ़ा-लिखा कर अपना शौक

पूरा कर लेना।" कहते हुए उसकी दो सुन्दर, बड़ी-बड़ी आँखें चमक उठीं।

जब भमिया बोल रही थी तब महावीर बड़े गौर से उसकी ओर देखता रहा। पर जब वह अपनी बात समाप्त करने पर आयी, तब उसने अपनी आँखें नीची कर लीं। कुछ देर तक जब वह उसी तरह सिर नीचा किये मौन बैठा रहा तब भमिया बोली: "बोलो देवर, भौजी की इतनी सी बात नहीं मानोगे? कब तक इस तरह अकेले रहोगे? भगवान की दया से इस समय तुम्हारे पास किसी बात की कोई कमी नहीं है। चारों पदारथ मौजूद हैं। पर अकेले रह कर तुम कभी किसी चीज से कोई सुख नहीं पा सकोगे। अब ज्यादा देर करने से कोई फायदा नहीं है। जल्दी ही किसी अच्छी सी लड़की को घर ले आओ, देवर। उसके बाद फिर उसे खूब पढ़ाओ, लिखाओ, सिखाओ; जैसे जी चाहे उस ढंग से रखो। बोलो, मानोगे मेरा कहना कि नहीं?" वह बड़ी ही उत्सुक दृष्टि से महावीर की ओर देख रही थी, जैसे उस एक प्रश्न के उत्तर पर उसका अपना सारा भविष्य निर्भर करता हो।

महावीर फिर कुछ देर तक चुपचाप सिर नीचा किये सुनता रहा। जब भमिया ने फिर आग्रहपूर्वक कहा: "बोलो देवर, मेरी बात का जवाब दो! क्या मैंने कोई गलत बात कही है? बोलो!" तब महावीर अत्यंत गंभीर हो कर बहुत धीरे से बोला: "देखो भौजी, इतने दिनों तक तुम खुद ही देख चुकी हो कि मैंने कभी तुम्हारी किसी बात को नहीं टाला। पर तुम्हारी आज की बात का कोई जवाब मेरे पास नहीं है। मैं क्या बताऊँ और तुम्हें कैसे समझाऊँ कि किसी अजनबी लड़की को घर में लाने से मेरी, तुम्हारी और गुलबिया की—

हम सब लोगों की जिन्दगी का ढर्रा ही एकदम बिगड़ जायगा। आज हम लोग कितनी शांति से रहते हैं! न कोई किसी पर कोई दोष लगाने वाला है, न कोई किसी को बिराना समझता है। ऐसा लगता है जैसे छुटपन से हम सब एक-साथ रहने के आदी हों। इस शांति और स्नेह से भरे परिवार में तुम क्या चाहती हो कि ऐसी खलबली मचे, एक ऐसा भूचाल आ जाय जो सारा ठाट ही उलट दे? भौजी, ऐसा न समझो कि मेरे ध्यान में वह बात नहीं है जिसका जिक्र तुमने अभी किया है। अपने अकेलेपन के बारे में मैंने खूब सोचा है। पर फिर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मैं अकेला नहीं हूँ। तुम्हीं बताओ, मैं अकेला कैसे हूँ, जब तुम और गुलबिया मेरे साथ हो? तुम्हारा जो स्नेह मैंने पाया है, भौजी, उसके बाद इस जिन्दगी में मुझे और कुछ नहीं चाहिये। तुम्हारी तरह कितनी औरतें हमारे समाज में हैं जिनका दिल साफ हो और जो सब की भलाई सोचती हों? ज्यादातर ऐसी ही औरतें मिलेंगी जो तंगदिल होती हैं और अपने स्वार्थ के परे जिनकी नजर पहुँच ही नहीं पाती। यह सब जानते हुए भी तुम इस तरह की बात कैसे कह रही हो, मैं समझ नहीं पाता...''

झमिया एकान्त मन से, अपने दोनों कानों को खड़ा करके और दोनों आँखों को पूरा खोल कर महावीर की बातें सुन रही थी। महावीर के मन के भीतर इतने दिनों तक छिपी बात उसके आगे बहुत कुछ साफ हो गयी थी। इतने दिनों तक वह समझती थी कि लड़की खोजने की कोई सुविधा न होने के कारण ही वह अभी तक अकेला बना हुआ है। आज पहली बार इस रहस्य का उद्घाटन उसके लिए हुआ कि उसका एक विशेष कारण है। झमिया इतना तो पहले ही से जानती थी कि महावीर उसके प्रति कितना उदार है

पर यह नहीं जानती थी कि उसकी वह उदारता इस हद तक है कि उसके और उसकी लड़की के भावी जीवन-पथ में एक छोटा भी काँटा उग आना उसे सह्य नहीं हो सकता, भले ही इसके लिए उसे अपने बड़े से बड़े स्वार्थ की हत्या करनी पड़े। इस हद तक मानते हैं उसके प्यारे देवर उसे! गर्वोच्छ्वास से उसकी छाती फूल उठी। एक पुलक-भरी अनुभूति से एक मीठी सिहरन उसके सारे तन में और मन में दौड़ गयी। उसकी वह पुलकानुभूति उसकी चमकती हुई आँखों में भी छलक उठी।

"यह ठीक है देवर, कि तुम अकेले नहीं हो," झमिया ने कहा, "और जिस बात का डर तुम्हें है मैं उस पर भी सोच चुकी हूँ। पर क्या इस तरह की बातों का खियाल करके तुम बियाह करना ही छोड़ दोगे? यह भी कोई बात है, भला! अगर सभी आदमी तुम्हारी ही तरह सोचने लगें तो संसार का सारा कारबार ही एकदम बंद हो जाय! यह नहीं होगा, देवर, बियाह तुम्हें करना ही होगा। तुम लड़की नहीं खोजोगे तो मैं खुद कोशिश करूँगी। तुम्हें कुँआरा किसी तरह भी नहीं रहने दूँगी, यह समझ लेना।" उसकी मंद-मंद मुस्कराती हुई आँखों में दृढ़ता और स्नेहाधिकार साफ झलक रहा था।

"मैं तुम्हें अपने मन की बात किसी तरह भी समझा नहीं सकूँगा, भौजी," हताश स्वर में महावीर बोला।

"समझाने की कोई जरूरत नहीं, मैं सब समझती हूँ," दुष्टतापूर्ण मुसकान मुख पर झलकाते हुए झमिया ने कहा।

"क्या समझती हो, बताओ?" महावीर के मुख पर शंका का भाव प्रकट हो रहा था।

"बताऊँगी कुछ नहीं।" उसकी जल्दी खुलने और जल्दी बंद

होने वाली पलकों में शरारत भरी थी।

महावीर के मन में एक दुर्निवार कुतूहल जग उठा था। "मैं सब समझती हूँ", झमिया के ये शब्द उसे जितने ही आश्चर्यजनक लगे थे उतने ही भेद-भरे। तब क्या भौजी सचमुच उसके मन के भीतर की उस भावना को जिसे वह इतने दिनों तक पर्दा-दर-पर्दा छिपाता आया, सचमुच ताड़ गयी है? वह भयभीत हो उठा। वह भौजी के प्रति बराबर श्रद्धा प्रकट करता आया है और प्रेम को मन के भीतर मनोरथ की भाँति छिपाता रहा है। तब आज क्या उसकी किसी असावधानी से उसके भीतर की गोपनीय बात किसी इशारे से बाहर निकल पड़ी है? वह मौन भाव से, कुतूहल-भरी आँखों से झमिया की ओर देखता रह गया।

"तुम्हारे मन की बात मैं सब समझती हूँ देवर, पर उससे तुम्हारे बियाह में कोई रुकावट नहीं आनी चाहिये। मैं तुम्हारा बियाह रचाये बिना मान नहीं सकती, यह समझ लो, बस!"

महावीर संकोच-भरी मुसकान मुख पर झलका कर चुप हो रहा।

६

उस दिन झमिया ने अपना एक नौकर भेज कर पंडित जी को बुला भेजा। पंडित जी स्वयं ही हर दूसरे या तीसरे दिन उनके यहाँ आ कर बैठा करते थे, पर इधर दो दिन से आये नहीं थे और झमिया अब कोई बात अनिश्चय पर छोड़ना नहीं चाहती थी।

जब पंडित जी आये तब भाग्य से महावीर घर पर नहीं था। झमिया ने बड़े आदर से उन्हें बिठाया। गुलबिया ने एक प्लेट में खोया मिठाई और एक गिलास में गरम दूध उनके आगे रख दिया।

"कहो ठकुराइन, क्या हाल-चाल हैं? आज कैसे याद किया?" पंडित जी ने अपना गांभीर्य कायम रखते हुए कहा।

पंडित जी, आज आपको एक बहुत जरूरी काम के लिये कष्ट दिया है..."

"कहो, क्या काम है?"

"मैं सोचती हूँ, पंडितजी, कि देवर अब कब तक अकेले रहेंगे! कहीं उनका बियाह अब जल्दी ही तय हो जाना चाहिये।"

"तुम ठीक कहती हो ठकुराइन, मैं भी बहुत दिनों से यही सोच रहा हूँ। लोग तरह-तरह की बात कह सकते क्या कहने लगे हैं। एक अनब्याहे आदमी के साथ तुम्हारा रहना सचमुच उचित नहीं है..."

झमिया के मुँह का रंग एकदम उड़ गया। किस उत्साह से क्या बात कहने के लिये उसने पंडित को बुलाया था और क्या सुनना पड़ा! कुछ क्षणों तक वह एकदम सहमी-सी चुप बैठी रही। उसके बाद, न जाने कहाँ से, उसके भीतर आश्चर्यजनक बल और साहस भर आया। बोली: "लोग क्या बातें करते हैं और क्या सोचते हैं इसकी मुझे रत्ती-भर भी परवा नहीं पंडित जी! जो अंधी दुनिया यह नहीं देख पाती कि मेरे देवर ऐसे-वैसे आदमी नहीं, बल्कि निखालिस हीरा हैं, उसकी किसी भी बात का कोई डर मुझे नहीं है। मैं इस सोच से नहीं घुली जा रही हूँ कि वह अनब्याहे हैं और उनके साथ मैं कैसे रहूँगी। मैं तो..."

"पर शास्त्र में लिखा है," बीच ही में झमिया की बात काटते हुए पंडित जी बोले, "कि 'यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाकरणीयम्।' अर्थात् कोई भीतर से कितना ही शुद्ध क्यों न हो,

समाज और संसार के विरुद्ध कोई आचरण नहीं करना चाहिये। मैं मान सकता हूँ कि महावीर और तुम दोनों शुद्ध हो, पवित्र हो। फिर भी एक अनब्याहे आदमी के साथ तुम्हारा रहना..."

"देखो पंडित जी," झमिया ने पहले से अधिक तेज हो कर कहा, "मैं न तुम्हारे समाज को जानती हूं न संसार को। पर मैं देवर को पहचानती हूँ और अपने को भी जानती हूं। बस, मुझ जैसी गँवार औरत के लिये इतना ही जानना काफी है। अगर मैं तुम्हारे समाज और संसार की परवा करती होती तो विधवा होने के बाद भी उनके साथ न चली आयी होती। मैंने आदमी को परख कर उसकी कीमत पहचानी थी, और अपनी पहचान का मुझे घमंड था। पर भाग्य ही जब मेरा दुश्मन निकल आया तो दूसरे किसी को क्या दोष दूँ..." और मृत बैजनाथ की याद उभर आने से उसकी सारी तेजी आँसुओं के रूप में पिघल कर बह चली।

"नहीं ठकुराइन, तुम बड़ी बहादुर हो, मैं तुम्हें जानता हूँ," पंडित जी ने कहा। "पर मैं कुछ दूसरी बात कह रहा था...मेरा मतलब कुछ दूसरा था..."

"मैं सब समझती हूँ। आपका मतलब क्या था, यह मुझसे छिपा नहीं है," आँसुओं के वेग को बरबस रोकने का प्रयत्न करती हुई झमिया बोली। "आपकी नजरों में उस औरत के लिये कभी कोई इज्जत नहीं हो सकती जो विधवा होने पर भी किसी मर्द के साथ भाग निकली। इसीलिये उसके बारे में आज आपके और आपके साथियों के मन में एक नया शक पैदा हुआ है। मैं इसके लिये आपको या दूसरों को कोई दोष नहीं देती पंडित जी। मैं किसी को यह समझाना भी नहीं चाहती कि देवर को मैं किस नजर से देखती

हूँ और वह मुझे किस तरह मानते हैं...”

“क्या बात से क्या बात चल पड़ी, ठकुराइन, तुम नाहक गरम हो उठी हो, खैर, अब इन सब बातों को छोड़ो। हाँ, तो महावीर का ब्याह तय करने की बात चली थी। क्या तुमने इस संबंध में महावीर से बातें कर ली हैं ? वह क्या राजी है ?”

“आप एक अच्छी लड़की खोज दीजिये, मैं उन्हें राजी करा लूँगी।” साड़ी के पल्ले से आँखें पोंछती हुई झमिया बोली।

पंडित जी कुछ देर तक सोचते रहे। उसके बाद बोले : “अच्छी बात है। लड़की मैं खोज लूँगा। दो-एक लड़कियाँ मेरी नजर में हैं। एक लड़की तो यहीं रहती है। उसका बाप कालबादेवी में पान की दुकान खोले हुए है। वह किसी एक स्कूल में छठे या सातवें दर्जे तक पढ़ भी चुकी है। पिछले साल से उसकी पढ़ाई बन्द हो गयी है। उसके बाप का नाम मसुरियादीन है। मसुरियादीन तो उसे और अधिक पढ़ाने के पक्ष में था, पर उसकी मेहरारू ने कहा कि ‘लड़की को ज्यादा पढ़ाओगे लिखाओगे तो फिर उसके लायक वर हमारे समाज में कहाँ मिलेगा ? पहले तो पढ़ी लिखी लड़की किसी अनपढ़ से शादी करना ही क्यों चाहेगी और अगर दबाव डालने पर राजी हो भी गयी तो उसकी जिन्दगी खराब हो जायगी।’ इसलिये मसुरियादीन ने अनिच्छा से उसकी पढ़ाई बन्द कर दी।”

“लड़की की उमिर क्या होगी ?” झमिया ने अत्यंत उत्सुक भाव से पूछा। वह अपनी नयी उत्सुकता के कारण उस चोट की पीड़ा भूल चुकी थी जो अभी कुछ ही समय पहले पंडित जी के इंगित से उसके मर्म में जा लगी थी।

“यही अठारह साल के करीब होगी। उसके माँ-बाप ने देर

ने उसे पढ़ाना शुरू किया था, नहीं तो अब तक वह हाई स्कूल पास करके इंटरमीडियेट में पढ़ती होती। देखने में वह अठारह से भी ज्यादा की लगती है। बीस से कम उसे कोई नहीं बतायेगा।"

"तब तो पंडित जी, जल्दी ही उसके माँ-बाप से बात चलाइये," कहते हुए झमिया का मुख उल्लास से चमक उठा था। "कहीं ऐसा न हो कि उसके माँ-बाप किसी दूसरे से उसकी शादी तय कर लें। वह देवर को तो अपनी लड़की देना पसंद करेंगे ही—आपका क्या खियाल है ?"

"पसंद तो अवश्य करना चाहिये," पंडितजी ने कुछ टेढ़े स्वर में कहा। "पर बिना बात चलाये कुछ पता नहीं चल सकता।"

"तो आज ही आप...मैं आपके गोड़ गिरती हूँ, पंडित जी, इतना काम आप जरूर कर दीजिये। बातचीत चलाने में आपको जितना भी खर्च करना पड़ेगा, सब मैं दूँगी..."

"नहीं, नहीं, खर्च की क्या बात है! वह मैं अपने-आप कर लूँगा। अपना ही तो काम है। तुम क्यों दोगी! और फिर किसी ऐसे खर्च की भी बात नहीं है। हाँ, मसुरियादीन कुछ लालची जरूर है। शुरूआत में ही उसकी मुट्ठी कुछ गरम जरूर करनी होगी। और यह सब गुपचुप में करना होगा। महावीर तक को इस बात की कोई खबर नहीं होनी चाहिये। महावीर का स्वभाव तुम जानती हो। उसे पता चल जायगा तो वह कभी ऐसे बाप की लड़की से ब्याह करने को तैयार न होगा जो ऐसा लालची हो कि जमाई को कुछ देने के बजाय उसी से कुछ झटकना चाहे।

"आप इस बारे में निचिंत रहें, पंडित जी", झमिया ने परम प्रसन्न हो कर कहा। "मैं देवर से कुछ भी नहीं बताऊँगी। मैं

अपनी गाँठ से रुपया निकाल कर आपके हाथ में दे दूँगी। अभी कितना रुपया देना होगा आपको?" वह उल्लास के कारण एक कदम आगे खिसक कर बैठ गयी।

पंडित जी क्षण-भर के लिये फिर सोच में पड़ गये। शायद यह सोचने लगे कि झमिया के पास कितना रुपया नकद जमा होने की संभावना है। वह जानते थे कि महावीर दूध की बिक्री से होने वाले मुनाफे का हिसाब करके उसके हिस्से का रुपया अलग निकाल कर रख लेता है और उस अलग रुपये में से प्रायः आधा झमिया को नकद दे देता है और आधा अपने वहीखाते में उसके नाम जमा कर लेता है। साथ ही यह बात भी शायद पंडित जी के ध्यान में थी कि अधिक रुपया बताने से बात बिगड़ सकती है। 'अर्द्धं त्यजति पंडितः' वाली उक्ति उन्हें याद थी।

"अभी तीन सौ रुपये से काम चल जायगा", उन्होंने वीतराग होने की मुद्रा बनाते हुए कहा।

"इतना रुपया मेरे पास निकल आयगा। मैं आज किसी समय निकाल कर गिन कर तैयार रखूँगी। कल आप मुझ से लेते जाइयेगा। यह काम जल्दी ही हो जाना चाहिये, पंडित जी। अगर आप किसी तरह इनका बियाह तय करा दें तो मैं जनम-जनम तक आपका अहसान मानती रहूँगी।"

"हो जायगा, हो जायगा, तुम चिंता न करो!" पंडित जी ने उसे सांत्वना देते हुए कहा। मैं कल ही मसुरियादीन के पास जाऊँगा और मुझे पूरी आशा है कि मैं उसे राजी करा लूँगा..."

"बड़ी किरपा होगी, आपकी। मैं इसके लिये आपका मेहनताना अलग से दूँगी", झमिया ने बात को और अधिक पक्का कर लेने

के उद्देश्य से कहा।

"नहीं, नहीं. मेरे मेहनताने की क्या बात है। यह तो अपना ही काम है!"

"हाँ पंडित जी, एक बात पूछना मैं भूल ही गयी। वे लोग कौन जात हैं? कहीं ऐसा न हो कि जात-पाँत के झगड़े में हम लोगों के हाथ से ऐसी अच्छी लड़की निकल जाय। अच्छा, देखने में वह लड़की कैसी है?" झमिया का कुतूहल बड़ी तेजी से बढ़ रहा था।

"जात-पाँत का झगड़ा नहीं उठेगा, क्योंकि ये लोग भी काछी ही हैं। मैंने सब-कुछ सोच समझ कर ही उस लड़की को ध्यान में रखा है। देखने में भी लड़की काफी अच्छी और तंदुरुस्त मुझे लगी। कुछ घमंडी मुझे जरूर लगी। अपने माँ-बाप की इकलौती बिटिया है। बहुत लाड़-प्यार से पली है। बंबई की हवा भी उसे लग चुकी है। इसलिये थोड़ा बहुत फैशन-वैशन का भी ख्याल रखती है। पर कुल मिला कर लड़की अच्छी है।

"अच्छी ही नहीं, तब तो बहुत अच्छी होगी।" झमिया की खुशी का ठिकाना नहीं था। "फैशन का खियाल रखती है तो इसमें कौन बुराई है? देवर के लिये ऐसी ही लड़की तो चाहिये जो शहराती रंग-ढंग जानती हो। देहात की फूहड़ लड़की उनके किस काम की! भगवान की किरपा से उनके पास नौकरों की कमी नहीं है। और फिर घर का मोटा काम करने के लिये मैं तो हूँ ही। वह आराम से रहेगी और देवर को खुश रखेगी। अब जमाना बदल गया है। मुझ जैसी निपट गँवार औरतों का जमाना अब गया। मुझे बहुत खुशी हुई जान कर पंडित जी। यह लड़की हाथ से न

जाने पावे, ऐसी कोशिश कीजिये। देवर से अभी मैं कुछ नहीं बताऊँगी। आप पहले बातचीत चलाइये और मुझे बताइये।"

जब पंडित जी दूसरे दिन जाने का वचन दे कर चले गये तब झमिया की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। यह सोच-सोच कर उसके मन में उमंग की तरंगें दौड़ती थीं कि देवर को भाग्य से एक ऐसी लड़की मिल रही है जैसी उन लोगों के समाज में किसी दूसरे को नहीं मिल सकती ; जो बहुत पढ़ी-लिखी भी नहीं है, पर साथ ही गँवार भी नहीं है। शहर के स्कूल में पढ़ी हुई लड़की अवश्य ही बहुत समझदार होगी। देवर अभी भले ही ब्याह से कतराते हों, पर लड़की को देख कर वह बहुत खुश हो जायेंगे और सुख से रहेंगे। कब वह दिन आवे कि देवर का ब्याह हो और वह एक सुन्दर, स्वस्थ, पढ़ी-लिखी और फैशनेबुल बहू को घर में ला कर रखे यह सोच-सोच कर झमिया आशा से अधीर हो रही थी। देवर के भावी सुख की कल्पना से उसके अंग-अंग में उमंग की तरंगें रह-रह कर उठती और गिरती थीं। उसने अपनी तिजोरी खोली और पाँच-पाँच बीसी करके गिन कर दस रुपये के नोटों की तीन गड्डियाँ सौ-सौ की निकालीं और फिर तीनों को एक रुमाल में बाँध कर रख दिया।

दूसरे दिन पंडित जी जानबूझ कर ऐसे समय आये जब महावीर के घर पर रहने की संभावना कम थी। उनका अनुमान ठीक निकला। महावीर घर पर नहीं था और झमिया घर में अकेली थी। गुलबिया बाहर खेल रही थी। पंडित जी के हाथ में तीन सौ की 'गड्डी थमा कर उसने फिर आग्रह किया कि जिस तरह जल्दी ही यह शुभ कार्य सफलतापूर्वक संपन्न हो ऐसा प्रयत्न किया जाय। पंडित जी ने अत्यंत प्रसन्न हो कर वचन दिया कि वह कोई बात उठा नहीं रखेंगे।

और एक दिन सारी बातें तय हो गयीं। झमिया की प्रसन्नता की सीमा न रही, क्योंकि अपनी सारी आशाओं के बावजूद उसे यह विश्वास कभी नहीं रहा कि इतनी जल्दी उसकी इतने दिनों की आकांक्षा पूरी हो जायगी। प्रारंभ में महावीर ने बहुत नाँह-नूँह की और हर तरह से झमिया को समझाना चाहा कि वह स्वयं अपने सिर पर एक आफत मोल लेने पर तुली है। पर झमिया ने कहा: "आफत ही सही, मैं उसे खुशी-खुशी सह लूँगी, पर तुम्हें अब मैं अकेला किसी भी हालत में नहीं रहने दूँगी।" उसके स्नेह-हठ के आगे अंत में महावीर को हार माननी ही पड़ी। उसने कहा: "तब तुम्हारी जैसी इच्छा है, करो। मैं कोई रुकावट नहीं डालूँगा।" साथ ही उसके मन के भीतर इतने वर्षों से दबी हुई उत्सुकता भी सहसा किसी जादू की सी प्रेरणा से जग उठी। एक नये और एकदम अपरिचित प्राणी के साथ संबंध स्थापित होने की कल्पना उसके मन को गुदगुदाने लगी।

७

जब पंडित मातादीन चौबे के प्रयत्नों से कन्यापक्ष वाले राजी हो गये तब झमिया ने सगाई के पूर्व एक बार लड़की को देखने की उत्सुकता प्रकट की। पंडित जी मसुरियादीन को पूर्व सूचना दे कर एक दिन झमिया को लड़की दिखाने लिवा ले गये। झमिया बहुत दिनों बाद घर से बाहर निकली। नकली रेशम की एक छपी हुई साड़ी पहन कर और ऊपर से उत्तर प्रदेश की रूढ़िवादी स्त्रियों में प्रचलित प्रथा के अनुसार एक पतली सी सफेद चादर ओढ़ कर, नये चप्पलों को किसी तरह घसीटती हुई वह बस स्टेशन तक पैदल गयी और

वहाँ से पंडित जी के साथ वह 'बस' पर बैठ कर कालबादेवी गयी।

एक गली के भीतर एक पुराने तिमंजिले मकान में, जिसमें बरसों से न रँगाई हुई थी न पुताई, चौबेजी उसे ले गये। अँधेरे जीने से हो कर तीसरी मंजिल में बाईं ओर कोने वाले कमरे में दोनों ने प्रवेश किया। पीले रंग की एक अधमैली साड़ी पहने एक स्त्री ने दोनों का स्वागत किया। झमिया ने अधिक शिष्ट दिखायी देने के उद्देश्य से सिर पर चादर का पल्ला कुछ नीचे सरका लिया था, जिससे उसका मुख आधा घूँघट से ढका रहे।

कमरा बहुत छोटा था। एक मैली और स्थान-स्थान पर फटी दरी के ऊपर एक छोटा-सा पुराना कालीन बिछा दिया गया था, जो संभवतः मंगनी का था। जब झमिया और चौबे जी बैठ गये तो स्वागत करने वाली स्त्री भी एक कोने में बैठ गयी। बैठते ही उसने भीतर की ओर झाँका, जहाँ दरवाजे पर कई जगह टूटी हुई एक चिक पड़ी थी, और किसी अदृश्य प्राणी को लक्ष्य कर के कहा : "बिटिया, पान दे जाओ, पंडित जी आये हैं।"

थोड़ी देर बाद एक साँवली सी लड़की, जिसकी उम्र बीस के करीब मालूम होती थी, और जो गाढ़े नीले रंग की साड़ी पहने थी, एक चौकोर थाली में पान सजा कर ले आयी। झमिया बड़े गौर से उसे देख रही थी। लड़की काफी स्वस्थ दिखायी देती थी। पंडितजी ने ठीक ही बताया था। उसका सिर साड़ी से ढका हुआ था। झमिया को उसके बाल कुछ अजीब ढंग से सँवारे हुए लगे। दो चोटियाँ गर्दन के नीचे लटक रही थीं, जिनके सिरे गुलाबी रंग के रिबनों से बँधे थे। साँवले मुख पर कोई सफेद चीज़ मली हुई साफ चमक रही थी। पंडित जी ने बताया था कि लड़की कुछ घमंडी

सी लगती है। झमिया को उसकी आँखों के भाव से और ऊपर को उठी हुई भौंहों से लगा कि वह कुछ नहीं, बहुत घमंडी होगी।

लड़की ने पान की थाली पंडित जी के आगे रख दी। उसके बाद वह फिर भीतर को वापस जाने लगी। पंडित जी ने कहा: "बिटिया, तनिक बैठो।" लड़की ने एक क्षण के लिये अपनी अम्माँ की ओर देखा और अम्माँ की आँखों से संभवतः कुछ संकेत पा कर वह पाँव पीछे की ओर फैला कर बैठ गयी। वह झमिया की ओर इस दृष्टि से देख रही थी जैसे उससे किसी कारण से बहुत रुष्ट हो। पर झमिया की आँखों में पुलक छलक रहा था। वह लड़की की ओर एकटक आँखों से देख रही थी। लड़की की क्रुद्ध दृष्टि का जो एक कारण उसने अपनी सरल बुद्धि से सोचा था वह कुछ गलत भी नहीं था। उसे लगता था कि लड़की एक अपरिचित स्त्री के आगे संकोच से सिमटी हुई है और उस संकोच को छिपाने की चेष्टा में उसकी आँखों में और भौंहों में क्रोध का भाव प्रकट हो रहा है। शायद इसीलिये लड़की का वह क्रोध का भाव भी झमिया को बहुत प्यारा लग रहा था।

"तुम्हारा नाम क्या है बहिन?" झमिया ने साहस करके पूछा।

लड़की के क्रोध का भाव क्षण-भर के लिये संकोच-भरी मुसकान में परिणत हो गया। उसने दाहिने हाथ से अपने दाहिने पाँव के अँगूठे का नाखून खुरचते हुए अपनी अम्माँ की ओर देखा।

अम्माँ ने कहा: "बताओ बिटिया, वह पूछ रही हैं।"

"मालती," किसी की ओर भी न देख कर लड़की ने कहा।

फिर सब लोग चुप हो गये। लड़की कनखियों से एक बार पंडित जी और एक बार झमिया की ओर देखती थी। फिर वही

क्रोध और घमंड का-सा भाव उसकी आँखों में सिमट आया था। और झमिया तो उसकी ओर से आँखें हटा ही नहीं पाती थी। देखती हुई वह मन में सोच रही थी : "क्या ऐसी अच्छी लड़की सचमुच देवर को मिल जायगी? क्या मेरे भाग्य में ऐसी प्यारी देवरानी बदी है?"

थोड़ी देर बाद पंडित जी ने घर की मालकिन की ओर देख कर कहा : "अच्छा ललाइन, अब चलें। मैं कल फिर आऊँगा।"

"अरे तो जरा कुछ मुँह तो मीठा कर लीजिये। आज पहली बार ये आयी हैं, ऐसे ही कैसे चली जायेंगी," झमिया की ओर संकेत करते हुए घर की मालकिन ने कहा।

"अच्छी बात है। पर जरा जल्दी करो, ललाइन", पंडित जी ने कहा। मसुरियादीन पानवाले की स्त्री को खुश रखने के लिये चौबे जी 'ललाइन' कह कर पुकारा करते थे।

मालकिन उठ कर भीतर गयीं। थोड़ी देर बाद मालती एक थाली में दो गिलास चाय और दो कटोरों में मिठाई ले कर आयी और झमिया के आगे रख दिया। उसके पीछे मालकिन—मालती की अम्माँ—भी चली आयीं।

"तुम भी बैठो और खाओ, बहन", झमिया ने बड़े स्नेह से कहा।

मालती अपनी अम्माँ की ओर देख कर इस तरह से मन्द-मन्द मुस्कराने लगी, जैसे किसी गँवार की बेवकूफी से भरी बात सुन कर कोई सयाना आदमी हँस देता है।

मालकिन ने आ कर कहा: "बिटिया खा लेगी बाद में। आप लोग खाइये।"

झमिया ने लड़की की ओर—विशेष कर उसकी गुलाबी रिबन से

बँधी हुई दो चोटियों की ओर—मुग्ध दृष्टि से देखते हुए एक टुकड़ा मिठाई का मुँह में डाल लिया। उससे अधिक उसने नहीं खाया। उसके बाद दो घूँट चाय पी कर उसने गिलास भी रख दिया।

"कुछ खाया नहीं आपने", मालकिन ने कहा।

"मुझे दोपहर में कुछ खाने की आदत नहीं है", झमिया ने सकुचाते हुए बड़े ही कोमल स्वर में कहा।

"पर चाय तो पी लीजिये।"

चाय का रंग एकदम काला था और उसे पीने में एक अजीब सा कसैला स्वाद मालूम हो रहा था। झमिया से वह पी नहीं जाती थी। पर न पीने से वह घमंडी और ओछी समझी जायगी, इस खयाल से वह मन मार कर धीरे-धीरे नीम के घूँट की तरह सारी चाय पी गयी। पंडित जी ने कटोरे की सारी मिठाई खतम कर दी थी और चाय भी वह बड़ी रुचि के साथ पीते रहे। पान अभी तक थाली में वैसा ही रखा था। पंडित जी ने दो बीड़े मुँह में दबाये और ऊपर से सुपारी और तमाखू की चुटकी लेते हुए उठ खड़े हुए। झमिया भी खड़ी हो गयी।

'आपने पान भी नहीं खाया?" मालकिन ने झमिया से कहा।

झमिया मुसकराने लगी। पंडित जी ने कहा : "वह विधवा हैं। पान नहीं खायेंगी।"

"ओह!" कह कर मालकिन उसकी ओर गौर से देखने लगीं, जैसे पहली बार देख रही हों।

"अच्छा अम्माँ, अब चलती हूँ," झमिया ने कहा। "बड़ी खुशी हुई आज आप लोगों से मिल कर।" कह कर उसने उनकी ओर हाथ जोड़े। फिर मालती के पास जा कर उसके सिर पर बड़े

स्नेह से हाथ फेरती हुई बोली : "बहिन, अब तुमसे तभी मिलना होगा जिस दिन तुम हमारे घर आओगी । अच्छा चलती हूँ ।" कह कर उसने फिर एक बार मालकिन की ओर हाथ जोड़े ।

बाहर आ कर पंडित जी और झमिया काफी देर तक 'बस' का इंतजार करते रहे । सवारियों से लदी हुई बसें आती थीं । एक-आध सीट खाली मिलती भी थी तो दूसरे लोग, जो पहले से खड़े थे, बैठ जाते थे । झमिया घर पहुँचने के लिये बहुत अधीर हो रही थी । वह सोच रही थी कैसे वह जल्दी से जल्दी देवर के पास पहुँचे और कब यह बताये कि जिस लड़की को वह देख आयी है वह रूप, गुण और शील, सभी बातों में कैसी अद्वितीय है । हर्ष का ऐसा ज्वार उसके भीतर उमड़ आया था कि जल्दी ही किसी सहृदय व्यक्ति के आगे उसका बाँध खोलना उसके लिये अत्यंत आवश्यक हो उठा था । इसलिये 'बस' की इंतजारी उसे बेहद खल रही थी । अंत में जब उन दोनों की बारी आयी और एक 'बस' में दो सीटें खाली मिल गयीं तब उसने चैन की साँस ली । उसे लग रहा था कि घर से निकले और देवर से मिले एक जमाना बीत चुका ।

रास्ते भर वह पंडित जी से मालती की प्रशंसा करती रही । जब घर पहुँची तब महावीर एक खटिया पर बैठा हुआ हिंदी का कोई संवाद-पत्र पढ़ रहा था । वह सीधे उसके पास जा कर खड़ी हो गयी । "देख आयी हूँ, देवर, मैं अपनी देवरानी को !" कहते हुए पुलक-भरी प्रसन्नता उसकी आँखों से छलकी पड़ रही थी । "एकदम राजरानी सी लगती है, सच मानो । तुम्हारे भाग बहुत अच्छे हैं । उसे एक बार देखोगे तो देखते ही रह जाओगे ! उसका नाम भी कितना अच्छा है—मालती ! हम जैसी फूहड़ और गँवार औरतों का सा नाम नहीं

है उसका—झमिया, परबतिया, गंगाजली—ये कोई नाम है भला! मालती—आहा, कैसा प्यारा नाम है! जैसा नाम है वैसे ही गुण भी उसमें हैं। तुम उसे देख कर बहुत खुश हो जाओगे, देवर! मैं सच कहती हूँ। उसे पा कर तुम ज़िंदगी भर बड़े सुख से रहोगे।" उसकी आँखों में प्रसन्नता के आँसू चमक आये।

"अरे भौजी, तुम तो उस पर इस कदर लट्टू हो उठी हो! पहली ही मुलाकात में तुम्हारा यह हाल है तो आगे जाने क्या होगा! अभी उसे घर आने दो, उसके बाद अच्छी तरह देखो-भालो, परखो, तब राय देना।"

"मैं अच्छी तरह देख चुकी हूँ और परख चुकी हूँ, देवर। तुम खुद ही देख लोगे कुछ दिनों बाद।"

महावीर मुस्करा कर रह गया। झमिया के उत्साह और उल्लास का छुतहा प्रभाव उसके स्वभाव से ही निरुत्साही मन पर भी पड़ने लगा था। आज पहली बार उसके मन में अपनी भावी पत्नी के प्रति वास्तविक उत्सुकता जगने लगी थी।

८

एक सप्ताह के भीतर ही सगाई हो गयी और एक महीने के भीतर विवाह भी हो गया। जिस दिन नयी बहू ने घर में प्रवेश किया उस दिन झमिया को लगा कि उसके सारे पिछले जीवन की व्यर्थता चरम सार्थकता में परिणत हो गयी। उसने बड़े प्रेम और आदर से देवरानी का स्वागत किया। और पहले ही दिन से एक नौकरानी की तरह उसकी सेवा में जुट गयी। नये घर में, नयी परिस्थितियों में नयी बहू को किसी प्रकार की असुविधा का अनुभव न हो इसके लिये वह पूरी कोशिशें करती रही।

पर वह देख रही थी कि मालती के रूखे व्यवहार में उसकी किसी भी सेवा से कोई अंतर नहीं आ रहा था। मालती के रुख से ऐसा लगता था कि वह झमिया की प्रत्येक सेवा को अपना सहज अधिकार समझ कर अत्यंत उदासीनता के साथ ग्रहण कर रही है। पर झमिया के उत्साह में उसकी उस बर्फ़ की-सी ठंढी उदासीनता से भी कोई अंतर नहीं आया। वह उसी प्रेम से और उसी लगन से उसकी छोटी से छोटी आवश्यकता पर ध्यान देती हुई उसकी पूर्ति का प्रबंध करके ही संतोष पाती थी। वह केवल एक ही उद्देश्य की ओर अपनी समस्त भावनाओं को केन्द्रित किये हुए थी। वह उद्देश्य यह था कि महावीर हर तरह से अपने नये जीवन से सुख, संतोष और शान्ति प्राप्त करे। वह महावीर की प्रत्येक गति-विधि पर गौर किया करती थी। उसके मुख पर अंकित होने वाले प्रत्येक भाव, उसकी प्रत्येक बात और प्रत्येक व्यवहार पर ध्यान देती थी और बड़ी बारीकी से उस पर विचार किया करती थी। प्रारंभ में कुछ दिनों तक उसे लगा कि महावीर अपने नये जीवन से हर तरह से संतुष्ट है और भौजी के प्रति उसकी कृतज्ञता बात-बात में उसकी आँखों में छलक कर व्यक्त होती रहती थी। झमिया उतने ही से अपनी सारी श्रम-साधना को सार्थक समझने लगी थी। पर अभी तक उसके मन में कुछ आशंकाएँ शेष थीं।

मालती के स्वभाव का कोई भी पहलू झमिया के आगे सुस्पष्ट रूप से उभर कर नहीं आ रहा था। इसका एक कारण शायद यह भी था कि मालती अभी ससुराल में जम कर नहीं रह पायी थी। थोड़े-थोड़े दिनों के अंतर में उसके लिये मायके से बुलावा आता रहता था। प्रारंभ के तीन चार महीने इसी तरह बीत गये। मालती कुछ

समय के लिये ससुराल आती थी, फिर चली जाती थी; फिर आती थी और फिर वापस चली जाती थी।

पाँचवें महीने मालती ससुराल में ही जम कर रही और तब उसका एक निश्चित रूप झमिया के आगे धीरे-धीरे सुस्पष्ट होने लगा। तब झमिया ने जाना कि वह उसे एक साधारण नौकरानी से अधिक नहीं मानती और उसकी सारी सेवाओं का एकदम गलत अर्थ उसने लगाया है। वह सुबह आठ बजे के पहले बिस्तर से नहीं उठती थी। झमिया उसे बिस्तर पर ही चाय दे आती थी। दोनों जून का खाना झमिया स्वयं बनाती थी और मालती उसे घर के किसी भी काम में मदद नहीं देती थी। महावीर यह सब रंग-ढंग देख रहा था और इस संबंध में वह मालती के प्रति बीच-बीच में मीठे ताने भी कसा करता था। पर उसका कुछ भी असर होते नहीं दिखायी देता था। झमिया फिर भी मालती के विचित्र रुख को बड़े प्रेम से हँस कर ग्रहण करती थी और महावीर को समझाती रहती थी कि ऐसे ताने न कसे, क्योंकि अभी देवरानी लड़की ही है और अभी उसके आराम करने और खेलने के दिन हैं। उसे सब समय इस बात की चिंता रहती थी कि कहीं किसी समय महावीर कोई ऐसी बात देवरानी से न कह बैठे जिससे उसके मन को चोट पहुँच जाय।

"भौजी अभी तुम्हें पाँच बरस की नन्ही बच्ची समझती हैं", एक दिन झमिया के सामने ही महावीर ने मीठे व्यंग के साथ मालती से कहा।

"पाँच नहीं, बीस ही बरस की सही, तो भी क्या हुआ!" झमिया ने कहा: "अभी उसने दुनिया देखी ही कहाँ है! अभी

कुछ दिन और सयानी हो जाय, बच्चों की माँ बन जाय। तब अपने-आप ही सब-कुछ समझ जायगी। देवरानी बहुत समझदार है देवर, उसे कुछ ऐसी-वैसी न समझना। समय आने दो, तब उसकी कदर तुम अपने-आप करने लगोगे!"

महावीर ने उस समय हँस कर झमिया की बात टाल दी थी। पर धीरे-धीरे उसे मालती के संबंध में जो नये-नये अनुभव होते चले जा रहे थे उनसे उसकी परेशानी दिन पर दिन बढ़ती चली जा रही थी। कुछ दिनों तक वह यह सोचता रहा कि भौजी के आगे सारी भीतरी बातें स्पष्ट करे या नहीं। उसे अपनी भोली और भली भौजी के ऊपर बहुत तरस आता था कि वह किस सरल विश्वास को अपना संबल बना कर किस आशा और उत्साह से उसकी गृहस्थी का सारा काम निभाये चली जा रही थी, जब कि मालती के भीतर कुछ दूसरे ही पेंच काम कर रहे थे। मालती ने झमिया के विरुद्ध उसके कान भरना शुरू कर दिया था। उसकी बातों से बार-बार यही ध्वनि निकलती थी वह सचमुच झमिया को एक नौकरानी ही समझे हुए है—साधारण नहीं बल्कि एक खतरनाक नौकरानी, जो अपनी हैसियत को भूल कर घर की मालकिन बनने का दावा भरती है! वह कभी एक दिन के लिये भी झमिया से प्रसन्न हो कर नहीं बोली थी और उसके आगे सब समय भौंहें चढ़ाये रहती थी। प्रारंभ में कुछ दिनों तक वह अपनी चढ़ी हुई भौंहों द्वारा ही अपने मनोभाव को प्रकट करती रही, पर बाद में धीरे-धीरे उसके शब्दों द्वारा भी उसका वह मनोभाव व्यक्त होने लगा। सब से अधिक गुलबिया के प्रति उसका विद्वेष जग उठा था। आठ साल की उस बच्ची को जब वह सुबह-शाम पेट-भर कर तृप्ति के साथ खाना खाते हुए देखती

तो उसे लगता कि उसके पति के अन्न का अत्यंत शोचनीय अप-व्यय हो रहा है। गुलबिया छुटपन ही से अपने चाचा की मुँह लगी हुई लड़की थी। महावीर उसे अपनी सगी लड़की से भी अधिक मानता था, उसकी प्रत्येक माँग को पूरा करता था और उसके बालहठ को दुलराता रहता था। मालती को यह बात भी बहुत अखरती थी। वह सब समय गुलबिया से झिड़क कर बोलती थी। झमिया अपनी लड़की को ही दोष देती हुई कभी तो हँस देती थी और कभी स्वयं भी गुलबिया को इस बात के लिये डाँट बताने लगती कि वह अपनी चाची के साथ भली लड़कियों की तरह आदर पूर्वक व्यवहार नहीं करती। उसके अकपट मन में अभी तक यह विश्वास बना हुआ था कि मालती अपने स्नेहाधिकार से ही गुलबिया को डाँटती और झिड़कती है।

एक दिन कोई पर्व था, शायद शिवरात्रि थी। दिन-भर के व्रत के बाद झमिया ने कुछ फलाहारी चीजें बनायी थीं, जिनमें ताल-मखाने की खीर भी थी। रात में उपवास तोड़ने के समय जब महावीर खाना खाने बैठा तब गुलबिया भी उसकी बगल में बैठ गयी। "तुम्हें कौन चीज पसंद है, बिटिया?" महावीर ने सस्नेह गुलबिया से पूछा।

"मैं खीर खाऊँगी, चाचा", गुलबिया ने मचलते हुए कहा।

"अच्छी बात है", कह कर महावीर ने अपना कटोरा उसके आगे बढ़ा दिया। झमिया ने आपत्ति जताते हुए कहा: "इसे मैं दूसरे कटोरे में दे दूँगी, तुम खाओ देवर।" पर गुलबिया हठ करती हुई बोली: "नहीं, मैं चाचा के ही कटोरे की खीर खाऊँगी।"

"खाओ, खाओ", महावीर ने सारी आपत्ति को टालते हुए

पुचकार-भरे स्वर में कहा। झमिया ने महावीर के आगे दूसरा कटोरा बढ़ा दिया।

गुलबिया ने जल्दी ही वह कटोरा साफ कर दिया और फिर कहा : "और खाऊँगी, चाचा !"

महावीर ने दूसरे कटोरे की खीर भी उसके कटोरे में उलट दी। गुलबिया ने उसे भी जल्दी ही चट कर दिया और फिर मचलती हुई बोली : "चाचा, और !"

महावीर उसे तीसरे कटोरे की खीर भी देने ही जा रहा था कि मालती कटु स्वर में बोल उठी : "बड़ी चटोर लड़की है। मरभुखों की तरह कटोरे पर कटोरा साफ किये जा रही है। अरी, कुछ हम लोगों के लिये भी रहने देगी या नहीं ?"

झमिया और महावीर दोनों स्तब्ध दृष्टि से उसकी ओर देखते ही रह गये। गुलबिया भी आश्चर्य-भरी दृष्टि से चाची की ओर देखने लगी। शायद वह सोचने लगी कि चाचा चाची के स्वभाव में इतना अंतर कैसे संभव हुआ और माँ और चाची में क्या भेद होता है। महावीर ने मालती के कटु मंतव्य के बावजूद अपने कटोरे की खीर गुलबिया के कटोरे में डाल दी। पर गुलबिया को फिर उसे खाने का साहस नहीं हुआ और वह चुपचाप उठ कर वहाँ से चली गयी और एक कोने में जा कर खड़ी हो गयी। महावीर ने और झमिया ने कितना ही समझाया, पर वह फिर नहीं आयी।

उसके दूसरे दिन सुबह को जब महावीर सो कर उठा तब झमिया ने देखा कि उसका चेहरा एकदम मुरझाया हुआ है।

"देवर, तबीअत क्या खराब है ? रात में क्या नींद नहीं आयी ? आज तुम बहुत सुस्त दिखायी दे रहे हो और उदास भी ! क्या बात

है ?" शंकित हो कर झमिया ने पूछा ।

"कुछ नहीं, सब ठीक है ।" कह कर महावीर ने बात टालनी चाही ।

पर झमिया की आशंका घटने के बजाय और बढ़ गयी । "नहीं देवर, तुम्हारी तबीअत ज़रूर खराब है, तुम्हें आराम करना चाहये," उसने अपनी बात पर जोर देते हुए कहा ।

"भौजी, साफ बात यह है कि जिस बात का मुझे डर था और जिसके लिये मैं ब्याह करने से बराबर इनकार करता रहा वही बात सामने आ रही है......"

"क्यों, क्या हुआ ?" झमिया ने और अधिक चिंतित हो कर पूछा ।

"होगा और क्या । अब वह साफ साफ कहने लगी है कि वह तुम लोगों के साथ नहीं रहना चाहती । कहती है कि 'इन लोगों को रहना हो तो नौकर-चाकरों की तरह रहें न कि मालकिन बन कर' ! वह यह भी कहती है कि..."

इतने में मालती दबे पाँव उन लोगों के पास ही आ कर खड़ी हो गयी । झमिया घबरायी हुई दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी, पर महावीर तनिक भी भयभीत न हुआ । वह उसके सामने ही कहता चला गया : "यह कहती है कि मैं तुम लोगों के पीछे अपना बहुत सा रुपया बरबाद कर रहा हूँ और तुम्हें हर महीने बहुत सा रुपया दे कर इसका गला काट रहा हूँ...तुम्हीं बताओ भौजी; ऐसी कमीनी औरत के साथ, जो तुम्हारी इज्जत करने के बजाय तुम्हें नौकरानी से भी बदतर समझती है, कब तक मेरी निभ सकेगी ? यह नहीं सोचती कि तुम्हारी ही जिद के कारण मैं इससे ब्याह करने

के लिये राजी हुआ हूँ, नहीं तो यह किस काबिल थी ?"

"तो अब भी क्या बिगड़ा है !" अस्वाभाविक स्वर में चीखती हुई मालती बोल उठी। "छोड़ दो मुझे ! मैं खुद छोड़ कर चली जाऊँगी ! मुझे क्या पता था कि सौत को मेरी छाती पर बिठाने के लिये ही तुम मुझसे शादी कर रहे हो ! तुम्हें बड़की ही पसंद है तो तुम उसी के साथ रहो। मैं इन सत्यानाशियों के बीच में नहीं रह सकती, जो मेरा सब कुछ लूटने पर तुले हैं। मैं आज ही मायके चली जाऊँगी, फिर कभी लौट कर नहीं आऊँगी !" कहती हुई वह धाड़ मार कर रोने लगी।

झमिया के चेहरे का रंग ही एकदम उड़ गया था। कुछ समय से वह मालती को देख कर शंकित अवश्य होने लगी थी, पर उसके उस रूप की कल्पना उसने पहले कभी नहीं की जिसे आज वह प्रत्यक्ष देख रही थी। कुछ देर तक वह अपनी पथरायी हुई आँखों से मंत्र-भ्रमित सी उसकी ओर देखती रही। पर ठीक से कुछ भी नहीं देख पाती थी। उसके चारों ओर अँधेरा सा छाने लगा था और आँखों के आगे तारे से दिखायी देने लगे थे। उसे लगता था कि उसे चक्कर आ रहा है और वह अब गिरने ही को है। वह आँखें बंद करके अपने भीतर से शक्ति बटोरने लगी। वह स्वयं एक तमाशा बन जाने से अपने को प्राणपण से बचाना चाहती थी। आँखें बंद करने से जब धीरे-धीरे चक्कर का दौर समाप्त हुआ तब वह रोती हुई मालती के पास गयी और उसका दायाँ हाथ अपने हाथों में ले कर बहुत ही मीठे स्वर में, अत्यंत अनुनयपूर्वक बोली : "बहिन, तुमने बात तो बहुत ही बेजा कही है, फिर भी तुम जाने की बात न कहो। मैं खुद ही चली जाऊँगी। रोओ मत ! फजूल में अपना जी खराब

क्यों करती हो !"

"भौजी !" महावीर ने सहसा बहुत ही कड़े स्वर में कहा। दोनों चकित हो कर उसकी ओर देखने लगीं।

उसकी कड़ी मुद्रा देख कर मालती का रोना बंद हो गया और झमिया भी स्थिर दृष्टि से, प्रश्न-सूचक आँखों से उसकी ओर देखती रही।

"भौजी," महावीर ने पहले से हलके किन्तु दृढ़ स्वर में कहा : "अगर तुम भी चले जाने की बात कहती हो तो यह जान लो कि तुम दोनों से पहले खुद मैं ही यहाँ से निकल भागूँगा। मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम क्यों इसे मनाने की कसम खाये बैठी हो? यह अगर इस घर को छोड़ कर चले जाना चाहती है तो इसे जाने दो। और अब यह रहना भी चाहे तो मैं रहने नहीं दूँगा, मैं साफ़-साफ़ कहे देता हूँ। जब तक यह तुम्हारे पाँवों को छू कर तुमसे अपनी बेहूदा बातों के लिये क्षमा न माँगे और आगे से चुपचाप, शांति के साथ रहने और तुम्हारी आज्ञा मान कर चलने की प्रतिज्ञा न करे तब तक मैं इसे अपने घर में रहने नहीं दे सकता, यह तुम जान लो। और अगर तुमने कहीं चलने की बात कही तो सच मानो मैं उसी क्षण भाग कर सदा के लिये लापता हो जाऊँगा......"

महावीर की आवेश-भरी बातें सुन कर झमिया थर-थर काँपने लगी। वह कुछ कहना चाहती थी, पर जीभ जैसे पत्थर की तरह सूख कर जड़ बन कर रह गयी हो। किंतु मालती का आवेग पहले से दुगना बढ़ गया। वह चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगी : "मैं पहले ही से जानती थी यह बात! मैं जानती थी कि तुम उसे कभी छोड़ना नहीं चाहोगे। मुझे पता था कि वह मेरी सौत है। पर मैं

पूछती हूँ कि अगर तुम उसे इतना चाहते थे तो क्यों मेरे साथ शादी करके तुमने मेरा सर्वनाश किया ? क्यों पहले ही मेरे माँ-बाप को साफ-साफ बात नहीं बता दी ? इस समय कैसी भोली और अनजान सी बनी हुई है यह चुड़ैल। इसकी सारी चालाकी मैं समझती हूँ। यह चाहती थी कि ब्याहता औरत घर पर रहेगी तो उसकी आड़ में दोनों बदनामी से बचे भी रहेंगे और साथ ही संबंध भी बनाये रहेंगे। पर मैं भंडाफोड़ कर के ही रहूँगी, तुम लोगों को चैन से नहीं रहने दूँगी—चाहे यहाँ रहूँ चाहे छोड़ कर घर चली जाऊँ......"

"यहाँ तुम अब रह नहीं सकती हो," दाँतों को पीसते हुए, विस्फोटक स्वर में महावीर ने कहा। उसके मुख पर एक असाधारण उग्रता की छाप पड़ गयी थी और उसका साँवला रंग और अधिक गाढ़ा हो उठा था। "तुमको मैं यहाँ से खदेड़ कर छोड़ूँगा। तुमसे जितना बन पड़े हम लोगों को बदनाम करो। यहाँ से कालबादेवी तक रास्ते भर हम लोगों के खिलाफ चिल्लाती चली जाओ, इसकी तनिक भी परवा मुझे नहीं है। अगर हम लोग सच्चे हैं तो तुम्हारे लाख बकने पर भी तनिक भी आँच हम लोगों पर नहीं आने पायेगी। जाओ, अभी यहाँ से निकलो, नहीं तो मैं धक्का दे कर तुम्हें बाहर निकाल दूँगा..." और वह असाधारण क्रोध के कारण आपे से बाहर हो कर सचमुच उसे खदेड़ने के इरादे से उसकी ओर बढ़ने लगा।

पर झमिया बीच ही में आ कर उसके पाँवों पर गिर पड़ी। "देवर, तुम्हें मेरी हत्या लगेगी अगर तुमने बहिन को तनिक भी छुआ तो ! मैं तुम्हारे पाँवों पड़ती हूँ, तुम तनिक आराम करो और गुस्सा पी जाओ। मैं बहिन को समझा लूँगी। तुम तनिक भी

चिंता न करो। वह अभी लड़की है, अभी वह आदमी पहचानने में भूल करेगी ही। जब सयानी हो जायगी तब अपने-आप जान लेगी कि कौन आदमी कैसा है।"

"तुम बहुत गलती पर हो, भौजी," तनिक नरम हो कर महावीर ने कहा। "यह ऐसी चुड़ैल है कि सात जनम में भी कभी सुधर नहीं सकती। लो, मैं तुम्हारी बात मान कर जाता हूँ अपने कमरे में। पर तुमसे कह देता हूँ कि इसे किसी तरह भी मनाने के फेर में अब न पड़ना। इससे मैं आज से कोई संबंध नहीं रखना चाहता। इसकी जहाँ इच्छा हो जाय, जहाँ रहना चाहे रहे।" और वह वहाँ से सीधे अपने कमरे में चला गया।

झमिया की जैसे कमर ही टूट गयी थी। फिर भी किसी तरह वह उठी और आँचल से आँखें पोंछ कर मालती के पास गयी। "बहिन," उसने भर्रायी हुई आवाज में कहा, "आज तुम्हें मैं समझा नहीं सकूँगी कि देवर को मैं किन आँखों से देखती आयी हूँ और वह मुझे कैसा आदर देते आये हैं। तुमने आज जो मरम को छेदने वाली कड़ी बातें बिना जाने-बूझे कही हैं उनसे बड़े गहरे घाव पैदा हो गये हैं। वे घाव कब तक भरेंगे, मैं कह नहीं सकती। फिर भी मैं तुमसे बिनती करती हूँ कि अब उनमें ज्यादा नमक-मिर्च न भरो। यह मैं तुम्हारी ही भलाई के लिये कह रही हूँ। भगवान निश्चय ही तुम्हारा भला करेंगे। चुपचाप, शांत हो कर अपना काम किये जाओ, और अब अगर देवर कुछ दिनों तक तुमसे न भी बोलें तो भी तुम कोई शिकायत किये बिना ही गिरस्ती का काम-काज देखती-भालती चली जाओ। मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि तुम सुखी रहो। भगवान तुम्हें सुमति दें, जिससे तुम देवर को जिन्दगी भर खुश रख सको..."

और वह आँखें पोंछती हुई महावीर के कमरे में गयी। गुलबिया भी, जो इतनी देर तक चुपचाप सारा कांड देख रही थी और कुछ समझ नहीं पा रही थी, उसके पीछे-पीछे हो ली। महावीर एक खटिया पर अपने घुटनों पर दोनों हाथ टेक कर दोनों हथेलियों पर अपना मुँह आधा छिपाये, सिर नीचा किये बैठा था।

"देवर, बहिन को माफ कर दो," स्नेह और सांत्वना-भरे स्वर में झमिया बोली। "वह अभी बच्ची है। जब कुछ बड़ी हो जायगी तब अपने-आप जान जायगी कि उसने कैसी गलत बातें कही थीं। दुखी न होओ, तनिक भी सोच में न पड़ो। उठो, उसे जा कर मना लो..."

महावीर सीधे बैठ गया और दृढ़ता से बोला: "मैं अब उस बदजबान और बदगुमान औरत को इस जिन्दगी में कभी नहीं मनाऊँगा। उसने तुम्हारी जैसी देवी के लिये जो वचन कहे उन्हें मैं कभी न तो भूल सकता हूँ न उनके लिये उसे कभी माफ कर सकता हूँ। उसे जहाँ जाना हो जाये, जो कुछ करना हो करे..."

"नहीं देवर, नहीं, मैं तुम्हारे गोड़ गिरती हूँ, ऐसा न कहो!" और वह सचमुच उसके पाँवों पर गिर पड़ी।

"अरे, यह क्या करती हो भौजी," कह कर महाबीर भयभीत हो कर, उचकता हुआ उठा और कुछ हट कर खड़ा हो गया। "तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो, भौजी। तुम जैसा कहोगी मैं करूँगा—तुम्हारी कोई बात मैं टाल नहीं सकता। पर···मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ कि उसे मनाने से मेरे लिये आत्महत्या करना अच्छा है..." और उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े।

झमिया कुछ क्षणों तक स्तब्ध दृष्टि से उसकी ओर देखती रह

गयी। उसके बाद वह धीरे से उठ खड़ी हुई और अत्यंत स्नेह से उसका हाथ पकड़ कर फिर आँचल से उसके आँसू धीरे से पोंछती हुई बोली : "तुम आज सचमुच बहुत दुखी हो, देवर। इसलिये मैं आज अब तुमसे कुछ न कहूँगी। जाओ, कुछ देर बाहर टहल कर अपना जी बहला आओ। आज की सारी बातों को भूल जाने की कोशिश करो। इस तरह की छोटी-छोटी बातों का खियाल करते रहोगे तो जिन्दगी में एक कदम भी चलना मुश्किल हो जायगा।"

महावीर क्षण-भर के लिये सिर झुकाये खड़ा रहा, उसके बाद धीरे से बाहर निकल गया। उसके चले जाने के बाद झमिया कुछ देर तक अनमने भाव से बाहर को देखती हुई खड़ी रही। गुलबिया उसके एकदम निकट—प्रायः सटी हुई—खड़ी थी। वह किसी अज्ञात रहस्यमयी अंतःप्रज्ञा से जैसे अपनी माँ की सारी वेदना को समझने लगी थी। वह धीरे से झमिया का हाथ सहलाने लगी, जैसे उसे सांत्वना दे रही हो। जब झमिया काफी देर तक वैसी ही खड़ी रही और अपने स्थान से हिली नहीं, तब गुलबिया ने मचलने की-सी—और प्रायः रुआँसी—आवाज़ में उसकी साड़ी के पल्ले से खेलते हुए कहा : "अम्माँ, चलो अपने कमरे में!"

उसकी आवाज़ से झमिया की अन्यमनस्कता भंग हुई। वह अपने निरंतर उमड़ते चले आने वाले आँसुओं को पोंछती हुई, गुलबिया की बात का कोई उत्तर दिये बिना ही, धीरे-धीरे चलती हुई महावीर के कमरे से बाहर निकल आयी। अपने कमरे में जा कर भीतर से किवाड़ बंद करके वह खटिया पर लेट गयी। गुलबिया सब समय उसका आँचल पकड़े हुई थी। वह भी उसके साथ ही लेट गयी।

झमिया ने साड़ी से अपना सारा मुँह और सिर लपेट कर ढक लिया था। बीच-बीच में उसका भावोच्छ्वास ऐसे वेग से उमड़ उठता था कि गुलबिया का सारा शरीर ही उसके आवेग के धक्के से हिल उठता था।

जब काफी देर हो गयी और झमिया नहीं उठी तब गुलबिया ने फिर मचलना शुरू किया। रोने के से स्वर में बोली : "अम्माँ, अब उठोगी नहीं ? मुझे भूख लगी है, आज क्या खाना नहीं बनाओगी ?"

झमिया फिर भी चुप रही। गुलबिया के लिये उसका मौन और अधिक असह्य हो उठा। वह उसी तरह मचलती हुई झमिया को हाथ से धक्के देती हुई हिलाने लगी और बोली : "उठो अम्माँ, जल्दी ! भूख लगी है।" उसे वास्तव में भूख कुछ विशेष नहीं लगी थी। वह केवल अम्माँ को उस अवसाद की स्थिति से जगाना चाहती थी, जिसके कारण स्वयं उसका भी चपल बाल-हृदय किसी अज्ञात भार से बोझिल हो उठा था। आज सुबह ही जो कांड हो गया था, जिसके कारण उसके चाचा भी दुखी हो कर आँसू गिरा कर, बाहर निकल गये थे और अम्माँ अभी तक मुँह बंद किये सिसकियाँ भरती चली जाती थी, उसके पीछे ठीक क्या कारण हो सकता है, इसका तनिक भी आभास उसकी बाल-बुद्धि को कहीं से नहीं मिल रहा था। केवल रह-रह कर एक ऐसी भय-भरी उदासी उसके छोटे से मन को चारों ओर से घेर रही थी जैसी उसे कभी-कभी तब मालूम होती थी जब रात में अचानक जगने पर वह कमरे में एकदम सन्नाटा और अँधेरा छाया हुआ पाती थी।

झमिया उसके हिलाने पर भी कुछ देर तक नहीं बोली। पर जब गुलबिया बार-बार उसे हिलाती और "अम्माँ, अम्माँ,"

चिल्लाती चली गयी तब वह तंग आ गयी। खीझ कर उसने अपना मुँह खोला और प्रायः झल्लाती हुई बोली : "क्या है? क्यों तू मुझे एक मिनट आराम से नहीं रहने देती, अभागी छोकरी? तेरे ही कारन तो यह दिन मुझे देखना पड़ रहा है। तू अगर न होती तो मैं न मालूम कब गले में फाँसी लगा कर इन सारे झंझटों से छुट्टी पा गयी होती!"

गुलबिया के अविकसित हृदय को वह बात तीर की तरह लगी। झमिया की बात का ठीक अर्थ समझ पाना तो उसके लिये असंभव था; पर कोई एक अस्पष्ट और कड़वी भावना रह-रह कर उसके नन्हें से हृदय को झकझोरने लगी। उसे कुछ ऐसा लगा कि जिस वातावरण के बीच में वह पली है और पल रही है उसके लिये वह अनुपयुक्त है—उससे जैसे उसका मेल ठीक बैठ नहीं पाता। अकेले अम्माँ का पल्ला पकड़े रहने के सिवा उसके लिये दूसरा चारा नहीं है। पर आज जो कांड हो गया—जिसके कारण अम्माँ दुखी हो कर, मुँह ढाँप कर खटिया पर चुपचाप लेट गयी—उससे गुलबिया के आगे इतना तो स्पष्ट हो ही गया कि अम्माँ का पल्ला भी बहुत मजबूत नहीं है और वह अम्माँ को भारी लगती है। चाचा का उसे बड़ा भरोसा था। पर जब से उनकी शादी हुई और चाची घर आयी तब से उनका स्वभाव भी न जाने कैसा बदल गया है—सब समय दुखी से और उसकी ओर से कुछ उदासीन से लगते हैं। गुलबिया के बाल-मस्तिष्क के लिये यह संभव नहीं था कि वह इन सब बातों का विश्लेषण करती, पर एक अस्पष्ट, छायात्मक अनुभूति उसके आगे से एक पर्दे को जैसे धीरे-धीरे हटा रही थी।

दुखी अम्माँ के मुँह से निकली हुई उस तरह की कही और कड़वी बात सुन कर उसने मचलना बंद कर दिया। कुछ देर तक वह न जाने क्या सोचती रही और चुपचाप आँसू गिराती रही। उसके बाद धीरे-धीरे उसकी आँखें झपने लगीं और वह सो गयी।

झमिया जब काफी देर बाद उठी तब गुलबिया को चुपचाप सोते देख कर उसके भीतर मूक रुदन की एक तीव्र तरंग उच्छ्वसित वेग से उमड़ उठी। उसके गीले आँसुओं का स्रोत सूख चुका था। कुछ देर तक वह पत्थर के आँसू बहाती हुई एकटक गुलबिया की निद्रामग्न छवि की ओर निहारती रही। उसके बाद धीरे से उसके सिर पर हाथ फेरती हुई जमीन-आसमान की न जाने किन-किन चिंताओं में डूब गयी।

६

मालती ने जब झमिया की अतिशय विनम्रता और महावीर का अत्यंत कड़ा रुख देखा तब दोनों की अजीब सी सम्मिलित प्रतिक्रिया उसके मन पर हुई। उसने देखा कि अभी चुपचाप, शांत भाव से घर की नयी दुलहिन का कर्तव्य निभाये चले जाने में ही उसका कल्याण है। बाद में धीरे-धीरे पति को पूर्णतः अपने वश में करके तब झमिया के समूल निराकरण की ओर प्रयत्नशील होना ठीक रहेगा। उसकी स्वार्थ-बुद्धि ने उसे इस सत्य से परिचित करा दिया कि रस्सी को उसी हद तक खींचना ठीक होगा जिस हद तक वह टूटे नहीं। यदि रस्सी ही टूट गयी तो फिर खींचतान का सारा उद्देश्य ही व्यर्थ सिद्ध हो जायगा। एक बार उसने सोचा था कि किसी एक नौकर को साथ में ले कर बिना किसी से कुछ कहे सुने

सीधे मायके चली जाय और वहाँ पहुँच कर अम्माँ की राय ले कर यह जान ले कि उस परिस्थिति में क्या उचित है और किन-किन अस्त्रों का उद्योग किन-किन रूपों में करना ठीक रहेगा। पर जब उसने महावीर के बहुत ही कड़े रुख पर विचार किया और उसकी बातों में अडिग दृढ़ता पायी तब उसका विचार बदल गया। वह मौन समर्पण का-सा भाव जताती हुई चुपचाप सभी काम करती रही। उस दिन उसने पहली बार स्वयं खाना बनाया। जब खाना तैयार हो चुका तब झमिया के पास जा कर उसने हाथ जोड़ कर क्षमा माँगते हुए कहा : "जीजी, आगे से ऐसी गलती फिर कभी नहीं होगी। चलो, खाना खा लो। सुबह से भूखी हो।" गुलबिया को उठा कर, उसका हाथ पकड़ कर मालती उसे चौके पर ले गयी और मीठे स्वर में बोलती हुई उसे खिलाने लगी। उसके स्वभाव में वह आकस्मिक परिवर्तन देख कर झमिया को भी आश्चर्य हुआ और गुलबिया को भी। झमिया को तनिक भी भूख नहीं मालूम हो रही थी। पर मालती का अप्रत्याशित शांत रूप देख कर वह सुलह की बात को स्वयं ही ठुकरा देना नहीं चाहती थी। इसलिये वह भी चुपचाप खाना खाने चली गयी। पर एक टुकड़ा भी रोटी का मुँह में न डाल सकी। एक रोटी उसने किसी तरह बलपूर्वक चबा-चबा कर और पानी के घूँटों के साथ निगल कर समाप्त की। महावीर भूखा ही गया था और अभी तक नहीं लौटा था। उसके खिन्न मन और क्लान्त शरीर की कल्पना करके वह रोटी को ठीक से गले के नीचे उतार ही नहीं पाती थी।

झमिया दिन-भर बड़ी अधीरता से महावीर का इंतजार करती रही। कहीं वह सचमुच बंबई छोड़ कर किसी अज्ञात स्थान के लिये

निकल न पड़े, या कोई और कांड न कर बैठे, इस चिंता से वह घुली जाती थी। अंत में बड़ी लंबी प्रतीक्षा के बाद शाम को जब महावीर लौटा तब उसकी जान में जान आयी।

तीन दिन तक सारे घर में एक प्रकार से सन्नाटा छाया रहा। और तो और, गुलबिया तक ने रोना और मचलना प्रायः बंद कर दिया था। उस दिन की घटना से उसके भीतर एक अजीब सी प्रतिक्रिया होने लगी थी। विशेष कर उसकी अम्माँ ने जिन कड़े शब्दों से उसे तिरस्कृत किया था वे उसके अंदर बहुत दूर तक गड़ चुके थे। कारण कुछ भी ठीक से समझ में न आने का फल यह हुआ था कि वह छोटी से छोटी बात के संबंध में अत्यंत सजग और सावधान रहने लगी और अपनी सारी भीतरी शक्ति को केन्द्रित करके उसे सारे पारिवारिक रहस्यों को समझने और अपनी स्थिति को ठीक से जानने के उद्देश्य से नियोजित करने लगी।

धीरे-धीरे घर के अशांत और अस्वाभाविक वातारण में शांति और स्वाभाविकता सी आ गयी। अंतर केवल इतना देखने में आया कि घर का प्रायः सभी काम मालती ने झमिया पर छोड़ने के बजाय स्वयं अपने हाथों में ले लिया। खाना अब मालती ही बनाती थी और गिरस्ती का सारा सामान भी वह स्वयं ही सँभालती थी। प्रारंभ में कुछ दिनों तक झमिया उससे आग्रह करती रही कि वह आराम से बैठी रहे और कुल काम उसी पर छोड़ दे, क्योंकि वह वर्षों से उस तरह के कामों की आदी हो चुकी है, जब कि मालती के लिये वह सब नया अभ्यास है। पर मालती बिना कुछ तर्क किये इस सफाई से धीरे-धीरे सारा काम अपने हाथों में लेती जाती थी कि झमिया के लिये चुपचाप अलग हट जाने के सिवा दूसरा चारा नहीं

था। अपने को अकर्मण्य पा कर उसे लगता था कि उसका सारा जीवन ही निरर्थक सिद्ध हो कर शून्य में परिणत होता चला जा रहा है।

यह स्पष्ट था कि मालती ने जो सारा काम अपने हाथों में ले लिया था वह इस विचार से नहीं कि झमिया को आराम मिले, बल्कि इस उद्देश्य से कि घर की असली मालकिन का पद झमिया से छिन कर स्वयं उसे प्राप्त हो जाय। केवल पद ही नहीं, सारे अधिकार भी उसके हाथों में आ जायँ। यदि लड़-झगड़ कर वह ऐसा करती तो अपने प्रयत्नों में कभी सफल न होती। पिछली घटना से यह सबक वह सीख चुकी थी। इसलिये उसने नया तरीका अख्तियार किया था, जिसके विरुद्ध न महावीर को न किसी दूसरे को कुछ कहने-सुनने का अवसर मिल सकता था। उसकी वह कूट बुद्धि देख कर झमिया दाँतों तले उँगली दबा कर रह गयी।

घर-गिरस्ती के सब कामों से छुट्टी पाने पर झमिया का ध्यान स्वभावतः गुलबिया की ओर केन्द्रित हो गया। गुलबिया के भविष्य के संबंध में उसके मन में तरह-तरह की चिंताएँ उठने लगीं। पास-पड़ोस की लड़कियों को वह नित्य स्कूल जाते और वापस आते देखती थी। इसके पहले उनके संबंध में कभी कोई विशेष कुतूहल उसके मन में नहीं जगा था। पर जब से वह सारे कामों के भार से मुक्त हो गयी तब से उन लड़कियों को देख कर उसके भीतर खलबली सी मचने लगी। उसे पता था कि मालती भी छठे दर्जे तक पढ़ी हुई है। उसकी कूटबुद्धि का परिचय उसे मिल चुका था। झमिया सोचने लगी कि कुछ पढ़-लिख लेने के कारण ही मालती सभी सांसारिक विषयों में कुशल हो गयी है। और साथ ही अपने

स्वार्थों की रक्षा करना जान गयी है । यदि गुलबिया को भी स्कूल में भरती करवा दिया जाय तो वह भी निश्चय ही बहुत-सी काम की बातें सीख जायगी और व्यवहार-कुशल भी हो जायगी । ऐसा होने से वह ब्याह होने पर जिस घर में भी जायगी अपने को अच्छी तरह निभा ले जायगी । उसके भविष्य के सम्बन्ध में चिंता करने का फिर कोई कारण नहीं रह जायगा । घर में रहने से उसकी आदतें बिगड़ती जा रही हैं और वह निकम्मी होती चली जाती है । या तो वह उनके नौकर जग्गू के लड़के किशन के साथ खेलती है, या माँ का पल्ला पकड़े रहती है या एक कोने में अकेली बैठी हुई एक कागज के टुकड़े से न जाने क्या खेलती रहती है । स्कूल में लड़कियों के बीच में जायेगी तो कुछ देखेगी, सुनेगी और समझेगी । इस तरह के विचार उसके मन में घर करने लगे ।

एक दिन जब कुछ लड़कियाँ स्कूल जा रही थीं तब झमिया ने गुलबिया को अपने पास बुलाया और उन लड़कियों की ओर उसका ध्यान खींचते हुए कहा : "जानती हो, ये सब लड़कियाँ कहाँ जा रही हैं ?"

"इस्कूल," गुलबिया ने तत्काल उत्तर दिया ।

"इस्कूल में ये क्या करती हैं, जानती हो ?"

"हाँ, जानती हूँ । ये सब वहाँ पढ़ती हैं, लिखती हैं, खेल करती हैं ।"

"तुम्हें कैसे मालूम है ?" तनिक आश्चर्य से झमिया ने पूछा ।

"कुन्ती ने बताया है ।"

"कौन कुन्ती ?"

"जो बाबू रोज हमारे आपिस में आते हैं और कापी में कुछ

को राजरानी बना कर रख सकती थी। उसके अलावा महावीर खाते में उसके नाम पर अलग से भी प्रतिमास कुछ रुपये जमा करता जाता था। झमिया को इसका पता था। पर बचपन से ही घोर दरिद्रता में जीवन बिताने की आदी होने के कारण उसके दिमाग में यह बात ही नहीं आ पाती थी कि उन रुपयों का कुछ अच्छा उपयोग करना चाहिये। इतने दिनों तक गुलबिया इस तरह उपेक्षित पड़ी रही जैसे वह सचमुच कोई अनाथ और अनाश्रित लड़की हो। इसका कारण न उसके प्रति झमिया या महावीर के स्नेह का अभाव था न कंजूसी। केवल जो एक पुराना अभ्यास दरिद्रों की तरह रहने का पड़ा हुआ था वह जीवन की परिस्थितियों के बदलने पर भी इतने दिनों तक वैसा ही बना हुआ था। इधर कुछ समय से जब झमिया को घर के प्रायः सभी कामों से छुट्टी पा कर एकांत में अपने और दूसरों के सम्बन्ध में सोचने-समझने का अवकाश मिला तब गुलबिया के उपेक्षित जीवन की ओर उसका ध्यान गया। उसने निश्चय किया कि वह अपनी लड़की को 'बड़े आदमियों' की तरह रखेगी। उसके लिये अच्छे-अच्छे कपड़े बनवायेगी, स्कूल में पढ़ायेगी, 'बड़े घरों' की लड़कियों की तरह ठाठ-बाट से, सज-धज कर रहने की आदी बनायेगी, और—और—फिर, भगवान ने चाहा तो, किसी 'बड़े घर' के लड़के के साथ उसे ब्याह देगी! अगर वह काफी रुपया जमा करके दहेज में देने लायक हो जायेगी तो कोई-न-कोई पढ़ा-लिखा, नये फैशन वाला, 'बाबू'-समाज का लड़का उसे अवश्य ही मिल जायगा। गुलबिया देखने में भी कुछ बुरी नहीं है। जब वह सज-धज कर फैशन से रहने लगेगी और पढ़-लिख कर होशियार हो जायगी, तब वह किसी बाबू घराने की लड़की से कुछ कम न जँचेगी।

एक अच्छे बाबू घराने के फैशनेबुल लड़के को जमाई के रूप में पा कर कितना सुख उसे नहीं होगा ! उसका जन्म सार्थक हो जायगा। उसके पिछले दुखी जीवन की सारी ग्लानि धुल जायगी। कुछ ही मिनटों के भीतर इतनी सब कल्पनाएँ झमिया के मस्तिष्क में सिनेमा के फिल्म की पूरी रील की तरह घूम गयीं। भविष्य के उस सुनहरे सुख-स्वप्न की कल्पना से उसकी आँखें अपूर्व उल्लास से चमकने लगीं।

उसी दिन शाम को उसने महावीर के आगे डरते-डरते अपना प्रस्ताव रखा। उसे भय था कि कहीं महावीर किसी प्रकार की आपत्ति जता कर या रूखे भाव से हामी भर कर उसके सारे उत्साह और आशाओं पर पानी न फेर दे। पर उसके हर्ष और आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब महावीर ने उससे भी अधिक उत्साहित हो कर कहा : "जरूर भेजो भौजी। तुमने यह बहुत ही अच्छी बात सोची है। इतने दिनों तक यह बात हम दोनों में से किसी के भी ध्यान में नहीं आयी, यह अचरज की बात है। कल ही जा कर मैं गुलबिया को स्कूल में भरती करा आऊँगा..."

"पर अभी कपड़े बनवाने होंगे देवर, और चप्पल भी खरीदनी होगी। इस तरह भिखमंगों का सा भेख बना कर वह कैसे इस्कूल जा सकती है !"

"ठीक कहा तुमने ! यह बात तो मेरे ध्यान ही में नहीं थी। मैं अभी उसे साथ ले जा कर खरीद लाता हूँ।"

और वह गुलबिया को साथ ले कर निकल पड़ा। गुलबिया बहुत दिनों बाद बाहर घूमने निकली थी। उसे सब-कुछ नया, सुन्दर और सुनहला लग रहा था। 'बस' में बिठा कर महावीर उसे दादर ले गया। वहाँ उसने उसके लिये दो जोड़ी बने-बनाये फ्राक, अंडर-

वियर और चप्पल खरीदे। बढ़िया खुशबूदार तेल, प्लास्टिक की रंगीन कंघी, रिबन, हेयरक्लिप, पाउडर, क्रीम, खुशबूदार साबुन आदि छोटी-मोटी बहुत-सी आवश्यक और अनावश्यक चीजें खरीदीं। उसे स्वयं इस बात का पूरा ज्ञान नहीं था कि लड़कियों के लिये साज-शृंगार की क्या-क्या चीजें चाहिये। सड़कों, बसों और ट्रामों पर चलने-फिरने वाली फैशनेबुल लड़कियों को देख कर और कुछ लोगों से सुन कर उसने जो थोड़ा-बहुत ज्ञान इस संबंध में प्राप्त किया था कुछ उसी के अनुसार और कुछ अनुमान लगा कर उसने चीजें खरीदीं। घर पर जा कर सब चीजें उसने झमिया के आगे रख दी तो उल्लास से उसकी आँखें चमक उठीं। उसने अपने जीवन में कभी उन सब चीजों का इस्तेमाल नहीं किया था। उसकी गुलबिया का भाग्य कितना अच्छा है कि उनसे सज-धज कर वह बड़े घर की लड़कियों की तरह लगेगी और उन्हीं की तरह स्कूल में पढ़-लिख कर होशियार बनेगी!

१०

दूसरे दिन तड़के ही उसने गुलबिया को जगाया। साबुन से उसे अच्छी तरह नहला-धुला कर कपड़े पहनाये और बालों में तेल लगा कर नयी कंघी से उन्हें सँवारने लगी। दो ही तीन बार कंघी फेरने में कंघी के दो दाँत टूट गये। "आग लगे इस फैशनेबुल कंघी पर!" उसने श्रीगणेश में ही विघ्न होते देख कर खिन्न हो कर कहा। "हमारे जमाने में लकड़ी की कंघी चलती थी, बरसों तक चलाते रहने पर भी एक दाँत नहीं टूटता था।" गनीमत यह थी कि आज बहुत दिनों बाद गुलबिया के बाल साबुन से धोये गये थे।

यदि साबुन से न धोये गये होते तो मैल और चीकट से कड़े बालों पर कंघी फेरने से वह एकदम ही टूट गयी होती। किसी तरह बाल सँवार कर उसने उसका जूड़ा बाँधा और लाल रिबन की गाँठ उसमें दे दी। गाँठ का एक विचित्र ही रूप बन गया—ठीक बटी हुई रस्सी की तरह लगने लगी। महावीर यह सारा दृश्य देख रहा था। यद्यपि वह स्वयं नहीं जानता था कि गाँठ कैसे दी जानी चाहिये और ठीक फैशन क्या है, फिर भी उसे लग रहा था कि वह ढंग एकदम देहाती था।

"अब इन चीजों का क्या होगा?" पौडर के डिब्बे और क्रीम की शीशी की ओर संकेत करते हुए, परेशानी से भरी मुसकान मुख पर झलका कर झमिया ने कहा।

"पौडर निकाल कर हथेली में लो और गुलबिया के मुँह पर मलो", महावीर बोला। झमिया से डिब्बा ही खुलते नहीं बना। महावीर ने उसके हाथ से डिब्बा ले कर स्वयं खोला और फिर थोड़ा सा पौडर उसकी हथेली में डाला। फिर बोला: "मलो अबीर की तरह।"

झमिया की समझ में नहीं आ रहा। "इससे तो सारा मुँह जोगी बाबा की तरह बन जायगा," उसने परेशान हो कर कहा।

"अरे तुम मलो तो सही, भौजी," सस्नेह मुस्कराते हुए महावीर बोला। झमिया की परेशानी से उसका अच्छा विनोद हो रहा था।

"नहीं, मैं नहीं मलूँगी, तुम्हीं मलो!" उसे किसी तरह भी बोध नहीं हो रहा था।

"अच्छा लाओ, मैं ही मलता हूँ," कह कर महावीर ने झमिया

के हाथ से पौडर लिया और गुलबिया के मुँह पर धीरे से मलना शुरू कर दिया। सचमुच गुलबिया का मुँह ऐसा दिखायी देने लगा जैसे किसी ने भभूत मल दिया हो।

"मैं कहती न थी," भमिया ने तनिक खीझ कर कहा। "इस तरह बंदरों का सा मुँह ले कर वह इस्कूल कैसे जायगी!" उसका सारा उत्साह ठंढा पड़ गया था।

"अरे, तुम अभी देखती जाओ," उसे दिलासा देते हुए महावीर बोला, हालाँकि वह स्वयं शंकित हो उठा था। पौडर की बात उसने सुन-भर रखी थी, कि उसे मलने से मुँह का रंग चमक उठता है। पर उसे लगाने की क्रिया-प्रक्रिया से वह भी परिचित नहीं था। अनुमान से वह उसे मलता चला गया। एकदम आटे की सी सफेदी कुछ दूर तो हो गयी, पर अभी तक भभूत रमाये हुए-से सुस्पष्ट चिह्न सारे चेहरे पर मौजूद थे।

"यह तो सचमुच कुछ अजब सी चीज हो गयी, भौजी," अपनी परेशानी में भी हँसते हुए महावीर ने कहा।

"हटो, मैं इसका मुँह साबुन से धो देती हूँ, कह कर भमिया ने गुलबिया का हाथ पकड़ा।

"नहीं, मैं मुँह नहीं धोऊँगी," गुलबिया मचलती हुई बोली।

"तो क्या इस तरह जोगियों का सा भेख बना कर इस्कूल जायेगी!" प्रायः झल्ला कर भमिया ने कहा : "बड़ी आयी पौडर लगा कर फैशन करने वाली! कभी तेरे बाप दादों ने पौडर देखा भी था जो तू आज लगायेगी! चल गुसुलखाने में!" और वह उसका हाथ पकड़ कर खींचने लगी।

गुलबिया का मचलना अब रोने में परिणत हो गया। पूरी

ताकत से प्रतिरोध करती हुई वह चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगी। और रोती हुई बार-बार कहने लगी : "मैं नहीं धोऊँगी मुँह।" उसके रोने से झमिया की जिद और बढ़ गयी। उस पौडर से उसे इस कदर चिढ़ हो गयी थी कि उसका जी ठिकाने नहीं रह गया था। "तू कैसे नहीं धोयेगी मुँह, मैं भी देखती हूँ," उसने कहा और उसे घसीटने लगी। गुलबिया ने अपने रोने का स्वर दुगना बढ़ा दिया। उसके उस रोने ने झमिया के दिमाग में न जाने क्या खलबली पैदा कर दी। वह आपे से बाहर हो गयी और लगी उसे पीटने। "ले! ले! ले! ले!" कहते हुए उसने चार बार उसकी पीठ पर मारा। गुलबिया दहाड़ मारती हुई रोने लगी। महावीर वह सब कांड देख कर अत्यंत खिन्न हो उठा। गुलबिया का रोना उससे न सहा गया। कहा : "तुम्हें आज क्या हो गया है, भौजी? उसे छोड़ दो। वह मुँह नहीं धोना चाहती है तो इससे क्या नुकसान हो गया? कुछ देर यों ही रहने दो। बाद में अपने-आप धो लेगी। स्कूल आज न गयी न सही। फिर किसी दूसरे दिन चली जायगी। आ जा बिटिया, मेरे पास आ जा। चल तुझे मिठाई खिलायेंगे," कह कर उसने प्यार से उसका हाथ पकड़ कर उठाया।

मालती बीच में न जाने कब चुपचाप उसी कमरे में आ कर एक कोने में खड़ी हो गयी थी। किस बात को ले कर सुबह-सुबह उतना बड़ा कांड हो गया, यह उसने कुछ पूछा नहीं। उसके मुख के भाव से लगता था कि वह कारण कुछ-कुछ जान चुकी है, पर अपनी कुछ राय देने या झूठे मुँह भी गुलबिया को सांत्वना देने की कोई आवश्ययता ही वह जैसे महसूस नहीं कर रही थी। उसे देख

कर सहसा महावीर को जैसे कुछ याद आया । उसकी ओर देख कर बोला : "चुपचाप खड़े-खड़े तमाशा क्या देख रही हो? तुम्हें तो मालूम होगा कि पौडर कैसे लगाया जाता है? बताती क्यों नहीं?

दूसरों का अज्ञान सिद्ध करने और अपना ज्ञान प्रमाणित करने का अवसर मिलने से अधिक प्रसन्नता किन्हीं बिरले ही कारणों से होती है । मालती के मुख पर दुष्टता-भरी हलकी-सी मुसकान झलक उठी। उसके भीतर का फूला हुआ घमंड उसकी आँखों में खिल उठा। एक निपट देहातिन की गँवार लड़की के लिये कल महावीर जो चीजें लाया था वह सब वह देख चुकी थी और एक नयी जलन उसके भीतर पैदा हो गयी थी । आज उसी का बदला लेने का अवसर उसे मिला था। वह धीरे से गुलबिया के पास गयी। उसका हाथ पकड़ कर उसे अपनी ओर खींच ले गयी । फिर उसने पौडर का डिब्बा और क्रीम की शीशी महावीर से माँगी। नीचे चटाई पर बैठ कर उसने गुलबिया को भी धीरे से बिठाया। उसकी आँखें अपने आँचल से उसने अच्छी तरह पोंछी, और फिर उसके बाद उसने डिब्बे से पौडर ले कर अच्छी तरह उसके मुँह पर मला। एक बार मल कर फिर दुबारा थोड़ा-सा पौडर निकाल कर मला। झमिया एक किनारे पर खड़ी हो कर अत्यंत उत्सुक दृष्टि से उन दोनों की ओर देख रही थी—यह जानने के लिये कि मालती क्या करिश्मा कर दिखाती है। गुलबिया के मुख पर इस बार पहले से भी अधिक सफेदी पुत गयी थी। झमिया के मन में एक बार यह संदेह भी हुआ कि मालती विद्वेषवश गुलबिया को एक अच्छा-खासा स्वांग बना कर एक दूसरा नाटक खड़ा करना चाहती है। पर तत्काल ही उसने अपने उस संदेह के लिये मन ही मन अपने-आपको कोसा।

मन ही मन कहने लगी : "छी ! छी ! इस तरह की बात सोचना बहुत बड़ा पाप है—अन्याय है ! और फिर देवर के आगे इस तरह का मखौल करने की हिम्मत बहिन की हो भी नहीं सकती—वह चाहे भी तो ऐसा नहीं कर सकती। पर वह कर क्या रही है? यह क्या तमाशा है? गुलबिया चाहे कितना ही रोये मैं ऐसा मुँह ले कर उसे बाहर नहीं निकलने दूँगी, इस्कूल की बात तो दूर रही..." इस तरह सोचती हुई वह एक बार कहने ही को थी कि "यह तुम क्या कर रही हो!" पर इसी बीच मालती ने क्रीम की शीशी खोल कर उसमें से कुछ क्रीम निकाल कर गुलबिया के मुख पर, पौडर के ऊपर, मलना शुरू कर दिया। झमिया की उत्सुकता और बढ़ गयी। पौडर के ऊपर क्रीम मलने में क्या तुक हो सकता है, यह वह कुछ समझ नहीं पा रही थी। पर वह बोली कुछ नहीं, चुपचाप एकटक देखती रही। महावीर भी खड़े-खड़े कुतूहली दृष्टि से मालती की कार्य-कुशलता देख रहा था। जब मालती दो बार खूब अच्छी तरह क्रीम मल चुकी, तब झमिया ने अत्यंत आश्चर्य से देखा कि पौडर का कोई चिह्न शेष नहीं रह गया था और गुलबिया का चेहरा सच मुच सफेद गुलाब की तरह चमकने लगा था। उसकी इतने वर्षों से परिचित लड़की किसी भी कारण से इतनी सुन्दर दिखायी दे सकती है इस बात की कल्पना स्वप्न में भी उसे नहीं हो सकती थी। वह भीतर ही भीतर पुलकित और गद्गद हो उठी। उसकी इतनी देर तक की सारी खीझ जाती रही और गुलबिया को अकारण मारने के कारण उसके पश्चात्ताप का अंत न रहा। एक बार वह आंतरिक प्रशंसा-भरी दृष्टि से मालती की ओर देखती थी और दूसरी बार स्नेह-विह्वल और गर्व-भरी दृष्टि से अपनी बिटिया की ओर।

महावीर भी मालती के निपुण हाथों का करिश्मा देख कर अत्यंत प्रसन्न हो उठा था। इसके पहले उसे विश्वास नहीं था कि वह इन सब बातों में इस हद तक कुशल और सिद्धहस्त है। गुलबिया आज सचमुच बहुत प्रसन्न दिखायी देती थी। महावीर को लगता था जैसे इतने दिनों बाद सहसा उसकी कायापलट हो गयी हो। वह उसकी ओर देख-देख कर निहाल हो रहा था। साथ ही मालती को भी आज उसने पहली बार आंतरिक स्नेह-भरी दृष्टि से देखा। उसका एक दूसरा कारण भी था। आज मालती के सारे व्यवहार में एक ऐसा संयत गांभीर्य, एक ऐसी शालीनता नजर आ रही थी जो महावीर को जितनी ही आश्चर्यजनक लग रही थी उतनी ही मुग्धकर भी। वह उसकी छोटी से छोटी हरकत पर भी बड़ी बारीकी से गौर कर रहा था। वह यह बात एक क्षण के लिये भी नहीं भूल पाता था कि मालती ने सब से पहले यह काम किया था कि गुलबिया को धीरे से बिठा कर बड़ी सुघराई से अपने आँचल से उसके आँसू पोंछे थे। उसका वह आँसू पोंछना महावीर को उसके हृदय-परिवर्तन का प्रतीक लगा। जो दूसरी विशेषता महावीर को आज मालती के स्वभाव में लगी वह यह थी कि आज वह महावीर की बहुत कड़ी बात के उत्तर में एक शब्द भी नहीं बोली थी। अत्यंत सहज रूप में ही उसने उसकी बात को ग्रहण किया था और उसके अनुसार कार्य करने के लिये भी वह तुरन्त प्रसन्न मन से राजी हो गयी। पिछले कुछ दिनों से मालती यों भी बहुत कम बोलती थी, पर उस कम बोलने या मौन रहने में लगता था कि उसके भीतर अभिमान और विद्वेष छिपा है। किन्तु उसके आज के मौन में नववधू की सी एक सलज्ज माधुरी और सहज शांत प्रसन्नता निहित लगती थी। महावीर

को उसका यह भाव बहुत ही प्रिय लग रहा था।

मालती ने उसके बाद गुलबिया के बाल भी नये सिरे से कंघी से सँवारे और जूड़ा भी नये ढंग से बाँधा। रिबन में जो हास्यास्पद गाँठ झमिया ने दी थी उसे खोल कर अँगरेजी के आठ के अंक के रूप में सजा कर बाँधा। उसके बाद झमिया से जूते और मोजे माँग कर उसे पहनाये। फिर उसके नये फ्राक को—जिसमें स्थान-स्थान पर तिनकों की तरह आगे के कुछ छोटे-छोटे टुकड़े यत्र-तत्र चिपके हुए थे—हलके हाथ से झाड़ा। उसके बाद धीरे से उसकी ठुड्डी पकड़ कर उसका मुँह कुछ ऊपर को उठाया, जैसे झमिया और महावीर को अपने काम की सफाई अच्छी तरह देख लेने और परखने का सुयोग देना चाहती हो।

महावीर ने उत्साहित हो कर कहा: "अब चलो बिटिया, तुम्हें मैं अभी स्कूल में भरती करा आता हूँ।"

गुलबिया शीशे में अपना मुँह देखे बिना ही संभवतः समझ गयी थी कि वह अब पहले से बहुत अच्छी दिखायी दे रही है। उसने एक बार गर्व और मान-भरी दृष्टि से अपनी अम्माँ की ओर देखा और फिर महावीर की ओर देख कर बोली: "चलो चाचा!"

झमिया का कुछ ही समय पहले का रौद्र रूप इस तरह शांत और प्रसन्न हो गया था जैसे बरफ की बहुत कड़ी सिल कड़ी धूप में पिघल कर पानी हो जाती है। वह प्यार भरी पुलकित दृष्टि से गुलबिया की ओर देखती हुई उससे स्नेह-सनी दो बातें कहना चाहती थी, पर अपने पिछले अपराध से वह इस तरह लाचार हो गयी थी और नयी भावना से इस कदर गद्‌गद हो उठी थी कि उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल पाता था।

महावीर गुलबिया को लड़कियों के किसी एक निकटस्थ स्कूल में भरती कराने ले गया, जहाँ हिन्दी पढ़ाने की भी व्यवस्था थी। भरती करा के उस दिन उसे वह जल्दी ही अपने साथ ही लौटा भी लाया। अध्यापिका ने एक विशेष पुस्तक उसके लिये खरीदने के लिये कहा और कागज, कलम और पेंसिल भी। महावीर ने वह सब खरीदा। दूसरे दिन फिर वह उसे सब सामान के साथ स्कूल ले गया। पड़ोस की एक लड़की से यह कह कर कि उसकी देखभाल करती रहे, वह घर वापस चला आया।

उस दिन झमिया दिन-भर बड़ी उत्सुकता से उसका इंतजार करती रही। जब वह पड़ोस की एक अपेक्षाकृत सयानी लड़की के साथ वापस आयी तब झमिया ने बड़े प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा, उसका मुँह चूमा और उससे पूछा कि उसने क्या-क्या सीखा और दिन-भर क्या-क्या करती रही। उसने जो अस्पष्ट बातें बतायीं उनसे पता चला कि वह दिन-भर एक छोटी लड़की के साथ खेलती रही और सीखा-वीखा कुछ भी नहीं। झमिया ने चिंतित हो कर महावीर से कहा कि लड़की का स्कूल में जाना तो व्यर्थ सिद्ध हो रहा है। महावीर ने उसे दिलासा देते हुए समझाया कि वह एक ही दिन में पढ़ना-लिखना सीख जायगी ऐसी आशा करना हास्योत्पादक है; इस समय तो सबसे पहले इस बात की आवश्यकता है कि वह स्कूली लड़कियों के संपर्क में रहे और उनके रहन-सहन और आचार-व्यवहार से परिचय प्राप्त करती रहे। धीरे-धीरे पढ़ना-लिखना भी अपने-आप सीखती जायगी।

पर गुलबिया पाँच ही दिन के भीतर वर्णमाला सीख गयी। वह एक-एक अक्षर पहचानती हुई अपने चाचा को बताने लगी। महावीर के आश्चर्य और प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने झमिया से कहा : "भौजी, मैंने कभी नहीं सोचा था कि गुलबिया की बुद्धि इतनी तेज होगी. मैं अब पछता रहा हूँ कि इतने दिनों तक मैंने उसकी पढ़ाई की ओर ध्यान ही नही दिया।"

महावीर की बातों से जब झमिया को विश्वास हो गया कि गुलबिया अक्षरों को इतनी जल्दी ठीक-ठीक पहचानने लगी है तब वह अपनी लड़की को बिलकुल नयी ही दृष्टि से देखने लगी। उसके समान गँवार और अनपढ़ माँ के पेट से ऐसी बुद्धिमती लड़की ने कैसे जन्म लिया, यह सोच-सोच कर वह हैरान थी।

पाँच दिन और बीतने पर गुलबिया बारहखड़ी भी सीख गयी। और उसके और पाँच दिन बाद वह शब्दों को ठीक-ठीक पढ़ने लगी। इसके बाद बहुत जल्दी ही वह समय आया जब वह बच्चों के लिये लिखी गयी एक पूरी कहानी पढ़ गयी। पढ़ने में उसका जी इस हद तक लगने लगा था कि खेलने में अब उसका मन ही नहीं लगता था और वह स्कूल से घर लौटने पर भी सब समय पढ़ते ही रहना चाहती थी। यदि बीच-बीच में किशन आ कर उसे खेलने के लिये न ललचाता तो वह पढ़ती ही रहती।

किशन को देख कर उससे बातें करने और खेलने का लोभ वह नही सँभाल-पाती थी। किशन ने जब से देखा कि गुलबिया का सारा ढंग और ढच्चर ही बदल गया है, मैले फटे कपड़ों के स्थान पर अब वह नया और बढ़िया फ्राक और जूता-मोजा पहनने लगी है, जूड़े में कभी लाल और कभी हरा रिबन बाँधती है, उसके चेहरे

का रंग भी अब पहले से कई गुना ज्यादा चमकने लगा है, वह नियमित रूप से स्कूल जाती है और पढ़ना-लिखना सीख गयी है, तब से वह उसे अत्यंत श्रद्धा और संभ्रम की दृष्टि से देखने लगा। पहले वह समय-असमय अधिकार-पूर्वक उसके पास जाता था और एक प्रकार से बलपूर्वक उसे खेलने के लिये अपने साथ बाहर खींच लाता था। कभी उसे डाँटता था, कभी रौब जमाता था। अपने को वह हर तरह उससे बड़ा मानता था। पर अब जब वह गुलबिया के पास आता था तब उसे पुस्तक पढ़ने या लिखने में व्यस्त देख कर अत्यंत संकोच से उसके पास ही एक कोने में दुबक कर बैठ जाता था। पर गुलबिया उसे देख कर पहले की ही तरह प्रसन्न होती थी—बल्कि पहले से भी अधिक। पहले किशन से मिलने में उसे सुख अवश्य होता था, पर साथ ही डर की भावना भी उसके मन में बनी रहती थी—यह सोच कर कि कहीं वह खेल में उसकी किसी गलती के लिये डाँट न दे। वह अपने को उससे बहुत छोटा और हीन समझती थी। किशन का स्तर वह अपने से बहुत ऊँचा पाती थी। किशन की बातें सुन कर उसे ऐसा लगता कि दुनिया-भर के ज्ञान का भंडार उसके पास भरा पड़ा है। तार, टेलीफोन, रेडियो, हवाई जहाज, क्रिकेट, सिनेमा आदि के संबंध में किशन ऐसी-ऐसी आश्चर्यजनक बातें उसे बताता था कि वह उसका मुँह ताकते ही रह जाती। पढ़ना लिखना कुछ भी न जानने पर भी उसे इतनी सब बातों का ज्ञान कैसे हो गया, यह सोच कर वह आश्चर्य में पड़ जाती। उसका ऐसा रौब गुलबिया पर गालिब हो चुका था कि उसकी किसी भी बात, किसी भी आदेश की उपेक्षा करना उसके लिये संभव नहीं था। पर जब से वह स्कूल जाने लगी और स्कूल

की लड़कियों के बीच में रह कर बहुत-सी ऐसी नयी बातों की जानकारी उसने प्राप्त कर ली, जिनका ज्ञान शायद किशन को भी नहीं था, और साथ ही पढ़ना-लिखना सीख कर स्वयं भी पुस्तकों में बहुत नयी-नयी बातें पढ़ कर जान गयी तब से किशन से डरने या दबे रहने का कोई कारण उसके लिये नहीं रह गया था। बल्कि अब तो किशन स्वयं ही उसे देख कर दुबका और सहमा सा रहने लगा था! इसलिये भय की भावना एकदम मिट जाने से किशन के प्रति उसके मन में स्नेह और सौहार्द का भाव और अधिक बढ़ गया था। किशन को देखते ही उसका जी खेलने की ओर दौड़ने लगता। पर किशन अब खेल की अपेक्षा उसकी बातों में ज्यादा दिलचस्पी लेने लगा था। वह अब भी बीच-बीच में तार, रेडियो, सिनेमा आदि विषयों पर अतिरंजित बातें कह जाता। पर गुलबिया तत्काल उसकी बात का खंडन करती हुई कहती कि किताब में ऐसा नहीं लिखा बल्कि ऐसा लिखा है। और तब किशन चुप हो जाता। क्योंकि किताब के छपे हुए अक्षरों में जो बात बतायी गयी है वह कैसे गलत हो सकती है? इसलिये वह मौन भाव से गुलबिया की बात को स्वीकार करके अपना सिर झुका लेता। गुलबिया ने सचमुच किताब में पढ़ कर उन सब बातों का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो ऐसा नहीं था। पर अब वह इस स्थिति में थी कि झूठमूठ में किताब का हवाला दे कर किसी भी बात पर किशन को चुप करा सकती थी। इसलिये समय-समय पर इस अस्त्र का प्रयोग करने में वह नहीं चूकती थी।

किशन स्वयं भी उस पुस्तक को पढ़ने के लिये ललच कर रह जाता, जिससे गुलबिया ने इतना अधिक ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

उसने एक दिन अपने बप्पा से कहा कि उसे भी गुलबिया की ही तरह किसी स्कूल में भरती कर दिया जाय। उसके बप्पा ने उसे डाँटते हुए कहा : "तू क्या करेगा पढ़ कर? गुलबिया की अम्माँ के पास तो बहुत रुपया है, वह उसे जितना चाहे पढ़ा सकती है। पर तेरे बप्पा के पास तो एक कानी कौड़ी भी नहीं है। वह कहाँ से तेरी पढ़ाई का खर्चा जुटायेगा? आजकल की पढ़ाई क्या कुछ आसान है? और फिर, तू क्या करेगा पढ़ कर? तेरे बाप-दादों ने कभी पढ़ा होता तो तू भी पढ़ता!…" कहते ही उसके ध्यान में यह बात आयी कि गुलबिया के बाप-दादों ने कहाँ पढ़ा था? पर फिर यह विद्वेषपूर्ण तर्क उसके दिमाग में उठा कि "गुलबिया का बाप कौन था यह कौन जाने? उसकी अम्माँ ने उसके बारे में अभी तक कोई बात किसी को बतायी ही नहीं! जरूर वह कोई पढ़ा लिखा आदमी रहा होगा। किसी स्कूल का कोई मास्टर साबित हो जाय तो कोई अचरज नहीं!

जो भी हो, बप्पा की डाँट सुन कर किशन उदास हो कर अपना-सा मुँह ले कर चला गया। "तो गुलबिया हम लोगों में से नहीं है?" वह सोचने लगा। "वह क्या सचमुच मालदार माँ-बाप की लड़की है?" अभी कुछ ही दिन पहले तक तो वह उन्हीं लोगों की तरह फटे, मैले चीथड़े पहना करती थी। उसके पहनने को जूते भी नहीं थे। उसकी आँखों में सब समय कीच लगी रहती थी और नाक बहती रहती थी। तो क्या अचानक उसकी माँ मालदार हो गयी? कैसे हो गयी? लोग मालदार कैसे बनते हैं! उसका बप्पा भी उन्हीं लोगों की तरह मालदार बनने की कोशिश क्यों नहीं करता? यह ठीक है कि उन लोगों के बहुत सी भैंसें और गायें

हैं। पर वे लोग तो बैठे-बैठे खाते हैं, जब कि उसका बप्पा उन भैंसों और गायों की टहल करने, उन्हें सानी-पानी देने और उन्हें दुहने में सारा समय बिता कर भी गरीब का गरीब रह गया है। यह कैसी अनोखी बात है! रह-रह कर यह प्रश्न किशन के दिमाग में खल-बली मचाने लगा, पर उसका कोई समाधान वह नहीं कर पाता था।

१२

गुलबिया दिन पर दिन बड़ी तेजी से तरक्की करती चली जाती थी। एक ही महीने के अंदर वह पहली किताब धड़ाधड़ पढ़ने लगी थी और अक्षर भी बहुत साफ, सुन्दर और काफी शुद्ध लिखने लगी थी। पढ़ने में उसका जी इस हद तक लगते देख कर महावीर उसके लिये दस-पाँच सुन्दर और सचित्र कहानियों की पुस्तकें और खरीद कर ले आया। उन पुस्तकों को भी वह जल्दी-जल्दी समाप्त करने लगी। वे सब कहानियाँ उसे ऐसी मोहक लगती थीं कि एक बार पढ़ना शुरू करने पर वह पूरी कहानी पढ़े विना उठती ही नहीं थी। फिर उसे न खेलने की सुध रहती न खाने की। जानवरों के, परियों के और राजकुमारों के देश की वे कहानियाँ उसे अपने चारों ओर के संकीर्ण, सीमाबद्ध और नीरस वातावरण से ऊपर उठा कर एक उन्मुक्त, असीम और अनन्त रसमय लोक में स्वतंत्र विचरने के लिये छोड़ देती थीं। कुछ समय बाद उसे इच्छा हुई कि अपने उस ऐकांतिक सुख का कोई साझीदार मिले। इसलिये वह या तो किशन को पकड़ कर उसके आगे पूरी कहानी पढ़ कर सुनाती या अपनी अम्माँ को पकड़ती।

उसके स्कूल की प्रधान अध्यापिका उसकी प्रगति से इस कदर

प्रसन्न हो उठीं कि तीन ही महीने बाद उन्होंने उसे एक दर्जा ऊपर रख दिया। उसके कुछ ही महीनों बाद जब वार्षिक परीक्षा हुई तब गुलबिया को डबल प्रमोशन दे दिया गया। वह अपने दर्जे और अपने आस-पास की कक्षाओं की लड़कियों की ईर्ष्या—और आदर की भी—पात्री बन गयी। प्रारंभ में प्रायः सभी लड़कियाँ गुलबिया की हँसी उड़ाया करती थीं। विशेष कर उसके नाम की खिल्ली उड़ायी जाती थी। वह नाम सभी लड़कियों को विचित्र सा लगता था। "गुलबिया से जलेबिया क्या बुरा नाम है!" एक दिन एक लड़की ने कहा। तब से अक्सर उसे लड़कियाँ 'जलेबिया' कह कर चिढ़ाती थीं। पर बाद में धीरे-धीरे वे लड़कियाँ, जो अपने को हर तरह से उससे ऊँचे स्तर की मानती थीं, उससे हेल-मेल बढ़ाने में अपना गौरव समझने लगीं। उसके नाम के लिये उसे चिढ़ाना भी सबने छोड़ दिया। इस हेलमेल का परिणाम यह हुआ कि पास-पड़ोस के मुहल्लों में रहने वाली उसकी समवयसी कुछ लड़कियाँ उसके घर भी समय-असमय आने लगीं। उनमें गुजराती लड़कियों की संख्या काफी थी। उनके संसर्ग में आने से गुलबिया ने जल्दी ही शुद्ध गुजराती बोलना सीख लिया, और कुछ ही समय बाद वह गुजराती पढ़ना और लिखना भी सीख गयी। पर बाद में जब कुछ लड़कियों के माँ-बाप को यह पता लगा कि गुलबिया का चाचा कुछ ही समय पहले उनके घर आ कर दूध दे जाया करता था तब उन्होंने अपनी लड़कियों को एक साधारण स्थिति के 'भैया' के यहाँ जाने से मना कर दिया। पर शेष लड़कियाँ उससे संबंध बनाये रहीं। गुलबिया की बुद्धि की तीव्रता के साथ ही उसका प्रिय व्यवहार उन्हें अपनी ओर बराबर आकर्षित करता रहा। झमिया गुलबिया की उन सखियों

से बहुत प्रसन्न थी और उन्हें समय-समय पर भैंस का गरम और ताजा दूध पिलाया करती थी। प्रारंभ में वे लड़कियाँ पीने में संकोच करती थीं, पर बाद में आदी हो गयीं। मालती को दूध का वह अपव्यय पसंद नहीं था, और झमिया यह बात जानती थी, पर वह इस संबंध में उसके रुख की तनिक भी परवा नहीं करती थी।

दिन बीतते चले गये और गुलबिया बड़ी होती चली गयी। उसकी सखियाँ उसे अधिकाधिक चाहने लगीं। केवल एक बात गुलबिया की उन सखियों को पसंद नहीं थी। किशन बीच-बीच में आ कर पूरे अधिकार के साथ उन लोगों के पास बैठ जाता था और उन लोगों की आपसी बातचीत में बड़ी दिलचस्पी लेता था। गुलबिया कभी उसे मना नहीं करती थी, बल्कि कभी-कभी उसे भी बातों में शरीक कर लेती थी—विशेष कर जब रेडियो और सिनेमा की बात चलती थी। उसकी सखियाँ सोचतीं कि एक तो वह 'मर्द' है, दूसरे 'हीन जाति' के एक गरीब नौकर का लड़का है। फटे-पुराने और गंदे कपड़े पहन कर वह अपढ़ गँवार उन लोगों के बीच में आ कर उनकी बातचीत में समान रूप से भाग लेने की धृष्टता करे, यह उन्हें सह्य नहीं होता था। उन लोगों ने कभी प्रकट रूप से और कभी परोक्ष में इस ओर गुलबिया का ध्यान खींचा था, पर गुलबिया जैसे उन लोगों के दृष्टिकोण को समझ ही नहीं पाती थी। इसलिये उसने कभी उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और किशन बेखटके उन लोगों के बीच में आता रहा।

एक दिन जब एक लड़की ने बहुत कड़े ढंग से इस बात का विरोध किया तब गुलबिया गंभीरता से इस सम्बन्ध में सोचने लगी। दूसरे ही दिन उसने एकांत में किशन को बुला कर कहा : "किशन,

तुम स्कूल क्यों नहीं जाते और पढ़ना लिखना क्यों नहीं सीखते ?"

"बप्पा नहीं भेजता," किशन ने रोनी सी सूरत बना कर नीचे की ओर देखते हुए कहा।

क्यों ?" कुछ आश्चर्य से गुलबिया ने पूछा।

"कहता है, तुम्हारे बाप-दादा कभी स्कूल नहीं गये, बराबर अपढ़ गँवार रह कर ही मजदूरी करके अपना गुजारा करते रहे हैं, तुम भी वैसा ही करोगे..."

बात गुलबिया की समझ में कुछ भी नहीं आयी। केवल इतनी बात वह जान गयी कि किशन स्कूल न जा सकने के कारण बहुत दुखी है। "अच्छा, स्कूल में न सही, घर पर तो तुम पढ़ ही सकते हो!"

"घर पर कौन पढ़ायेगा ?"

"मैं तुम्हें सिखाऊँगी। कल से मेरे पास बैठ कर तुम्हें सीखना होगा। जब मैं स्कूल से लौट कर आऊँगी तब तुम मेरे पास चले आना।"

किशन का चेहरा मारे खुशी के खिल उठा। "सच कहती हो, गुलबिया ? तुम मुझे सिखाओगी पढ़ना ?" उसने तनिक अविश्वास के साथ पूछा।

"कह तो रही हूँ, कल से रोज एक घंटा मेरे पास आ कर बैठना।" उसके संदेह का कारण गुलबिया की समझ में नहीं आता था।

दूसरे दिन से किशन नियमित रूप से उसके पास पढ़ने के इरादे से आ कर बैठने लगा। गुलबिया उसे वर्णमाला सिखाने लगी और पहले ही दिन से लिखने का भी अभ्यास कराने लगी। कुछ ही दिनों

में वह जान गयी कि पढ़ने-लिखने में किशन की बुद्धि उतनी तेज नहीं है जितनी वह उसकी बातों से समझे बैठे थी। पर वह न निराश हुई न अधीर। गुरु की तरह उसे समझा कर, बुझा कर, डाँट कर, डपट कर सिखाती रही। फल यह हुआ कि किशन प्रायः तीन हफ्ते के अन्दर वर्णमाला और बारहखड़ी सीख गया। उसके बाद गुलबिया उसे संयुक्त अक्षरों का बोध कराने लगी। एक महीना इसमें भी लग गया। उसके बाद किशन स्वयं अपने ही प्रयत्नों से सीखने लगा। दिन-भर के कामों से जब भी अवकाश मिलता वह अकेले में बैठ कर गुलबिया की दी हुई एक बड़े अक्षरों वाली कहानी की पुस्तक ले कर पढ़ने बैठ जाता। वह सारा ध्यान अक्षरों को पहचान कर सही-सही पढ़ने के प्रयास में लगा देता। अपनी उस लगन और अध्यवसाय से उसे बहुत लाभ हुआ और वह धीरे-धीरे इस स्थिति में पहुँच गया कि दो घंटों में चार-पाँच पृष्ठ की एक कहानी पढ़ लेता था। अब वह गुलबिया की सखियों के बीच में नहीं जाता था। उनकी उपेक्षा का कारण कुछ-कुछ उसके अनुभव में अस्पष्ट रूप से आने लगा था। जब कभी किसी कठिन शब्द का अर्थ उसकी समझ में न आता, उसे वह अपने मन में रख लेता और जब देखता कि गुलबिया को अवकाश है और कोई लड़की उसके पास नहीं है तब उससे उसका अर्थ पूछ लेता। गुलबिया को वह अब भी अपनी संगिनी ही समझता था, और गुलबिया की भीतर की और बाहर की परिस्थितियों में बहुत अंतर आ जाने पर भी वह उसे अपने से बहुत अधिक दूर नहीं अनुभव कर पाता था।

एक दिन गुलबिया ने महावीर से कहा : "चाचा, किशन को भी किसी स्कूल में भरती करा दो। उसकी बड़ी इच्छा है पढ़ने की।

कहता है कि 'बप्पा मुझे नहीं भेजना चाहता।' तुम उसके बप्पा को समझा कर उसे भरती करा दो, चाचा!" उसने ऐसे अनुरोध-भरे स्वर में कहा कि महावीर उसकी बात की उपेक्षा न कर सका। उसने जग्गू को बुला कर उसे समझाया। जग्गू पहले तो अपनी ही बात पर अड़ा रहा। कहने लगा: "पढ़ लिख कर वह क्या करेगा, ठाकुर? आजकल के पढ़े-लिखे बाबुओं ही हालत तो तुम देखते ही हो—मारे-मारे फिरते हैं और दो जून की रोटी का ठिकाना अपने लिये नहीं कर पाते। अपढ़ और गँवार रहेगा तो मिट्टी खोद कर या लोहा पीट कर अपना पेट किसी-न-किसी तरह भर ही लेगा..."

महावीर को लगा कि जमाने की हालत को देखते हुए उसका तर्क निस्सार नहीं है। पर अपढ़ रहने के पक्ष में वह कोई भी तर्क सुनना नहीं चाहता था। वह स्वयं भी कभी निपट अपढ़ नहीं रहा। गाँव के मिडिल स्कूल में उसने छठे दर्जे तक पढ़ा और आज भी वह कभी कभी सोचता था कि कोई अच्छा मास्टर रख कर पुस्तकों द्वारा अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करे। उसने कहा: "तुम्हारी बात में कुछ सचाई हो सकती है, जग्गू। पर किसी भी कारण से तुम्हारा लड़का इस जमाने में अपढ़ बना रहे, यह अच्छा नहीं है। भूखों मरना अच्छा, पर गँवार बने रहना अच्छा नहीं। और फिर पढ़-लिख कर सभी लोग भूखे ही मरते हों, ऐसा नहीं है। तुम्हारे लड़के में लगन होगी तो वह बहुत बड़ा आदमी भी बन सकता है। हजार-दो हजार रुपया तनखाह पाने वाले लोग भी तो आखिर पढ़-लिख कर ही आगे बढ़े हैं!"

"यह ठीक है ठाकुर, पर गँवार का लड़का पढ़-लिख कर भी आखिर कितनी तरक्की कर लेगा? अरे, ज्यादा से ज्यादा एक

चपरासी की हैसियत तक ही पहुँच सकेगा !"

"नहीं जग्गू, तुम्हें इस तरह नहीं सोचना चाहिये," तनिक गंभीर मुख-मुद्रा बनाते हुए महावीर ने कहा। "गँवार आदमी जन्म-जन्म तक गँवार ही रहेंगे, क्या ईश्वर के यहाँ से ऐसा पट्टा लिखा हुआ आया है ? लगन होगी, मेहनत करेंगे तो आज के गँवार कल के नेता बन सकते हैं। इस देश में अभी ऐसा मौका नहीं आया, पर दुनिया के सभी दूसरे देशों में यह बात साबित हो चुकी है..."

जग्गू को पिछले कई वर्षों से डेयरी की गायों और भैंसों के बाहर की दुनिया का कोई हाल मालूम नहीं था। वह महावीर की ओर अपलक आँखों से देखता ही रह गया। महावीर ने उसे कुछ काबू में आते देख कर अपने एक-एक शब्द पर जोर देते हुए कहा : "आज के जमाने में लड़के को गँवार बनाये रखने से बड़ा अपराध दूसरा कोई नहीं हो सकता। इसलिये किशन को स्कूल में भरती करने में तुम कोई रुकावट न डालो।"

जग्गू के विचार पलटने लगे। वह सोचने लगा—कौन जाने, उसका बेटा सचमुच बुद्धिमान निकल आये और एक दिन नेताओं की तरह ही बड़ा आदमी बन कर अपने पुश्त-पुश्त से गँवार कुल को उजागर करे ! 'नेता' शब्द का एक अस्पष्ट अर्थ उसके दिमाग में था। नेता कौन होता है, उसकी क्या विशेषताएँ हैं, उसके क्या अधिकार होते हैं, यह सब कुछ न जानने पर भी उस शब्द की ध्वनि उसके मन पर एक विशेष प्रभाव छोड़ती थी। वह उसे मानव-जीवन की चरम उन्नति का प्रतीक मानता था।

"पर...पर...इस्कूल में पढ़ाने के लिये खर्चा मैं कहाँ से जुटाऊँगा ? सुना है कि बहुत रुपया खर्च होता है ?" जग्गू ने कहा।

"कुछ ज्यादा खर्च नहीं होता । पर तुम्हें इस बात की कोई चिन्ता नहीं करनी होगी । उसका सारा जिम्मा मैं लेता हूँ ।"

"तब मालिक, मैं कौन होता हूँ मना करने वाला," गद्गद हो कर, हाथ जोड़ते हुए जग्गू ने कहा ।

उसी दिन महावीर ने गुलबिया को बताया कि "कल से किशन भी स्कूल जायेगा ।" गुलबिया सुन कर हर्ष से फूली न समायी । उसने तत्काल किशन के पास जा कर उसे वह शुभ-सूचना दी । हर्षातिरेक से किशन की आँखों में रस छलक आया । "तुम सच कहती हो गुलबिया ? तुमने गलत तो नहीं सुना ? बप्पा सचमुच राजी हो गया !"

"हाँ, हाँ, भाई, खुद मेरे चाचा ने मुझे बताया है । वह क्या झूठ कहेंगे ?" मैंने ही तो चाचा से कहा था कि किशन स्कूल जाना चाहता है, पर उसका बाप उसे नहीं भेजना चाहता । तभी चाचा तुम्हारे बप्पा के पास गये और उसे समझा बुझा कर उन्होंने राजी किया ।"

"तुम बहुत ही अच्छी हो, गुलबिया", हर्ष-गद्गद स्वर में अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हुआ किशन बोला ।

अपनी प्रशंसा सुन कर गुलबिया ससंकोच मंद-मंद मुस्कराने लगी । "अच्छा मुझ पर तुम्हारा इतना प्यार क्यों है, गुलबिया ?" सहसा किशन भोले भाव से पूछ बैठा । स्पष्ट ही 'प्यार' से उसका आशय 'कृपा' से था । वह कुछ सभ्य भाषा में बोलने की चेष्टा कर रहा था ।

पर गुलबिया हँस पड़ी : "चुप पगले, इसमें 'प्यार' की क्या बात है ?" स्नेह-पूर्वक डाँटते हुए उसने कहा । "खबरदार, ऐसी बात

आइन्दा न कहना।"

गुलबिया स्वयं 'प्यार' का अर्थ किस हद तक जानती थी यह कहना कठिन है, पर अपने साथ की अपेक्षाकृत सयानी लड़कियों के मुँह से कभी-कभी 'प्यार' शब्द की चर्चा उसने सुनी थी, जिससे उसके संबंध में एक विचित्र, अस्पष्ट और धुँधली सी कल्पना उसके मन में जमी हुई थी। 'प्यार' शब्द किसी लड़की के मुँह से निकलते ही दूसरी लड़कियाँ हँस पड़ती थीं। इसलिये गुलबिया भी समझती थी कि उसके साथ हँसी का कुछ घनिष्ठ संबंध है। इसी कारण किशन के मुँह से वह शब्द सुनते ही वह हँस पड़ी थी।

दूसरे दिन से किशन भी स्कूल जाने लगा।

१३

गुलबिया दिन पर दिन उम्र में और बुद्धि में भी सयानी होती चली जा रही थी। अब वह नवीं कक्षा में पढ़ती थी और उसकी उम्र पन्द्रह वर्ष की थी। जिस स्कूल में वह पहले पढ़ती थी उसमें केवल आठवें दर्जे तक की पढ़ाई होती थी। इसलिये उसका नाम एक कालेज में लिखा दिया गया था जहाँ बी० ए० तक की पढ़ाई होती थी। यद्यपि वहाँ कोई लड़की उसे उसके नाम के लिये नहीं चिढ़ाती थी, पर उसे स्वयं अपने नाम से चिढ़ होने लगी थी। वह बहुत दिनों से अपना नाम बदलने की बात सोच रही थी, पर संकोचवश ऐसा कर नहीं पाती थी। एक दिन उसने हिम्मत बाँध कर प्रधान अध्यापिका मिस वोरा से कहा कि वह अपना नाम बदलना चाहती है। मिस वोरा को उसका यह विचार विनोदपूर्ण लगा। उन्होंने मुस्करा कर कहा: "क्यों? अच्छा खासा नाम है 'गुलबिया',

बदलना क्यों चाहती हो ? गुलाब का फूल क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगता ?"

"गुलाब का फूल अच्छा लगता है, पर 'गुलबिया' नाम अच्छा नहीं लगता। उससे देहातीपन की 'बू' आती है।"

'बू' शब्द से मिस वोरा की विनोद-प्रियता और अधिक जग उठी। उन्होंने कहा : "खुशबू ही आती होगी! आखिर गुलाब ही तो है!"

गुलबिया मंद-मंद मुस्कराती हुई संकोच से सिर नीचा किये खड़ी रही।

"तो क्या नाम रखना चाहती हो तुम अपना? गुलाब सुन्दरी?" मिस वोरा ने पूछा।

"नहीं, गिरिजाकुमारी," धीरे से गुलबिया बोली।

"पर गिर्जा तो ईसाइयों से संबंध रखता है। तुम क्या क्रिश्चियन हो?" मिस वोरा ने कहा। उन्होंने ऐंग्लो-इंडियन, पारसी और देसी ईसाई लड़कियों के साथ अंगरेजी में ही शिक्षा पायी थी और सांस्कृतिक गुजराती (और हिंदी) का ज्ञान उनका बहुत साधारण था।

"जी नहीं। गिरिजा हिंदुओं की एक देवी का नाम है। मैंने गिर्जाकुमारी नहीं, गि—रि—जा—कुमारी कहा था," नाम के एक-एक अक्षर को साफ-साफ उच्चारण करती हुई गुलबिया बोली।

"तो तुम फूल से देवी बनना चाहती हो! आफ कोर्स यू आर नाट ए फूल—दैट मच आइ कैन सर्टिफाइ!" कह कर मिस वोरा फिर हँसीं।

गुलबिया सिर नीचा किये खड़ी रही—उसे लगता था जैसे उसे सजा दी जा रही हो। अपने नाम के संबंध में जो ग्लानि की

भावना पिछले कुछ महीनों से उसके मन में जगी थी वह मिस वोरा के आगे कुछ ही मिनट खड़े रहने पर कई गुना अधिक बढ़ गयी थी।

"अच्छी बात है," अंत में मिस वोरा ने कहा। "हालाँकि ऐसा कायदा नहीं है, फिर भी मैं तुम्हें इजाजत देती हूँ, तुम अपना नाम बदल सकती हो।"

गुलबिया को लगा जैसे वह फाँसी की सजा से मुक्ति पा गयी हो। "थैंक्स!" कह कर वह वहाँ से भगी।

उसी दिन उसने अपनी कापियों और किताबों में अपने नाम की जगह पर 'गुलबिया' काट कर गिरिजाकुमारी लिखा। पर उसके साथ की लड़कियाँ उसे 'गुलबिया' ही कह कर पुकारती रहीं। कभी-कभी कोई लड़की उसे गिरिजा कह कर पुकारती तो उसे सब लड़कियाँ अच्छा परिहास समझ कर खिलखिला कर हँस पड़ती थीं। पर गुलबिया उनकी हँसी की तनिक भी परवा न करके अपने नये नाम को कायम रखे रही।

जब वह वार्षिक परीक्षा में प्रथम स्थान पा कर दसवीं कक्षा में गयी तब शांता गिडवानी नाम की एक नयी लड़की उसकी कक्षा में भरती हो गयी। वह कराची से आयी थी। शांता बहुत स्वस्थ और सुन्दर लड़की थी और स्वभाव से अत्यन्त शिष्ट और शांत लगती थी। पहले ही दिन से वह गुलबिया से हिलमिल गयी थी और कक्षा में उसी के साथ बैठा करती थी। वह गुलबिया के नाम के पिछले इतिहास से परिचित न होने के कारण पहले ही दिन से उसके नये नाम से उसे पुकारने लगी थी। वह पहली लड़की थी जिसने परिहास में नहीं बल्कि सहज रूप में उसे 'गिरिजा' कह कर संबोधित किया

था। उसके मुँह से 'गिरिजा' शब्द सुन कर गुलबिया भीतर ही भीतर अत्यंत पुलकित हो उठती थी। अब वह गुलबिया नहीं रह गयी थी, अब वह एक नया जीवन पायी हुई नयी लड़की—गिरिजा—थी! 'गुलबिया' नाम की ध्वनि मात्र से वह, न जाने क्यों, अपने को एक अत्यंत दीन-हीन, अनाथ और पीड़ित लड़की समझने लगती थी, जिसकी आँखों में सब समय कीच लगा हो, मुख पर मक्खियाँ बैठती हों और जो फटे, मैले कपड़े पहने, सिपटी, सिकुड़ी सी घर के एक कोने में निपट उपेक्षित अवस्था में पड़ी रहती हो। और गिरिजा! क्या मीठा नाम है! उसे दूसरे के मुँह से पुनते ही वह अपने को विजयिनी समझने लगती, जिसके आगे जीवन में कहीं कोई भी रुकावट खड़ी नहीं थी और जो सब के साथ समान स्तर पर निर्द्वन्द्व और निर्भीक रूप से चल-फिर सकती थी और निरंतर प्रगति की ओर बढ़ती हुई, जीवन के एक अस्पष्ट किन्तु उज्ज्वल शिखर को अपना लक्ष्य बना कर उस ओर तेज कदमों से उल्लासपूर्वक बढ़ी चली जा रही थी। शांता ने उसके मन की उस दबी हुई अनुभूति को उभाड़ दिया था, इसलिये उसके प्रति वह अंतर से कृतज्ञ हो उठी।

शांता प्रतिदिन कई बार सहज भाव से उसे गिरिजा कह कर संबोधित करती थी। धीरे-धीरे कुछ दूसरी लड़कियों पर भी उस नये संबोधन का प्रभाव पड़ा। वे पहले तो तनिक व्यंग से उसे गुलबिया के स्थान में गिरिजा कह कर पुकारती रहीं, फिर धीरे-धीरे वह व्यंग, न जाने किस प्राकृतिक क्रिया से, सहज भाव में परिणत होता चला गया, और इस प्रकार गुलबिया का गिरिजा नाम जम गया। उसके बाद उसने घर में भी अपनी अम्माँ, चाचा, चाची और नौकर-चाकरों को

भी बता दिया कि अब वह गुलबिया से गिरिजा हो गयी है, और इसी नाम से उसे पुकारा जाय। झमिया को उसका नया नाम तनिक भी पसन्द नहीं आया। गुलबिया नाम के पीछे जो संस्कार और स्मृतियाँ उसके मन में भरी पड़ी थीं, गिरिजा उन सब से जैसे नाड़ी-बन्धन काट कर अलग हो जाना चाहती थी—ऐसा उसे लगा। और वह अनुभूति उसे मर्म-पीड़ा देने लगी। उसने महावीर के आगे अपनी उस वेदना को कुछ अस्पष्ट देहाती शब्दों में व्यक्त किया। महावीर ने मुस्करा कर उसे दिलासा देते हुए समझाया कि "गिरिजा नाम रखने में कोई हानि नहीं है, भौजी! गुलबिया गँवारों का सा नाम है, जिसे सुन कर आज की लड़कियाँ हँसी उड़ाती हैं। गिरिजा शहराती नाम है। उससे तुम्हारी लड़की की इज्जत बढ़ेगी। तुम्हारी लड़की कुछ ऐसी-वैसी लड़की नहीं है। कई लड़कियों से सब बातों में तेज है। सिर्फ नाम की वजह से बेचारी सचमुच परेशान रहती होगी। गुलबिया नाम पर आजकल हमारे ही 'देश' में कोई भी पढ़ी-लिखी लड़की हँसेगी, फिर बंबई में तो कहना ही क्या है। गिरिजा नाम बहुत अच्छा है। और वह कोई बहुत नया नाम भी नहीं है। गिरिजा तो पार्वती का नाम है, जो हम हिन्दुओं की सब से बड़ी देवी है। इस नाम से तुम्हें दुखी होने के बजाय खुश ही होना चाहिये भौजी! और फिर तनिक सोचो तो सही कि अब जमाना कितना बदल गया है! मैं तो कहता हूँ कि तुम भी अब अपना नाम बदल लो!" महावीर को बहुत दिनों बाद आज भौजी से हास-परिहास की बातें करने की इच्छा जगी थी। उसने कहा: "'झमिया!' तनिक सोचो तो सही' यह भी भला कोई नाम है! तुम्हें तो अपना नाम रखना चाहिये मोहिनी..."

झमिया अपनी सारी नाराजगी भूल कर "खिल्ल !" करके हँस पड़ी। फिर आँचल से ओंठ ढक कर कृत्रिम क्रोध-भरी मुसकान मुख पर झलकाती हुई बोली : "जाओ देवर, तुम कभी-कभी बड़ी खराब बातें कहते हो ! इस उमिर में अब मैं अपना नाम क्या बदलूँगी ! और फिर मोहिनी !..." और वह फिर—"फिक्क !" कर के हँस पड़ी और घूँघट से अपना आधा मुँह छिपा कर उसने मुँह फेर लिया। उसे सचमुच अपने 'मोहिनी' नाम की कल्पना अत्यन्त विनोदात्मक लगी थी।

"आज तो जीजी का हँसी का फौवारा बन्द ही नहीं होता," सहसा मालती ने आ कर कहा। बहुत दिनों बाद आज उसे पूरा मुँह खोल कर एक करारा व्यंग कसने का मौका मिला था।

झमिया और महावीर दोनों के चेहरे का रंग पल में उड़ गया। झमिया अत्यंत गंभीर भाव से सीधे अपने कमरे में चली गयी। महावीर को मालती के कहने का ढंग कतई अच्छा नहीं लगा था। उसने पलटे में कड़क कर उत्तर दिया : "तुम तो यही चाहती हो कि भौजी का रोने का फौवारा कभी बन्द न हो, और हँसी सदा के लिये बन्द हो जाय। उनकी तनिक भी हँसी या खुशी तुमसे सही नहीं जाती। अपना कमीनापन तुम बीच-बीच में जताये बिना रह नहीं पाती हो।"

"मैंने क्या कमीनापन किया ? मैंने हँसी में एक बात कह दी उतने ही से मैं कमीनी हो गयी ? और तुम लोग सब समय..." और वह बड़े-बड़े आँसू गिराने लगी। "तुम तो यही चाहते हो कि मुँह से कभी एक शब्द भी न निकले। तो ठीक है, आज से मैं अपना मुँह सी डालूँगी। मैंने कितनी बार अपने को समझाया है कि

चाहे कैसी बात क्यों न आ पड़े, मैं कुछ नहीं बोलूँगी, पर यह निगोड़ा मुँह रह ही नहीं पाता! मैं आज से इसे पीट डालूँगी...'' और उसने ''लो! लो!'' कह कर सचमुच अपना मुँह पीटना शुरू कर दिया। महावीर कोई गति न देख कर चुपचाप वहाँ से खिसक कर अपने कमरे में चला गया। आज उसने मुद्दतों बात जब भौजी से एक निर्दोष परिहास किया था और भौजी का मन उसे सुन कर गुदगुदा उठा था तब उस क्षण में उसे लगा था कि कितने ही जन्मों बाद उसे पहली बार जीवन की सच्ची उमंग और उल्लास का अनुभव हुआ है। वह क्षण-भर का अलौकिक रूप से उज्ज्वल प्रकाश एक अत्यंत साधारण नारी की एक विद्वेष-भरी फूँक से बुझ गया! इतनी बड़ी शक्ति छिपी है मनुष्य के विद्वेष और सामाजिक अनुशासन में! और इतना क्षणिक है मन का सच्चा सुख! कुछ इसी तरह की अस्पष्ट और धुँधली सी अनुभूति महावीर के मन में जग रही थी।

उसका जी बहुत खराब हो गया था। आज बहुत दिनों बाद उसके भीतर जैसे युगों से सोयी पीड़ा जग उठी थी। वह भीतर से कमरा बंद करके तख्त पर लेट गया और लेटे-लेटे सोचने लगा। वह सोचने लगा कि वर्षों के श्रम और उद्यम के बाद जब आज वह आराम कर सकने की स्थिति में आया है तब भी वह न तनिक भी सुख का अनुभव कर पा रहा है न शांति का। जीवन में वह प्रारंभ से ही अभागा रहा है। छुटपन से ही एक प्रकार से अकेला और अनाथ रहा है। बंबई आने पर भौजी ने जो स्नेह और सहृदयता उसे दी थी उसे पा कर वह जीवन की गाड़ी को किसी तरह घसीटता

में जैसे जंग लग गया है। वह पहले ही से जानता था कि विवाह का परिणाम यही होगा। भौजी से इसीलिये उसने मना किया था कि उसके लिये कोई उद्योग वह न करे। पर बेचारी भौजी ने उसकी बात नहीं मानी। उसे वह कोई दोष नहीं देना चाहता—उसने तो अच्छे ही इरादे से, उसकी भलाई के खयाल से ही, विवाह के लिये प्रयत्न किया था। पर वह उसके अंतर की बात क्यों नहीं समझ पायी? कहते हैं कि जिसका जिस पर सच्चा स्नेह होता है वह उसके मन की बात जान लेता है। तब भौजी से उसके मन की बात क्यों छिपी रह गयी? सहसा उसे याद आया कि जब एक दिन भौजी ने उसके विवाह की बात चलायी थी तब उसने कहा था: "भौजी, तुम मेरे मन की बात नहीं समझ पाओगी।" भौजी ने उत्तर में कहा था: "मैं सब समझती हूँ।" तब क्या वह सचमुच उसके मन की बात समझती है? और समझ-बूझ कर भी उसने उसकी शादी के लिये जोर डाला? जोर ही नहीं डाला, बल्कि विवाह करा के ही छोड़ा। उसकी इस जिद के भीतर क्या भेद छिपा हो सकता है? निश्चय ही वह उसके मन की बात को गलत समझे बैठी है। पर इसमें भी उसका क्या दोष हो सकता है! उसने कभी क्या इशारे से भी भौजी के आगे अपने मन की बात का कुछ आभास भी कभी प्रकट होने दिया? वह मूर्खों की तरह क्यों अपनी इच्छा को इतने दिनों तक छिपाये रहा? पर कैसे वह प्रकट करता, जब कि भौजी से वह केवल स्नेह ही नहीं करता बल्कि श्रद्धा भी करता है? और आज एक ऐसे प्राणी का प्रवेश उनके घर में हो गया है जो उस सच्चे स्नेह और अकपट श्रद्धा की भावना को अपने भीतर के तेजाब से जलाने और गलाने पर तुली हुई है। केवल वह भावना

ही नहीं, बल्कि उसका सारा जीवन ही उस तेजाब से जलता और गलता चला जायगा—इस तरह की अस्पष्ट और धुँधली अनुभूति उसके अंतर्मन में जगने लगी। वह बहुत देर तक लेटे-लेटे इसी तरह की बातें सोचता रहा और सोचता हुआ एक अज्ञात पीड़ा की टीस से मन ही मन कराहता रहा।

झमिया अपने मन के बहुत से अरमानों को मार कर अब केवल गुलबिया पर ही अपनी सारी आशाओं और आकांक्षाओं को केन्द्रित करने लगी। पर ज्यों-ज्यों गुलबिया बड़ी होती जाती थी त्यों-त्यों उसके प्रत्येक रंग-ढंग और बात-व्यवहार से झमिया को लगता था कि वह उससे दूर होती चली जा रही है। वह अब अपनी अम्माँ से अधिक बातें भी नहीं करती थी। स्कूल से लौटने पर वह या तो अपनी सहेलियों के साथ न जाने किन विषयों पर बातें करती थी, या अकेली होने पर अपनी पुस्तकों की पढ़ाई में व्यस्त रहती। झमिया के मन में इस बात के लिये बड़ी तीव्र इच्छा जगती थी कि कुछ क्षण गुलबिया के साथ बैठ कर कुछ बातें करे—फिर चाहे वे बातें उसके स्कूल के या स्कूल की लड़कियों के बारे में ही क्यों न हों। पर वह देख रही थी कि गुलबिया एक क्षण भी अब उसके पास बैठना पसंद नहीं करती। कोई बात उससे पूछने पर वह रूखा-सूखा जवाब देती थी। मुश्किल तो यह थी कि अब उसे 'गुलबिया' कह कर पुकारने में भी झमिया को डर मालूम होता था। दो-तीन बार इसके लिये उस पर लड़की की डाँट पड़ चुकी थी। और उसे 'गिरिजा' कह कर पुकारने में भी उसे संकोच होता था। इसलिये अब वह केवल 'बिटिया' कह कर उसे संबोधित करती थी। झमिया समझ नहीं पा रही थी—लाख प्रयत्न करने पर

भी समझ नहीं सकती थी—कि उसकी बिटिया के भीतर किस तरह के विचारों का द्वन्द्व चल रहा है और उसके स्वभाव में बड़ी तेज रफ्तार से जो परिवर्तन होता चला जा रहा है उसका रूप क्या है। छुटपन में जिस बिटिया को उसने डाँट-डपट कर, मार-पीट कर पूर्णतः अपने अनुगत बनाये रखने के प्रयत्न में, बुजदिल बना डालने में कोई बात उठा नहीं रखी थी, आज वह जैसे उसके उसी व्यवहार का बदला लेने पर तुली हुई थी। आज उलटे झमिया उससे डरने और काँपने लगी थी और दूर ही से श्रद्धा और संभ्रम-मिश्रित स्नेह-दृष्टि से उसे देखती रहती थी।

प्रारंभ में महावीर को भी गुलबिया को 'गिरिजा' कह कर पुकारने में संकोच का अनुभव हुआ था, पर धीरे-धीरे उसने आदत डाल ली और उसकी देखादेखी मालती भी उसे गिरिजा ही कहने लगी। झमिया अधिकतर 'बिटिया' ही कह कर संबोधित करती थी, और कभी-कभी साहस करके 'गिरिजा' भी कह डालती थी। एक-आध बार भूल में 'गुलबिया' शब्द भी उसके मुँह से निकल पड़ता था, जिसके लिये उसे खेद प्रकट करना पड़ता था। पर धीरे-धीरे उसने आदत डाल ली और एक दिन आया जब गुलबिया की केंचुल का एक चिह्न भी अवशिष्ट न रहा। गुलबिया पूर्णतः गिरिजा में बदल गयी।

१४

गिरिजा की बुद्धिमत्ता दिन पर दिन, मास पर मास, वर्ष पर वर्ष आश्चर्य-जनक रूप से बढ़ती चली जाती थी, और नये-नये चमत्कार दिखाती थी। उसने इंटरमीडियेट तक पहुँचते-पहुँचते हिंदी और

गुजराती के साथ ही अंगरेजी की योग्यता इस हद तक बढ़ा ली थी कि मिस वोरा के साथ वह धड़ाधड़ बोलचाल की अँगरेजी में बातें कर लेती थी। मिस वोरा उसे पहले ही से चाहने लगी थीं; अब तो वह और भी अधिक उनकी प्रियपात्री बन गयी थी। लड़कियों को जब किसी सामूहिक या व्यक्तिगत कारण से मिस वोरा से किसी बात के लिये अनुरोध करना होता तो वे गिरिजा को ही अग्रणी बना कर भेजती थीं। वे जान गयी थीं कि उसकी बात की उपेक्षा मिस वोरा नहीं कर सकतीं। किसी भी दूसरी लड़की को मिस वोरा अक्सर बुरी तरह डाँट-डपट देती थीं। केवल लड़कियाँ ही नहीं, अध्यापिकाएँ भी उनसे भयभीत रहती थीं। पर गिरिजा के प्रति मिस वोरा के स्नेह और कृपा का अंत नहीं था। प्रारंभ में गिरिजा तनिक संकोच से उनके साथ बातें करती थी, पर धीरे-धीरे उनके स्नेह और अपने गुणों के कारण उसका आत्म-विश्वास बढ़ता चला गया और वह ढीठ बन कर समय-असमय उनसे मिलती-जुलती रहती। तरह-तरह के आवश्यक और अनावश्यक विषयों पर बातें करती और कभी-कभी स्कूल संबंधी कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण विषयों पर उन्हें सलाह भी दे आती! इस हद तक वह उनके मुँह लग चुकी थी। सभी लड़कियाँ और आध्यापिकाएँ उसे ईर्ष्या की दृष्टि से देखती थीं, पर फिर भी वे सब उसके प्रति स्नेहशील थीं—क्योंकि वह स्वयं सबके प्रति सहृदय और स्नेहपरायण रहती थी।

इस प्रकार वह सारे स्कूल की लड़कियों की नेत्री बन गयी। अब वह बी० ए० फाइनल में पढ़ने लगी थी, उसके नेतृत्व में लड़कियों ने स्कूल में कई नाटक खेले, कई महत्त्वपूर्ण विषयों पर वाद-विवाद में भाग लिया, और स्कूल के भीतर ही एक साहित्य-समिति की

स्थापना में योग दिया। गिरिजा स्वयं भी 'डिबेटों' में भाग लेती थी और ऐसे अवसरों पर उसके भाषण (चाहे गुजराती में हों, चाहे हिंदी में, चाहे अंगरेजी में) ऐसे धाराप्रवाह और तर्क ऐसे चुटीले होते थे कि श्रोत्रियों में सन्नाटा छा जाता था। उसका उस दिन का भाषण अधिक प्रभावपूर्ण और चुभता हुआ था जिस दिन वह नारी के अधिकारों से संबंधित वाद-विवाद के अवसर पर बोली थी। उस दिन उसने जोरदार शब्दों में कहा था कि प्रत्येक नारी को इस बात का पूरा अधिकार है कि यदि वह आज के युग के पुरुष-परिचालित समाज द्वारा निर्धारित किसी नियम को अपनी जाति के लिये अपमानकर और अपनी प्रगति के लिये बाधक समझे तो पूरी ताकत से उसका उल्लंघन करे। "हमें प्रगतिशील शक्तियों को अपनाना और प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तियों के विरुद्ध विद्रोह करना होगा।" उसने एक-एक शब्द पर पूरा जोर देते हुए अंत में कहा था। सब अध्यापिकाओं ने उसके तमतमाये हुए मुख के अत्यंत गंभीर भाव से यह महसूस किया कि वह केवल वाद-विवाद की प्रतियोगिता में भाग ले कर उसमें बाजी मार ले जाने के उद्देश्य से इस तरह की बातें नहीं कह रही है, बल्कि अपने आंतरिक विश्वास से बोल रही है।

सबको आश्चर्य इस बात पर होता था कि वह इस तरह का विश्वास और वैसे अकाट्य और चुभते हुए तर्क कहाँ से लाती थी। स्कूल की पाठ्य-पुस्तकों के ज्ञान की सीमा से सभी अध्यापिकाएँ और सयानी लड़कियाँ भी परिचित थीं। यह बात अब तक बहुत कम को मालूम थी कि मिस वोरा उस पर इस हद तक स्नेहशील हो उठी हैं कि अक्सर छुट्टी के दिनों में उसे अपने घर पर बुला लेती हैं और वहाँ तरह-तरह के विषयों की अँगरेजी

की पुस्तकें उसे पढ़ाती हैं और घर पर पढ़ने को देती रहती हैं।

मिस बोरा के घर आते-जाते रहने से गिरिजा को पता लगा कि वह अकेली रहती हैं और कोई सगा-संबंधी उनका नहीं है। उसे इस बात पर बराबर आश्चर्य होता था कि इस उम्र तक मिस बोरा की शादी क्यों नहीं हुई। एक दिन वह अपनी ढिठाई की सीमा को कुछ आगे बढ़ा कर उनसे पूछ ही बैठी : "मिस बोरा, यदि आप मेरी गुस्ताखी माफ करें तो एक प्रश्न करना चाहती हूँ।"

"क्या ?"

"आप अभी तक अविवाहित क्यों हैं ?"

मिस बोरा ने इस प्रश्न पर कृत्रिम क्रोध प्रकट किया और कहा : "अभी से तुम्हें इस प्रकार के प्रश्नों में दिलचस्पी लेने का कोई अधिकार नहीं है !"

"तब आप क्यों मुझे अभी से ऐसी पुस्तकें पढ़ने को देती हैं जिनमें नारी को अपने अधिकारों को समझने और पुरुषों द्वारा रचे गये कृत्रिम बंधनों से मुक्त होने का प्रयास निरंतर करते रहने की शिक्षा दी जाती है ! इस तरह की बातों की जानकारी होने के बाद आप क्या यह विश्वास करती हैं कि विवाह-संबंधी प्रश्नों को टाल जाना मेरे लिये संभव है ?"

मिस बोरा हँस पड़ीं। बोलीं : "तुम सचमुच बड़ी दुष्ट लड़की हो। मैं बार-बार यह भूल जाती हूँ कि तुम बहुत ही अधिक 'प्रीकोशस' हो और तुम्हारी बुद्धि और तुम्हारी अनुभूतियाँ तुम्हारी उम्र के अनुपात से बहुत आगे बढ़ चुकी हैं। तुमसे कोई बात छिपा कर रखना कठिन है। तो सुनो, मैंने अभी तक शादी क्यों नहीं की इसके पीछे कोई बहुत बड़ा रहस्य नहीं है। मैं अपनी

जवानी के दिनों में एक लड़के को चाहती थी। मैं तब पढ़ाई खतम करके एक स्कूल में नौकरी करने लगी थी, पर वह तब एम० ए० फाइनल में पढ़ रहा था। वह गरीब था। उसके पास फीस देने के लिये भी रुपये नहीं थे। मैं बराबर उसकी फीस, जेब-खर्च वगैरह जुटाती रही। हम दोनों के बीच यह बात तय हो चुकी थी कि ज्योंही वह पढ़ाई समाप्त करके कहीं नौकरी पा लेगा त्योंही हम दोनों विवाह कर लेंगे। वह पहली श्रेणी में पास हुआ और जल्दी ही उसे किसी एक कालेज में नौकरी भी मिल गयी। मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। यह तय हुआ कि २२ सितंबर को हम दोनों का विवाह होगा। तब अगस्त का आरंभ था। वह रहता अपनी बहन के साथ था, पर मेरे यहाँ वह नियमित रूप से आता-जाता था। पर अगस्त का महीना आधा बीतते न बीतते उसने मेरे यहाँ आना बहुत कम कर दिया और सितंबर आरंभ होने पर तो उसका आना एकदम बंद ही हो गया। मैं बहुत चिंतित हुई। उसके यहाँ मैं केवल एक या दो बार गयी थी। हम लोगों ने यह नियम बना रखा था कि वही मेरे यहाँ आता था, मैं उसके यहाँ नहीं जाती थी। जो भी हो, मुझे चिंता हुई कि कहीं वह बीमार न पड़ गया हो। वह वर्ली में एक मकान में नीचे के दो कमरे किराये पर ले कर रहता था। उसके घर जाने पर वह नहीं मिला। पता लगा कि वह स्वस्थ है, पर कहीं गया हुआ है। मैं उस समय लौट गयी, पर शाम को फिर उसके यहाँ पहुँची। बरामदे से मैंने आवाज दी। उसकी एक सोलह-सत्रह साल की बहन थी। वह मुझे देख कर और मेरा प्रश्न और नाम सुन कर क्षण-भर के लिये असमंजस की सी स्थिति में चुप खड़ी रही, उसके बाद बोली : 'मैं जा कर देखती हूँ।' उसने

दो महीने बाद एक दिन शनिवार को मैं न्यू एम्पायर सिनेमा में गयी। वहाँ एक प्रसिद्ध फिल्म आया हुआ था, जिसकी चर्चा सारे शहर में थी। मैं खिड़की से टिकट खरीद कर ज्योंही लौटी त्योंही मेरी नजर सैम पर (उसका यही नाम था) पड़ी। उसके साथ एक बीस बाईस बरस की ऐंग्लो-इंडियन लड़की थी। उसका रंग 'गेहुँआ था, पर देखने में वह कुछ बुरी नहीं लगती थी। 'हल्लो सैम !' मैंने कहा। पर मुझे देखते ही वह कन्नी काट कर लड़की के साथ पिछवाड़े की तरफ मुड़ा और वहाँ से न जाने कहाँ गायब हो गया। मैं समझ तो गयी कि मामला क्या है, पर मेरी सारी आत्मा उसके व्यवहार से जल उठी। जीवन में इतनी बड़ी कृतघ्नता का दूसरा उदाहरण मुझे नहीं मिला था। उसके युनिवर्सिटी जीवन में मैंने ही उसका सारा खर्चा चलाया था, उस तक के लिये कृतज्ञता जताने की कोई आवश्यकता वह महसूस नहीं कर रहा था। इतने दिनों तक की घनिष्ठता का भी कोई महत्त्व वह स्पष्ट ही नहीं मानना चाहता था। और विवाह की बात तय हो चुकने पर भी जो वचन-भंग उसने किया था उसके लिये क्षमा चाहने की भी फुर्सत उसे नहीं थी ! उसके दो महीने बाद किसी एक परिचित व्यक्ति से पता लगा कि उसने उस ऐंग्लो-इंडियन लड़की से शादी कर ली है। यह भी मालूम हुआ कि वह लड़की किसी एक बैंक में काम करती है। इस घटना का ऐसा बुरा प्रभाव मुझ पर पड़ा कि मेरा दिल ही टूट गया। मैंने तब से निश्चय कर लिया कि मैं आजीवन कुँवारी रहूँगी और किसी पुरुष के साथ कभी मित्रता का भी संबंध नहीं रखूँगी..."

गिरिजा बड़े ध्यान से मिस वोरा का दास्तान सुनती रही। सैम नाम के उस अज्ञात और अपरिचित व्यक्ति के प्रति उसके मन में

उत्कट घृणा का भाव उमड़ आया, जिसने मिस वोरा जैसी सहृदय नारी को इस कदर धोखा दिया था। वह स्वयं अभी तक प्रेम के महत्त्व से ठीक से परिचित नहीं थी। स्त्री-पुरुष के पारस्परिक प्रेम-संबंध पर जो पुस्तकें उसने पढ़ी थीं उनसे उसके संबंध में कोई भी निश्चित ज्ञान उसे नहीं हो पाया था। न अभी तक अपने ही भीतर उसने उस बहुश्रुत अनुभूति का कोई सुस्पष्ट आभास पाया था। फिर भी जो एक संस्कारगत, अस्पष्ट सी चेतना इस संबंध में उसके अंतर में वर्तमान थी उसके सहारे वह सारी तस्वीर को अत्यंत मार्मिक रूप से हृदयंगम करने में समर्थ हो रही थी। तब से मिस वोरा के प्रति उसके मन में श्रद्धा और बढ़ गयी।

१५

किशन के आगे धीरे-धीरे एक नयी दुनिया उद्‌घाटित हो रही थी। अक्षर-ज्ञान होने के दिन से ही उसके सिर पर पढ़ाई का भूत इस कदर सवार हो गया था कि वह गिरिजा के यहाँ हिन्दी की जो भी पुस्तक पाता उसे उठा कर ले जाता और एकांत में बैठ कर पढ़ने लगता। यदि किसी समय वह देखता कि गिरिजा को अवकाश है तो उसके पास ही बैठ कर पढ़ने लगता और कठिन शब्दों के अर्थ पूछता। पर यह देख कर वह बहुत दुखी रहता था कि गिरिजा को अवकाश बहुत कम मिलता है। अक्सर वह उसे व्यस्त पाता। कालेज से आने पर या तो वह कालेज में दिये गये काम में जुटी रहती, या कोई बड़ी सी पुस्तक उठा कर उसे पढ़ने में तन्मय दिखायी देती या अपने साथ की दो-एक लड़कियों के साथ बातें करने में व्यस्त रहती। यह अवश्य था कि किशन से वह अब भी अप्रसन्न नहीं थी और

ऱसे देखते ही उसकी आँखों में एक स्निग्ध मुस्कान झलक उठती
ी, जो किशन को बहुत प्यारी लगती थी। पर चूँकि वह स्वयं अपने
अध्ययन में या अपनी संगिनियों के साथ व्यस्त रहती थी, इसलिये
ाड़े मीठे स्वर में उससे कह देती: "फिर किसी समय आना,
केशन।" किशन उदास चेहरा ले कर चला जाता। उसके मन में
कभी-कभी इस बात की प्रतिक्रिया जगती और वह सोचता कि अब
फिर वह कभी गुलबिया के पास नहीं जायगा। वह अभी तक अपने
मन में गिरिजा को गुलबिया ही कहा करता था। यद्यपि बाहर कभी
उस नाम को मुँह से निकालने का साहस उसे नहीं होता था। वह
नाम उसकी रग-रग में समा चुका था। उसे वह नहीं भूल सकता
था। इसलिये जब वह मन ही मन अपने आप से बात करता तब
गुलबिया को वह कभी गिरिजा के रूप में न सोच पाता। केवल नाम
से ही नहीं, आकृति और प्राकृति से भी अभी तक वही गुलबिया
उसके मन की आँखों के आगे प्रकट होती थी जो कभी गंदे-मैले
कपड़े पहने उसके पास आ कर बैठती थी और उसकी बातों से बहुत
प्रभावित होती थी। उसी गुलबिया से वह आज भी एकांत निकटता
का अनुभव करता था। वह गुलबिया जब से गिरिजा में बदल गयी
तब से वह उसके और अपने बीच में एक बहुत बड़ा व्यवधान
पाता था और भीतर एक तीव्र द्वन्द्व का अनुभव करता था। गिरिजा
और गुलबिया उसके आगे दो भिन्न व्यक्तियों के रूप में आते थे।
गुलबिया उसके मन की चहारदीवारी के भीतर अभी तक बँधी थी,
पर गिरिजा दीवार को फाँद कर बाहर निकल गयी थी। उसका
व्यक्तित्व उसके मन में संभ्रम का भाव पैदा करता था, सहज स्नेह का
नहीं। जब गिरिजा उसे देखते ही स्निग्ध मुसकान से उसका स्वागत

करती थी तब भी वह संभ्रम का भाव उसके मन से नहीं हटता था। पर सब के बावजूद किशन उसके प्रति उदासीन नहीं हो पाता था—अपने मन को लाख समझाने का प्रयत्न करने पर भी नहीं। उसकी बेचैनी और कशमकश का सबसे बड़ा कारण यही था।

जब कभी गिरिजा के विरुद्ध उसके मन में प्रतिक्रिया जगती तब वह अत्यन्त गंभीरता से यह सोचने लगता कि क्या कोई ऐसा उपाय नहीं हो सकता जिससे वह बहुत कम समय के भीतर गिरिजा के समान ही ज्ञान प्राप्त कर सके और तब उससे बराबरी के दर्जे में बातें करके उस पर उसी तरह रौब जमा सके जिस तरह वह पहले कभी गुलबिया पर जमाया करता था ? फिर सोचता कि यह कैसे संभव हो सकता है ! गिरिजा तब दसवें दरजे में पढ़ती थी और वह अभी तक छठे ही दर्जे में था। एक साल वह परीक्षा ही नहीं दे सका था। उसका बाप बीमार हो गया था और उसे घर के कामों से ही फुर्सत नहीं मिलती थी। दूसरे वर्ष भी वह सभी विषयों में पूरी तैयारी नहीं कर सका था और गणित में और भूगोल में फेल हो गया था। उसे एक तो बताने वाला कोई नहीं, दूसरे उसका बाप उसे पाठ याद करने के लिये अवकाश ही नहीं देना चाहता था—सब समय किसी-न-किसी काम में उसे जोते रखना चाहता था। कभी-कभी उसकी अंतःप्रज्ञा जैसे फुसफुसा कर उसके कान में कह जाती : "तुम्हारा बप्पा तुम्हारे पढ़ने-लिखने से कुढ़ता और जलता है। केवल गुलबिया के चाचा के भय से तुम्हें स्कूल जाने से नहीं रोक पाता, नहीं तो उसका बस चलता तो वह चौबीसों घंटे तुम्हें हाथ की मेहनत और दौड़-धूप के कामों में जोते रखता। उसके मन में अभी तक यह विश्वास अटल है कि जब उसने और उसके बाप-दादों ने कभी पढ़ा-लिखा

नहीं तब बेटा पढ़ने-लिखने में समय नष्ट करके निकम्मा और कुल का कलंक बनने जा रहा है। इसलिये वह तरह-तरह के बहानों से तुम्हें हर तरह परेशान किये रखना चाहता है और तुम्हारी पढ़ाई में विघ्न डालता रहता है। वह चाहता है कि तुम भी जीवन-भर उसी की तरह केवल हाथ-पाँवों के बल खटते रहो और साथ ही बराबर के लिये निपट गँवार भी बने रहो।" अपनी अंतःप्रज्ञा की इस तरह की बात सुन कर किशन आतंकित हो उठता। वह सोचता कि उसके बप्पा में और गिरिजा के चाचा में कितना अंतर है! गिरिजा के चाचा ने कैसे शौक से उसे स्कूल में भरती कराया और आज जब वह इतना पढ़ लिख गयी है तब वह उससे कितने प्रसन्न रहते हैं। फिर सोचता कि गिरिजा के चाचा और उसके अपने बप्पा की स्थिति में भी तो बहुत बड़ा अंतर है। उसका बप्पा एक साधारण नौकर है—केवल तीस रुपल्ली महीने में पाता है, जब कि वह सारी डेयरी का मालिक ही है।" पर बप्पा ने बताया था कि गिरिजा का चाचा भी पहले उसी की तरह गरीब था और नौकरी करता था। वह सोचता : "और आज वह अपनी मेहनत से और लगन से पैसेवाला बन गया है। क्या यह संभव नहीं है कि मैं भी एक दिन उसी की तरह मेहनत और मजदूरी से पैसे कमा कर, गाय-भैंस खरीद कर दूध का व्यापार शुरू कर दूँ और रुपया जोड़ूँ? तब गिरिजा भी मेरी इज्जत करने लगेगी। आज वह सोचती है कि मैं उसके एक नौकर का लड़का हूँ, इसलिये मुझसे ठीक से बात तक नहीं करती। तब उसका रुख ही बदल जायगा। पर...पर...तब मेरी पढ़ाई कैसे हो सकेगी? और बिना पढ़े-लिखे आदमी से एक पढ़ी-लिखी लड़की बात ही क्यों करना चाहेगी? नहीं, मैं चाहे रुपया कमा सकूँ या

न कमा सकूँ, पढ़ूँगा जरूर। पर दिन-भर इस तरह कामों में फँसे रहने से मैं पढ़ने में तरक्की कैसे कर सकूँगा? गिरिजा अब दसवाँ दर्जा भी पास कर लेगी, और मैं अभी छठे दर्जे में पड़ा हूँ!" और गाढ़ निराशा की एक घनी अँधेरी छाया उसके मन को चारों ओर से घेर लेती। "पर जो भी हो, मैं पढ़ूँगा जरूर!" फिर उसका विद्रोही मन सोचता: "चाहे मैं जिन्दगी भर छठे दर्जे में ही पड़ा रहूँ, स्कूल जाना नहीं छोड़ूँगा। मेरी मोटी बुद्धि घिसते रहने से कभी तो तेज होगी!"

इस तरह के निश्चय से उसके मन को बड़ा बल मिलता। सुबह, शाम, रात जब भी काम से वह तनिक भी छुट्टी पाता तो कोई न कोई चीज उठा कर अवश्य पढ़ने लगता—चाहे वह रद्दी में पड़ा हुआ कोई पुराने अखबार का टुकड़ा ही क्यों न हो। एक दिन वह गिरिजा के यहाँ से एक पुराना, किन्तु पूरा, हिन्दी का अखबार उठा लाया और पहले ही पृष्ठ से पढ़ने लगा। उसमें बड़े-बड़े अक्षरों में बड़ी-बड़ी खबरें छपीं थीं। वह पढ़ने पर भी ठीक से कुछ समझा नहीं, पर न समझने पर भी वे सब बातें उसे बड़ी दिलचस्प लगने लगीं। उसे लगा कि उसके चारों ओर दुनिया बड़ी तेजी से घूम रही है (भूगोल की पहली किताब में भी उसने कुछ इसी तरह की बात पढ़ी थी, और मास्टर साहब ने भी बताया था कि दुनिया घूमती रहती है—कुछ इस बात का असर भी शायद उसके दिमाग पर पड़ रहा था) और उसमें प्रतिदिन बड़ी-बड़ी घटनाएँ घट रही हैं और बड़े-बड़े कांड हो रहे हैं, और वह उन सब से अपरिचित रह कर, अपनी छोटी सी दुनिया में अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाया करता है! बड़ी दुनिया में केवल गिरिजा ही नहीं है, केवल उसका बप्पा,

गिरिजा का चाचा, उनकी डेयरी, उसका छोटा-सा स्कूल—ये ही नहीं हैं; वहाँ और भी बहुत कुछ है, जिसकी कोई खबर उसे नहीं रहती। उतनी बड़ी दुनिया से अलग रहने के कारण ही तो उसके मन में सब समय उदासी, सब समय निराशा छायी रहती है। वह अब से रोज अखबार पढ़ेगा और धीरे-धीरे सब समझने लगेगा।

तब से वह नियमित रूप से एक पुराना अखबार लौटाता और दूसरा पुराना अखबार पढ़ने को ले आता। काम से तनिक भी अवकाश पाते ही पढ़ने लगता। पहले पृष्ठ में छपी हुई बड़ी-बड़ी खबरें उसकी समझ में ठीक-ठीक न आने पर भी उन्हें वह पढ़ता रहता था। पर सब से अधिक दिलचस्पी वह उस पृष्ठ की खबरों में लेता था जिसमें बंबई के स्थानीय समाचार छपे रहते थे। कभी वह पढ़ता कि रूई के बड़े गोदाम में आग लग गयी और कई लाख का नुकसान हो गया; कभी पढ़ता कि कोई आदमी बस या ट्राम से कट कर मर गया; कभी पढ़ता कि अमुक मिल के मजदूरों ने हड़ताल कर दी; कभी पढ़ता कि अमुक स्थान में कुछ डाकुओं ने रात में हमला कर के हजारों रुपयों का माल व नकदी साफ कर दी। ये सब खबरें उसके कुतूहल को हद दर्जे तक उभाड़ देती थीं। उन्हें पढ़ने पर उसकी वह उदासी दूर हो जाती जो उसे अपने भीतर के अकेलेपन में महसूस होती थी। वह इन खबरों को पढ़ता हुआ कभी अपने को कल्पना द्वारा उन लोगों के साथ समझने लगता जिनका नुकसान हुआ हो, और कभी उन लोगों के साथ मान कर रोमांचित होता जो अपनी जान को खतरे में डाल कर, दुस्साहसिक कृत्यों से पुलिस को भी छका देते थे। पढ़ने के बाद वह रात में सोने के पहले बप्पा को भी उन संवादों से परिचित कराता। जग्गू कुछ देर तक उसकी बातों में दिल-

चस्पी दिखाता, पर फिर जल्दी ही खुर्राटे भरने लगता । किशन एक लम्बी साँस खींच कर कुछ देर तक अपने मन के सागर में तैरने वाले अस्पष्ट छाया-स्वप्नों में मग्न रहता और फिर स्वयं भी सो जाता ।

इस तरह किशन की प्रगति बहुत धीरे-धीरे हो रही थी, जब कि गिरिजा बहुत तेज कदम रखती हुई आगे बढ़ी जा रही थी ।

१६

एक दिन शांता गिरिजा को अपने यहाँ बुला ले गयी । शांता अपनी अम्माँ के साथ अपनी मौसी के यहाँ रहती थी । उसके मौसा बरसों से बंबई में रहते थे और जवाहरात का व्यवसाय करते थे । उसके पिता कराची में अपने को अरक्षित पा कर अपनी पत्नी और इकलौती लड़की को बंबई पहुँचा गये थे और स्वयं दिल्ली जा कर नये सिरे से कोई व्यवसाय खड़ा करने का प्रयत्न कर रहे थे । उस दिन शांता की मौसी की लड़की मीना की वर्षगाँठ थी । मीना ने शांता के मुँह से गिरिजा की बड़ी प्रशंसा सुनी थी और वह उससे मिलने के लिये उत्सुक थी । वह बहुत दिनों से उसे अपने यहाँ बुलाने का कोई उपयुक्त अवसर खोज रही थी । शांता ने तीन दिन पहले ही से गिरिजा को निमंत्रित कर दिया था । गिरिजा ने पहले तो टालना चाहा था । वह अभी तक किसी भी अपरिचित व्यक्ति के यहाँ जाने में संकोच का अनुभव करती थी । शांता यद्यपि अपरिचित नहीं थी, पर गिरिजा जानती थी कि वह अपनी मौसी के यहाँ रहती है और वर्षगाँठ भी उसकी अपनी नहीं, उसकी मौसी की लड़की की है । इसलिये वह टाल जाना चाहती थी । इसके पहले भी शांता ने दो-एक बार उसे अपने यहाँ चलने को आमंत्रित

किया था, जिसका कोई फल नहीं हुआ था। पर इस बार शांता उसके पीछे पड़ गयी। विवश हो कर गिरिजा को उसका निमंत्रण स्वीकार करना पड़ा।

शांता के मौसा वल्लभदास गिडवानी मैरीन ड्राइव में रहते थे। बस से उतर कर अपेक्षाकृत कुछ ही दूर चलने के बाद एक बहुत बड़े मकान के अहाते में दोनों जा पहुँची। बरसाती से हो कर दोनों ने भीतर प्रवेश किया। सामने ही लिफ्ट का दरवाजा था। शांता ने बाहर से बटन दबाया और लिफ्ट अपने-आप ऊपर से नीचे उतर आया। दरवाजा खोल कर शांता गिरिजा के साथ लिफ्ट के भीतर चली गयी और फिर भीतर से दरवाजा बंद कर के उसने चार नंबर का बटन दबाया। बदन दबाते ही लिफ्ट अपने आप ऊपर चढ़ने लगा। बीच की मंजिलें पार करने के बाद लिफ्ट अपने आप चौथी मंजिल पर जा कर ठहर गया। शांता दरवाजा खोल कर बाहर निकली। गिरिजा ने भी चुपचाप उसका अनुसरण किया। शांता ने कोरिडोर में खड़े हो कर सामने वाले दरवाजे के बाहर फिर एक बटन दबाया। भीतर घंटी बजने की आवाज सुनायी दी। दूसरे ही क्षण दरवाजा खुला। प्रायः अठारह साल की एक सुन्दरी लड़की ने अत्यन्त प्रसन्न भाव से गिरिजा की ओर हाथ जोड़े और अत्यन्त मधुर और कोमल स्वर में कहा : "आइये, पधारिये !"

शांता ने दोनों का एक दूसरे से परिचय कराया। गिरिजा ने जाना कि उसी लड़की का नाम मीना है। मीना उसे ड्राइंग रूम में ले गयी। बहुत बढ़िया किस्म के फर्निचर से सजा हुआ एक काफी बड़ा और ठाठदार कमरा था। भीतर प्रवेश करते ही समुद्री हवा के एक तेज झोंके ने गिरिजा के बालों को उड़ा दिया। उसी कमरे के

सामने की ओर एक काफी चौड़े मरामदे में पाँच-सात लड़कियाँ बैठी हुई थीं। उनमें एक को छोड़ कर बाकी सभी लड़कियाँ रेशम के विविध प्रकार के डिजाइनों के कुरते और सलवारें पहने थीं और दुपट्टे ओढ़े थीं। प्रत्येक के बाएँ हाथ में सोने की बहुत छोटी घड़ी बँधी थी, कानों में हीरे के बुन्दे चमक रहे थे और गले में मोतियों और दूसरे जवाहरात की लड़ी लटक रही थीं। सभी आपस में हास्यालाप कर रही थीं। बात-बात पर कभी खिलखिला उठती थीं और कभी ठहाके मारती थीं। गिरिजा शांता और मीना के साथ तनिक सहमी सिकुड़ी हुई सी उन लोगों के पास जा कर खड़ी हो गयी। बरामदे में पहुँचते ही उसने देखा, सामने अपार सागर लहरा रहा था। बंबई में रहने के कारण उसने पहले भी कई बार सागर देखा था। पर आज मेरीन ड्राइव के उस मकान की ऊँचाई से सहसा उसका जो विस्तृत और क्षितिज के छोर से भी आगे अनंत तक प्रसारित रूप उसने देखा वह अपूर्व था। पश्चिम की ओर ढलते हुए सूर्य के अभी तक प्रखर प्रकाश में लगता था जैसे पिघलती हुई चाँदी की लहरें उमड़ती हुई उस विशाल नगरी के चरणों को चूमने के लिए उन्मत्त वेग से दौड़ी चली आ रही हैं। गिरिजा मुग्ध भाव से उसी ओर देखती रह गयी।

"आइये, विराजिये", मीना ने उसकी ओर एक कुर्सी बढ़ाते हुए कहा। पर गिरिजा ने शायद सुना नहीं। वह चुम्बकाकर्षित सी सामने समुद्र की ओर देखती ही रही।

इतने में शांता ने पीछे से आ कर उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा : "क्या देख रही हो? समुद्र क्या कभी देखा नहीं!"

गिरिजा का ध्यान भंग हुआ। उसने लौट कर देखा। मीना ने

बड़े प्रेम से फिर कहा : "विराजिये !" शांता ने उसका हाथ पकड़ कर उसे कुर्सी पर बिठाया और स्वयं भी उसकी बगल में बैठ गयी। इस बीच लड़कियों की ठहाकेबाजी कुछ कम हो गयी थी। शांता ने एक-एक करके सभी लड़कियों से उसका परिचय कराया। प्रायः सभी सिंधी लड़कियाँ थीं। केवल वह लड़की, जो कुरता और सलवार न पहन कर गुलाबी रंग की साड़ी पहने थी, गुजराती थी। गिरिजा, पता नहीं क्यों, उस समाज के बीच में अपने को एकदम विजातीय सी मालूम कर रही थी और मन ही मन कह रही थी कि "शांता ने अच्छी जगह मुझे फँसा दिया !" उसे लगता था जैसे वे सभी लड़कियाँ उसके प्रति व्यंग की दृष्टि से देख रही हों। वह स्वयं बहुत सीधे सादे किस्म के कपड़े पहने थी। न उसके हाथ में घड़ी थी, न कानों में बुन्दे और न गले में मोतियों की लड़ी। इसलिये वह न तो वैभव में उन लोगों का मुकाबला कर सकती थी, न ढिठाई के साथ बेतकल्लुफ बातें कर सकने में। बुद्धि और विद्या में वह संभवतः उनसे आगे थी, पर उसके प्रदर्शन का कोई मौका उस समय वहाँ पर नहीं था। इसलिये वह संकुचित सी बैठी हुई थी। दूसरी लड़कियों ने भी उसके आने के बाद से पहले की अपेक्षा बोलना कम कर दिया था।

कुछ देर बाद प्रायः तेईस-चौबीस साल का सुन्दर, सुसज्जित लड़का, जो केवल एक कमीज और पैंट पहने था और कमीज के ऊपर गहरे लाल रंग की एक टाई लटकाये हुए था, वहाँ आ पहुँचा। उसके आते ही सभी लड़कियाँ फिर नये सिरे के चहकने लगीं। गिरिजा ने देखा, लड़का बहुत ही सुन्दर, सुशील और हँसमुख था। उसने आते ही एक-एक कर के सबसे 'नमस्ते' किया और खड़ा ही

रहा, बैठा नहीं। प्रत्येक लड़की उससे बातें करने के लिये उत्सुक हो उठी। वह एक से पूरी बात भी न कर पाता था कि दूसरी लड़की खड़ी हो कर उसका हाथ पकड़ कर उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हुई उसे दूसरी ही बातों में लगाने का प्रयत्न करने लगती थी। दूसरी लड़की की बात पूरी होते न होते तीसरी लड़की उसे घेर बैठती थी। बीच-बीच में तीन चार लड़कियाँ एक साथ बोलती हुई उसे अपनी-अपनी ओर खींचने का प्रयत्न करने लगती थीं। संध्या को अपने-अपने लिये बसेरा ढूँढने की चिंता में व्यस्त, एक ही पेड़ पर इकट्ठा हुई चिड़ियाँ जिस प्रकार चहचहाती हैं, वही हाल उस लड़के के आते ही उन सब लड़कियों का हो गया था। गिरिजा हौलदिल सी होने लगी। उसके लिये यह सब एक नया ही दृश्य था।

काफी देर बाद लड़कियों का चहकना कुछ कम हुआ। लड़का गिरिजा की बगल में ही एक कुर्सी खींच कर बैठ गया। उसके बैठते ही एक-एक करके सभी लड़कियाँ बैठ गयीं। मीना ने गिरिजा से उस लड़के का परिचय कराया। मालूम हुआ कि वह मीना का भाई था। उसका नाम मोहनदास गिडवानी था। एम० ए० तक की पढ़ाई खतम करके अब वह अपने पिता के व्यवसाय-संबंधी कामों में दिलचस्पी लेने लगा था।

मोहनदास ने संक्षिप्त और शिष्टाचारमूलक परिचय के बाद ही उससे अँगरेजी में बातें करना शुरू कर दिया। उसके प्रारंभिक प्रश्न कालेज की पढ़ाई और कोर्स की किताबों के संबंध में थे। गिरिजा कुछ दबी हुई जबान से, किन्तु शुद्ध और सुसंस्कृत अँगरेजी में, उसकी प्रत्येक बात का जवाब देती जाती थी। मोहनदास बड़े ही सहज,

शालीन और सुघड़ ढंग से प्रत्येक प्रश्न का उत्तर सुनने के बाद प्रति-प्रश्न उठाता था और उस पर गिरिजा का मत जानने के बाद स्वयं अपना मत भी अत्यन्त योग्यता के साथ व्यक्त करता था। धीरे-धीरे, न जाने कैसे, अँगरेजी साहित्य की चर्चा चल पड़ी। मोहनदास ने बताया कि उसे शेली बहुत पसन्द है। उसकी 'इंटेलेकचुएल ब्यूटी' शीर्षक कविता की चर्चा चलाते हुए उसने कहा कि विशुद्ध बौद्धिक सौन्दर्य की ऐसी निर्दोष कल्पना शायद ही कोई दूसरा कवि कर पाया हो। विशुद्ध बौद्धिक सौन्दर्य से उसका आशय क्या है, वह भी मोहनदास ने समझाने का प्रयत्न किया। और 'ओड टु स्काइलार्क' में उसने मानव के अन्तर में निरन्तर बजती रहने वाली निगूढ़ रहस्यात्मक वेदना की अभिव्यंजना कैसे अपूर्व चमत्कारी ढंग से की है! गिरिजा ने शेली की कविताएँ बहुत अधिक नहीं पढ़ी थीं, पर सौभाग्य से 'स्काइलार्क' सम्बन्धी कविता उसने अच्छी तरह से पढ़ी थी और कई बार पढ़ी थी। मिस वोरा से भी वह एक बार उस कविता का भावार्थ पूछ चुकी थी। वह कविता उसे बहुत पसन्द थी। इसलिये उसने भी उसकी विशेषता पर, सीमित, संयत, किन्तु सुन्दर शब्दों में अपना मन्तव्य प्रकट किया। मोहनदास के स्वभाव की शालीनता और साहित्यिक तथा सांस्कृतिक विषयों में उसकी सुरुचि उसे बहुत पसन्द आयी थी, इसलिये उसका प्रारंभिक संकोच धीरे-धीरे जाता रहा था। उसने मोहनदास की ही तरह अँगरेजी में ही बोलते हुए शेली की कविता पर जिस सहज सुन्दर भाव से अपना मत दिया उसका बहुत अच्छा प्रभाव मोहनदास पर पड़ रहा था। मोहनदास के मुख के भाव से यह अन्दाज लगाने में उसे देर न लगी। प्रायः सभी लड़कियाँ चुप हो कर अत्यन्त ध्यानपूर्वक उन दोनों का कथोपकथन सुन रही

थीं। शांता के मुख पर गर्व का भाव झलक रहा था। वह एक बार गिरिजा की ओर प्रेमपूर्ण दृष्टि से देख कर फिर मीना की ओर देखती थी, जैसे यह कहना चाहती हो कि "जिस लड़की की तारीफ़ मैंने तुमसे की थी, उसकी बुद्धिमत्ता का प्रत्यक्ष प्रमाण तुम्हारे आगे प्रकट हो रहा है। वह कोई साधारण लड़की नहीं है। उससे परिचय प्राप्त करना सचमुच गौरव की बात है कि नहीं, तुम्हीं बताओ!"

गिरिजा ने कनखियों से देखा, प्रायः सभी लड़कियाँ ईर्ष्या से उसकी ओर देख रही थीं। मोहनदास बातों का सिलसिला टूटने ही नहीं दे रहा था। एक बात समाप्त होते ही वह उसी में से दूसरी बात पकड़ लेता था। और दूसरी बात समाप्त होते ही एक साधारण सूत्र पकड़ कर तीसरी बात चला देता था।

१७

अन्त में मीना ने सब लोगों से प्रार्थना की, भीतर कमरे में चाय के लिये चलें। सब लोग उठ कर भीतर गये। भीतर कई मेजें सजा कर रखी हुई थीं। प्रत्येक मेज के चारों ओर चार कुर्सियाँ लगी हुई थीं। केवल एक कोने पर एक मेज ऐसी थी जिसके आमने-सामने केवल दो ही कुर्सियाँ लगी थीं। मोहनदास ने गिरिजा से आग्रह किया कि वहीं चल कर बैठे। गिरिजा ने तनिक सकुचाते हुए उसकी बात मान ली। दोनों उसी मेज पर जा कर आमने सामने बैठ गये। इस बीच दो-तीन और लड़कियाँ भी आ गयी थीं और एक लड़का भी। मीना ने एक-एक करके गिरिजा से सब का परिचय कराया। लड़के का नाम महेन्द्रकुमार बताया गया। गिरिजा ने देखा कि मीना महेन्द्र की ओर पुलकित दृष्टि से देखती हुई इस बात के लिये मीठा उलहना

दे रही है कि वह देर से आया। मीना उससे अँगरेजी में कह रही थी कि "मैं तो तुम्हारे आने की आशा ही छोड़ चुकी थी।" महेन्द्र ने अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में कहा कि "ऐसा कैसे संभव हो सकता है!" मीना एक और लड़की के साथ उसी मेज पर बैठी जिस पर महेन्द्र बैठ गया था।

सारी मंडली में केवल चार ही पुरुष थे, बाकी सब महिलाएँ थीं। गिरिजा कुछ समझ नहीं पा रही थी कि मोहनदास अपनी परिचित दूसरी लड़कियों का साथ छोड़ कर अकेले उसी का साथ देने के लिये क्यों उत्सुक हुआ है। इससे उसे निश्चय ही प्रसन्नता हो रही थी, पर साथ ही संकोच भी उसे पूरी ताकत से दबा रहा था। किसी शिक्षित पुरुष के निकट संपर्क में आ कर बातें करने का आज पहला ही मौका उसे मिला था। यह वह समझ रही थी कि वह दूसरी लड़कियों की ईर्ष्या का कारण बनी हुई है। इस अनुभूति से उसका अंतर पुलकित भी हो रहा था, साथ ही एक अस्पष्ट अशांति का अनुभव भी वह कर रही थी। प्रारंभ में फैशनेबुल लड़कियों के समाज में अपने पोशाक-पहनावे की सादगी और दीनता के कारण उसके मन में जो आत्मलघुता की भावना घर किये हुए थी वह मोहनदास के साथ काफी देर तक बातें करने और उसे अपनी बातों से बहुत प्रभावित अनुभव करने के बाद से तिरोहित हो गयी थी। अपनी विजय की इस अनुभूति से भीतर ही भीतर उसके उल्लास का ठिकाना नहीं था। पर बाहर से वह यथासंभव शांत और गंभीर बने रहने का प्रयत्न कर रही थी—हालाँकि उसके मुख पर उसके भीतरी उल्लास की चमक छिपाये नहीं छिपना चाहती थी।

मोहनदास ने पेस्ट्री को दाँत से काटते हुए अँगरेजी में कहा :

"मेरी समझ में एक बात अभी तक नहीं आयी कि आपके समान प्रतिभाशाली लड़कियाँ क्यों समाज से कतरा कर भरसक अपने ही अंतर में छिपे रहना चाहती हैं, जब कि साधारण बुद्धि और साधारण समझ वाली लड़कियाँ अपने को प्रदर्शित करने के लिये सब समय अत्यंत उत्सुक रहा करती हैं।"

गिरिजा के अहंभाव को मोहनदास ने अपनी इस बात से गुदगुदा दिया। उसने पुलकित भाव से मुस्कराते हुए शरारत-भरे स्वर में कहा: "जिस समाज के बीच में आप रहते हैं उसमें कोई भी लड़की साधारण बुद्धि और कम समझवाली हो सकती है, मुझे यह विश्वास नहीं होता।" यह कह कर उसने एक चम्मच नमकीन मुँह में डाला और प्रश्न-भरी दृष्टि से मोदनदास की ओर देखने लगी।

"आपको अभी पता नहीं है," तनिक गंभीर मुखमुद्रा से मोहन-दास बोला, "कि हमारे फैशनेबुल समाज की लड़कियों की भीतरी बुद्धि किस कदर खोखली होती है। केवल मशीन-चालित पुतलियों की तरह उनका बाहरी मन बाहरी हवाओं के अनुसार नाचता रहता है। वे दूसरे के मन की साधारण रूप से गहरी वेदना को भी समझने में असमर्थ रहती हैं। वे अधिक से अधिक केवल ऊपरी भावों की क्रिया-प्रतिक्रिया पर ध्यान दे पाती हैं और उन्हें भी अपनी सीमित बुद्धि के अनुसार ही समझ पाती हैं। वे सब निर्जीव पुतलियाँ होती हैं—ऊपर से भले ही अपनी चटक-मटक और तड़क-भड़क से वे अपने चारों ओर एक मोहक वातावरण बनाये रहती हों।"

गिरिजा इस बार कुछ बोली नहीं। मोहनदास के मुख के भाव और स्वर की गंभीरता ने उसकी उमड़ती हुई व्यंगात्मक प्रवृत्ति को

आरंभ में ही दबा दिया। वह चुपचाप, कनखियों से, जिज्ञासु-भाव से मोहनदास की ओर देखती हुई उसके खाली प्याले में चाय ढालने लगी।

"मैं कुछ भावुक किस्म का आदमी हूँ," अपने स्वर में तनिक उदासी घोलते हुए मोहनदास बोला। "मेरे घरवालों और रिश्तेदारों की यह धारणा है (हालाँकि अपनी इस धारणा को मेरे आगे स्पष्ट शब्दों में कोई व्यक्त नहीं करता, केवल इंगित से, व्यंग और परिहास के रूप में वे लोग मुझे यह आभास दे देते हैं) कि मैं अपने वंश की परंपरा को तोड़नेवाला—कुल का कलंक—पैदा हुआ हूँ..." यह कहते हुए एक करुण मुसकान उसके मुख पर झलक उठी।

उसकी बात से गिरिजा की दिलचस्पी बढ़ी। वह एकांत ध्यान से उसकी ओर टकटकी लगाये रही। वह जानती थी कि वह बिना पूछे ही स्वयं अपनी बात का स्पष्टीकरण करेगा।

"बात यह है," अपने प्याले में चम्मच से चीनी मिलाता हुआ मोहनदास बोला, "कि हम लोग सिंधी हैं। हम लोगों में व्याव-सायिक प्रवृत्ति जन्म के साथ ही विकसित होती रहती है। मेरे कुल में तो यह प्रवृत्ति विशेष रूप से, पुश्त-दर-पुश्त उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होती चली गयी है। अर्थात् मेरे परदादा से मेरे दादा अधिक कुशल व्यवसायी थे और मेरे दादा से मेरे पिताजी ने इस क्षेत्र में और अधिक उन्नति की है। पर मेरी रुचि इस ओर तनिक भी नहीं है। मेरी रुझान साहित्य और संस्कृति की ओर अधिक है। आध्यात्मिक विषयों में भी मुझे बहुत दिलचस्पी है। अरविंद की योग-सम्बन्धी फिलासफी के अध्ययन में मेरा मन बहुत लगता है।

कहाँ मेरा खानदानी पेशा जवाहरात का व्यवसाय और कहाँ अरविंद की फिलासफी! दोनों में कहीं, किसी भी रूप में कोई संगति नहीं बैठती......" कह कर वह फिर एक बार अपनी ही बात पर हँसा।

गिरिजा की दिलचस्पी उस नव-परिचित युवक की बातों में बहुत बढ़ चुकी थी। उसे वह एक विचित्र और रहस्यात्मक व्यक्ति लग रहा था। पर उसके संबंध में वह अपने मन में कोई भी निश्चित और सुस्पष्ट धारणा नहीं बना पाती थी। अपने छोटे से जीवन में जिस प्रकार के लोगों से उसका परिचय हुआ था या जिस प्रकार के लोगों के संबंध में उसने पढ़ा और सुना था उनमें से किसी से भी वह उसका मेल नहीं बिठा पाती थी। वह चुपचाप, धीरे-धीरे, आधे-आधे घूँट में चाय पीती जाती थी और मोहनदास की ओर देखती हुई उसकी आँखों से, उसकी प्रत्येक भाव-भंगिमा से, प्रत्येक बात से उसके भीतरी और बाहरी व्यक्तित्व का सही-सही परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न कर रही थी।

मोहनदास ने चाय का प्याला नीचे रख कर तश्तरी से एक नमकीन काजू उठा कर अपने मुँह में डाला। उसके बाद उसने फिर अपनी बात का सूत्र पकड़ते हुए कहा: "इन्हीं सब कारणों से मेरे सगे संबंधी समय-समय पर मुझ पर मीठा व्यंग कसते रहते हैं। पिताजी कुछ कहते नहीं। वे मुझसे बहुत स्नेह करते हैं। पर मुझे पूरा विश्वास है कि मन ही मन मेरे भविष्य के संबंध में वह बहुत निराश रहते हैं। हम लोगों का व्यवसाय बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ है। मेरे एक चाचा स्पेन में जवाहरात का व्यवसाय करते हैं। मेरे बड़े भाई आस्ट्रेलिया में यही काम करते हैं। मेरे एक चचेरे भाई ने कलकत्ते में जवाहरात की दुकान खोल रखी है। सभी पूरी

लगन से, पूरी दिलचस्पी से इसी व्यवसाय में जुटे हैं। पर मेरा हाल कुछ अजीब है......"

बात चली थी फैशन की पुतलियों को ले कर और समाप्त हुई कुछ दूसरे ही विषय पर। गिरिजा को यह सोच कर आश्चर्य हो रहा था कि कुछ ही क्षणों के परिचय के बाद से ही मोहनदास ने अपना कच्चा चिट्ठा उसके आगे क्यों खोल दिया। जब मोहनदास एकदम चुप हो गया तब उसने स्वयं भी बिलकुल मौन रहना अनुचित समझ कर केवल अपना मुँह खोलने के उद्देश्य से कहा: "पर आप अपनी भावुक प्रकृति के लिये दुखी क्यों हैं!" जब वह कह चुकी तब उसे स्वयं अपने प्रश्न पर आश्चर्य हुआ।

"नहीं, मैं इसके लिये कुछ दुःखी नहीं," कुछ उदासीनता का सा भाव जताते हुए मोहनदास ने कहा। "पर इतना जरूर है कि अपने इस स्वभाव के कारण जीवन के संबंध में मेरा दृष्टिकोण कुछ विशेष ढंग का बन गया है जो मेरे सुख में बाधक है।"

"किस तरह?"

"इस तरह कि एक से एक सुन्दरी लड़कियों और खुशमिजाज युवकों का संग सुलभ होने पर भी मैं कड़ी आलोचना की दृष्टि से उन्हें देखता हूँ और उनसे किसी भी विषय पर बातचीत करने में मुझे कोई सुख नहीं मिलता, क्योंकि उनके भीतर का छिछलापन मुझे साफ नजर आने लगता है। बहुत ही कम लोग ऐसे मिलते हैं जिन्हें मैं अपने मन के अनुकूल पाता हूँ।"

"इसका अर्थ यह है कि आप मनुष्य के चरित्र का अध्ययन बड़ी गहराई से करते हैं। इस प्रकार के अध्ययन में अपने-आप भी तो एक सुख निहित है..."

मोहनदास आश्चर्य से आँखें फाड़-फाड़ कर गिरिजा की ओर देखता रह गया। उसकी समझ में नहीं आया कि गिरिजा व्यंग कर रही है या गंभीरतापूर्वक कह रही है। और फिर, इतनी छोटी-सी लड़की को यह अनुभव कैसे हुआ कि "मानव-चरित्र के अध्ययन में अपने आप भी एक सुख निहित है!" गिरिजा का शांत, संयत और गंभीर व्यक्तित्व उसे प्रारंभ ही से आकर्षक लगा था—बिना किसी भी पूर्व परिचय के। यह भी वह अन्तर्ज्ञान से जान गया था कि वह बड़ी ही बुद्धिमती और समझदार लड़की है। यही कारण था कि चाय की मेज पर साधारणतः जिस ढंग की हलकी-फुलकी बातें की जाती हैं उससे भिन्न स्तर की बातों की चर्चा उसने गिरिजा के आगे चलायी थी। स्वयं अपने ही सम्बन्ध में सही, पर जीवन के गहरे पहलू को उसने छुआ था। दूसरी कोई लड़की होती तो इस तरह की बातों से उकता जाती, यह वह जानता था। पर वह तो देख चुका था कि गिरिजा उसकी बातों में पूरी दिलचस्पी ले रही थी। इससे उसे अपने अंतर्ज्ञान की सचाई का प्रमाण मिला। किन्तु अब उसके आगे एक नया तथ्य उद्घाटित हुआ। उसने देखा कि वह अदनी सी लड़की उसके जीवन के गंभीर पहलुओं से सम्बन्धित बातों में केवल दिलचस्पी ही नहीं ले रही है; बल्कि प्रत्येक बात का विवेचन और विश्लेषण भी मन ही मन कर रही है; अन्यथा "मनुष्य के चरित्र का अध्ययन गहराई से करने" की बात की ओर उसका ध्यान ही न गया होता। और मोहनदास को लगा कि वह अदनी सी लड़की स्वयं भी मनुष्य के चरित्र का अध्ययन गहराई से करने की क्षमता रखती है। इसलिये उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। उस आश्चर्य में अवश्य ही प्रसन्नता का पुट भी मिला हुआ था। जो

भी हो, गिरिजा के मंतव्य का उत्तर देते हुए उसने कहा : "मुझे पूरा विश्वास है कि आपको स्वयं भी इस प्रकार के सुख का अनुभव होगा।"

"आपका अनुमान सही हो सकता है," अपनी सहज संकोच भरी मुसकान में शरारत का हलका सा पुट देते हुए गिरिजा ने कहा। उसे स्वयं अपनी ढिठाई पर आश्चर्य हो रहा था।

मोहनदास पर भी उसकी उस मुसकान का छुतहा प्रभाव पड़ा और उसने एक संयत किंतु तनिक रहस्य-भरी मुसकान द्वारा ही उसका उत्तर दिया। उसके बाद दोनों ने मौन भाव से शेष चाय समाप्त की। मेज पर से उठने के ठीक पूर्व मोहनदास ने सहज शालीन भाव से कहा : "आपसे मिल कर आज मुझे बहुत ही अधिक प्रसन्नता हुई, गिरिजाकुमारी जी। आप सच मानें, मैं केवल शिष्टाचार के लिए यह बात नहीं कह रहा हूँ, अपने हृदय के भीतर की बात आपको बता रहा हूँ। मैं आशा करता हूँ कि आपसे फिर जल्दी ही मिलना होगा।"

दूसरी मेजों पर से महिलाएँ एक-एक करके उठने लगी थीं। मोहनदास और गिरिजा भी धीरे से उठ खड़े हुए। मोहनदास के उठते ही फिर तीन चार लड़कियों ने उसे घेर लिया और फिर सब का एक साथ चहकना शुरू हो गया। प्रत्येक लड़की अपनी-अपनी बात कहने के लिये व्यग्र दिखायी देती थी। मोहनदास भी हँसता और किलकता हुआ भरसक प्रत्येक की बात का उत्तर देने का प्रयत्न कर रहा था। कभी वे लोग आपस में अँगरेजी में बोलते थे कभी सिंधी में। बीच-बीच में मोहनदास के साथ बातें करने वाली लड़कियाँ गिरिजा की ओर भी एक नजर फेर लेती थीं—शायद

उसके मुख के भाव से यह जानने के लिये कि वह किस हद तक मोहनदास पर अपना प्रभाव डाल चुकी है।

उन लड़कियों के बीच में मोहनदास की प्रसन्न और उमंग-भरी मुद्रा देख कर गिरिजा के मन में यह प्रश्न उठ रहा था कि अभी कुछ ही क्षण पहले मोहनदास जिस गंभीरता से अपनी भावुक, चिंतनशील प्रकृति के संबंध में बता रहा था उसका वह रूप वास्तविक था या वह उल्लासमय रूप जो इस समय उन लड़कियों के बीच में प्रकट हो रहा था ? फैशन की पुतलियों के प्रति अपनी जिस अरुचि की बात पर उसने कुछ ही समय पहले उसे विश्वास दिलाया था उसका कोई भी आभास इस समय उसके मुख के भाव से प्रकट नहीं हो रहा था। तब क्या...? वह इस तरह सोच ही रही थी कि शांता उसके पास पहुँच गयी। शांता को पा कर उसे तसल्ली मिली, नहीं तो वह फिर अपने को उस चहकते हुए समाज के बीच में अकेली महसूस करने लगी थी।

शांता ने दुष्टता-भरी मुसकान मुख पर झलकाते हुए कहा : "मोहनदास कैसा लगा तुम्हें ? कुछ जँचा कि नहीं ?"

"धत् !" कह कर गिरिजा डाँटने की मुद्रा बनाने का प्रयत्न करने पर भी बरबस ससंकोच मुस्करा पड़ी। शांता खिलखिला उठी।

"सचमुच तुम बड़ी दुष्ट हो," कहते हुए इस बार सचमुच गिरिजा की भौंहों में बल पड़ गये। पर फिर भी वह एक बार कनखियों से मोहनदास की ओर देखने से बाज न आयी।

इतने में मीना महेन्द्र के साथ आ पहुँची। "मैं आशा करती हूँ, आपको हम लोगों के बीच में कोई कष्ट नहीं हुआ होगा," मीना ने सहज भाव से अँगरेजी में कहा।

"ओः नहीं," महेन्द्र के आगे कुछ अप्रतिभ सी हो कर गिरिजा बोली। "मैंने बहुत 'इनज्वाय' किया। आपको पार्टी की सफलता पर बधाई देने के साथ ही धन्यवाद भी देती हूँ।"

मीना और महेन्द्र दोनों मुस्कराने लगे। "मैं आशा करती हूँ, आपसे फिर जल्दी ही मिलना होगा," कह कर मीना ने प्रेमपूर्वक उसकी ओर हाथ जोड़े और फिर महेन्द्र को साथ ले कर वह भीड़ में जा मिली।

"शांता, अब मैं जाती हूँ," गिरिजा ने कहा। "तुमसे कल कालेज में मिलना तो होगा ही। वहीं बातें होंगी।" कह कर वह जाने लगी।

"अरे, अभी जरा सब्र करो। जाने के पहले मोहनदास से मिल तो लो। और फिर तुम यहाँ से जाओगी कैसे? 'बस' के लिये बहुत देर तक इन्तजार करना पड़ेगा। मोहनदास तुम्हें अपनी 'कार' में पहुँचा आयेगा।"

"अरे नहीं! मुझे 'बस' में कोई कष्ट नहीं होगा। कुछ देर अगर इन्तजार भी करना पड़ेगा तो कौन हानि हो जायगी!"

"न, यह नहीं हो सकता," हठपूर्वक शांता बोली। "तुम यहीं ठहरी रहो, मैं मोहनदास को बुला लाती हूँ।" कह कर शांता सीधे मोहनदास के पास जा पहुँची।

गिरिजा ने एक बार सोचा कि चुपचाप, बिना किसी से कुछ कहे-सुने बाहर निकल जाय। पर फिर, न जाने क्या सोच कर, रह गयी।

मोहनदास तत्काल आ पहुँचा। "आप क्या जाने का इरादा कर रही हैं?" उसने सहज भाव से गिरिजा से पूछा।

"जी हाँ", गिरिजा ने कुछ दबी हुई आवाज में कहा।

"तो चलिये, मैं आपको कार में पहुँचा आता हूँ।"

"नहीं, नहीं! आप क्यों कष्ट करेंगे। मैं स्वयं चली जाऊँगी—बस से।" तनिक घबरायी हुई आवाज में गिरिजा बोली। उसकी घबराहट का कारण था। उन लोगों के ठाठदार 'फ्लैट' में फैशनेबुल समाज के बीच में चाय पी चुकने के बाद अब मोहनदास को अपने यहाँ टिन के शेडनुमाँ मकान में ले जाने की प्रवृत्ति उसे नहीं होती थी। आज पहली बार उसके मन में अपने निवास और उसके चारों ओर के पिंजरापोली वातावरण के संबंध में संकोच की भावना उत्पन्न हुई।

"वाह, यह कैसे हो सकता है, गिरिजाकुमारी जी! आपने कष्ट करके हम लोगों का आतिथ्य स्वीकार किया है, इसलिये आपको घर तक पहुँचाना हम लोगों का कर्तव्य है। चलिये, बाहर कार तैयार खड़ी है।"

गिरिजा ने देखा कि छुटकारे का कोई उपाय नहीं है। वह फाँसी की सजा पाये हुए व्यक्ति की तरह शंकित पगों से मोहनदास का अनुसरण करती हुई शांता के साथ नीचे जा पहुँची।

नीचे कार खड़ी थी। मोहनदास स्वयं ही 'ड्राइव' करने के इरादे से 'कार' की अगली सीट पर जा बैठा और पीछे की सीट का दरवाजा खोल कर उसने बड़ी शालीनता से गिरिजा से प्रार्थना की कि वह भीतर जा कर बैठ जाय। कोई उपाय न देख कर गिरिजा धीरे से कार के भीतर बैठ गयी। शांता ने बाहर से दरवाजा बंद कर दिया और मुस्कराते हुए गिरिजा की ओर हाथ जोड़ कर "नमस्ते" कहा। गिरिजा ने केवल सिर हिला कर उसके 'नमस्ते' का उत्तर दिया।

"कहाँ चलना होगा?" मोहनदास ने पूछा।

"शीव", धीरे से गिरिजा ने कहा।

जब गाड़ी चल पड़ी तब मोहनदास ने कहा : "मेरी आपसे एक प्रार्थना है गिरिजाकुमारी जी, आप हम लोगों को अपने ही घर के आदमियों की तरह समझा करें और किसी प्रकार के तकल्लुफ या संकोच की भावना को हम लोगों के बीच न आने दें।"

यह गनीमत थी कि इस समय मोहनदास की पीठ गिरिजा की ओर थी, वर्ना इस तरह की बात से वह और अधिक संकोच में पड़ जाती। इस समय उसका चित्त इस कल्पना से बहुत अशांत था कि मोहनदास को वह अपना घर कैसे दिखायेगी। उसका 'शेड'नुमां मकान देख कर वह अपने मन में क्या सोचेगा!

वह कुछ बोली नहीं। कुछ बोलने की मनःस्थिति में वह नहीं थी। पर मोहनदास मौन रहने के लिये उसे पहुँचाने नहीं आया था। यदि उसे गिरिजा से रास्ते में कुछ देर और अधिक बातें करने की सुविधा का प्रलोभन न होता तो वह अपने ड्राइवर को भेज देता, स्वयं 'ड्राइव' न करता। इसलिये वह बीच-बीच में कोई न कोई विषय छेड़ देता था—कभी राजनीति, कभी साहित्य, कभी बंबई कार्पोरेशन, कभी क्रिकेट, कभी शहराती जीवन की व्यर्थता और ग्रामीण जीवन बिताने की अपनी इच्छा, आदि विविध विषयों की चर्चा वह उठाता रहता था। गिरिजा या तो मौन भाव से सुनती चली जाती थी, या कभी 'हाँ' और कभी 'ना' कह कर चुप लगा जाती थी, या, अधिक से अधिक, कभी एक-आध वाक्य द्वारा उसकी बात का समर्थन कर देती थी। सच बात यह थी कि इस समय उसकी किसी भी बात में वह दिलचस्पी नहीं ले पाती थी। इस समय केवल एक ही चिंता से वह ग्रस्त थी : मोहनदास यदि उसका घर

देखेगा तो क्या सोचेगा। यदि उसे घर तक पहुँचाने के बाद वह उसे कुछ देर घर के भीतर चल कर बैठने को न कहे तो वह उसे कितना अशिष्ट समझेगा! और यदि वह प्रार्थना करे और मोहनदास राजी हो जाय तो वह उसे कहाँ बिठायेगी? उसका आलीशान और सुसज्जित फ्लैट देखने के बाद वह अपने शेड के भीतर एक टूटी कुर्सी या तख्त पर बैठने को कैसे कहेगी? सोच-सोच कर उसके प्राण संकट में पड़े हुए थे।

बहुत सोचने के बाद अंत में उसे एक तरकीब सूझी। उसने तय किया कि वह किंग्स सर्कल में ही उतर जायगी, शींव अभी नहीं जायगी। मोहनदास से कह देगी कि उसे एक जरूरी काम से अपनी एक सखी से मिलने जाना है। इस प्रकार की झूठ बात बनाने की आदत उसकी कभी नहीं रही। वह मन ही मन इस ग्लानि से पीडित हो रही थी कि झूठी सामाजिकता निभाने के फेर में पड़ कर उसे इस तरह की गलत बात का आश्रय लेना पड़ रहा है। पर चाहे लाख झूठ क्यों न बोलना पड़े, वह मोहनदास को अपना शेड किसी भी हालत में नहीं दिखायेगी!

मोहनदास पर उसके व्यक्तित्व का जो प्रभाव पड़ा है उसे पहले ही दिन मिटाने का कारण वह नहीं देना चाहती थी—फिर चाहे उसके लिये अपने सिद्धांत की कैसी ही हत्या क्यों न करनी पड़े। और—फिर उसने अपने मन को समझाने के लिये सोचा—वह कोई बहुत झूठ बात भी नहीं कहेगी। किंग्स सर्कल में सचमुच उसकी एक सखी रहती थी। वह एक गुजराती लड़की थी। उसका नाम तारा था। वह उसी के दर्जे में पढ़ती थी और गिरजा के घर दो-एक बार हो भी आयी थी। गिरिजा भी कई महीने पहले उसके यहाँ एक

बार गयी थी। तब से वह फिर कई बार गिरिजा को बुला चुकी थी, पर गिरिजा नहीं जा पायी! आज की संकटपूर्ण परिस्थिति का लाभ उठा कर वह तारा से मिल भी लेगी। वहाँ से शींव बहुत दूर नहीं है। 'बस' से भी जा सकती है और पैदल भी।

यह निश्चय कर चुकने के बाद उसका मन हलका हो गया। जब किंग्स सर्कल के पास 'कार' पहुँची तब गिरिजा ने कहा: "मुझे कृपया यहीं उतार दें। यहाँ एक लड़की से मेरा आवश्यक 'एप्वाइन्ट-मेंट' है।"

"अच्छी बात है", कह कर मोहनदास ने पार्क के सामने बाईं ओर एक किनारे 'कार' रोक दी। उसके स्वर में स्पष्ट ही निराशा भरी थी। संभवतः वह वास्तव में गिरिजा के घर जा कर कुछ देर तक बैठ कर, बातचीत करना चाहता था।

'कार' से उतर कर गिरिजा ने अत्यंत प्रसन्न मुद्रा से दोनों हाथ मोहनदास की ओर जोड़ते हुए एक साथ नमस्ते और धन्यवाद कहा, और उसके बाद बाईं ओर मुड़ गयी। कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद वह फिर कुछ सोच कर लौटी। जब उसने देखा कि मोहन-दास की 'कार' वहाँ पर नहीं है तब उसने निश्चय किया कि वह तारा के यहाँ न जा कर सीधे घर चली जायगी। वह 'बस स्टैंड' पर खड़ी हो गयी। प्रायः पन्द्रह मिनट तक खड़े रहने के बाद 'बस' आयी। वह उस पर बैठ गयी और प्रायः दस मिनट बाद घर पहुँच गयी।

१८

घर पहुँचते ही उसका जी खराब हो गया। अपने घर का सारा वातावरण आज उसे पहली बार अत्यंत विजातीय, नीरस और

निर्जीव लगने लगा। जिस फैशनेबुल समाज के लुभावने वातावरण के बीच में आज उसका उतना अच्छा स्वागत हुआ था उनमें से कोई भी यदि यह देख ले कि वह किस तरह के मकान में, किस ढंग के वातावरण में, किस प्रकार के लोगों के बीच रहती है तो वह मन में क्या सोचेगा, और उसके प्रति उसकी धारणा क्या हो जायेगी? छी-छी, भाग्य ने उसे कैसी हास्यास्पद और दयनीय स्थिति के बीच में ला कर पटका है!

अपने कमरे में पहुँचते ही उसने अपने हाथ की पुस्तकों को फर्श पर पटक दिया। जो एक आधी टूटी हुई कुर्सी वहाँ पर पड़ी हुई थी उस पर उसकी साड़ी उलझ गयी। उसे पाँव के एक धक्के से उसने नीचे गिरा दिया। दो-तीन मैले कपड़े नीचे फर्श पर पड़े थे, उन्हें भी ठोकर मार कर एक कोने में फेंक दिया। अलगनी पर एक तौलिया, एक अधमैली ब्लाउज और एक अधमैली साड़ी पड़ी हुई थी। देख कर गिरिजा के मन में आग सी लग गयी। उसने एक झटके से अलगनी को खींच कर तोड़ डाला। जिस छोटी सी, साधारण लकड़ी की पुरानी मेज पर वह लिखने का काम किया करती थी उस पर अधमैला कपड़ा टेबिल-क्लाथ के रूप में रखा हुआ था। गिरिजा ने खीझ के उसी दौरे में उसे एक कोने से पकड़ कर खींचा। उस पर फाउन्टेन पेन की स्याही की दावात रखी थी। वह उलट कर फर्श पर गिर पड़ी। स्याही से फर्श लथपथ हो गया, शीशा टूट कर चकनाचूर हो गया और उसके कण चारों ओर बिखर गये। आवाज सुन कर झमिया कमरे में आयी। "यह क्या हुआ? कैसे हुआ?" नीचे गिरी हुई स्याही, कमरे की अस्त-व्यस्त अवस्था और गिरिजा के मुख पर खीझ के स्पष्ट चिह्न देख कर चिंतित

हो कर झमिया ने कहा।

"खूब किया! अच्छा किया! और करूँगी! जैसे मकान में, जैसी हालत में तुम लोग रहते हो उसकी यही दशा होनी चाहिये!..." उसकी आँखों से क्रोध के आँसू फूट चले थे। वह खाट पर मुँह छिपा कर लेट गयी और फफक-फफक कर रोने लगी।

झमिया एकदम स्तब्ध रह गयी। उसकी समझ ही में न आया कि आज अचानक क्या हो गया गिरिजा को। यह वह जानती थी कि उसके स्वभाव में और बाहरी रंग-ढंग में साल-ब-साल अंतर आता चला जा रहा है। किसी हद तक उस अंतर को वह स्वाभाविक समझती थी। पर आज तो वह एक विचित्र ही परिवर्तन देख रही थी। कौन सी ऐसी दुर्घटना हो गयी, कौन ऐसा नया कारण आज आ गया, जिसके फलस्वरूप उसका मिजाज इस हद तक बिगड़ गया?

"क्या हो गया बेटी, आज तुझे?" उसके निकट जा कर, उसकी पीठ पर स्नेह से हाथ रख कर, घबरायी हुई आवाज में झमिया बोली।

गिरिजा ने बिना उसकी ओर देखे ही अपने हाथ से उसका हाथ अपनी पीठ पर से हटा दिया। वह फफकती चली जाती थी।

झमिया ने कुछ देर बाद फिर हिम्मत बाँध कर कहा: "उठ कर बैठ जा बिटिया, शांत हो जा! आखिर बात क्या है, बताती क्यों नहीं!"

गिरिजा कुछ नहीं बोली। केवल फफकती रही। झमिया कुछ क्षणों तक चुप रही। उसके बाद फिर बोली: "बिटिया, तेरे चाचा को बुलाऊँ? तू तो कुछ बोलती ही नहीं। उठ जा, मेरी रानी

बिटिया, कुछ बता तो सही !" कह कर वह स्वयं भी खाट पर बैठ गयी और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगी।

सहसा गिरिजा तमक कर उठ बैठी। "कुछ नहीं हुआ, कुछ नहीं हुआ, कुछ नहीं हुआ, समझीं ?" उसने अस्वाभाविक रूप से तीखे स्वर में चीखते हुए कहा। "तुम जाओ यहाँ से ! मुझे कुछ देर चुपचाप लेटे भी नहीं रहने दोगी क्या ? जाओ जल्दी !"

झमिया भय से काँपती हुई उठ बैठी। वह समझ गयी कि उस समय उसका वहाँ खड़े रहना खतरे से खाली नहीं है। वह धीरे से चुपचाप बाहर बगलवाले कमरे में चली गयी। उसके जाते ही गिरिजा सहसा उठ खड़ी हुई और बड़ी तेजी के साथ दरवाजे की ओर जा कर उसने एक धमाके के साथ भीतर से किवाड़ बन्द कर दिया। उसके बाद वह फिर खाट पर जा कर लेट गयी।

कुछ देर बाद झमिया महावीर को बुला लायी। जब महावीर ने देखा कि गिरिजा के कमरे का दरवाजा भीतर से बन्द है तब उसने बाहर से खटखटाने हुए स्नेह-भरे स्वर में कहा : "गिरिजा, किवाड़ खोलो बेटी !"

काफी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद भी जब दरवाजा न खुला, तब फिर महावीर ने डरते-डरते, धीरे से खटखटाते हुए, अपेक्षाकृत धीमे स्वर में कहा : "खोलो रानी बिटिया !"

पर गिरिजा टस से मस न हुई। उसकी खीझ भीतर ही भीतर बढ़ती चली जा रही थी। जो कांड वह क्रोध के असाधारण दौरे में कर चुकी थी, उसके बाद वह कुछ समय के लिए पूर्ण और एकांत शांति चाहती थी। पर उसकी 'मूर्ख' अम्माँ की उत्कंठा के कारण वह संभव नहीं हो पा रहा था, बल्कि उसके भीतर और अधिक अशांति

बढ़ रही थी। उसकी इच्छा होती थी पहले से भी अधिक उत्कट कोई कांड कर बैठे।

काफी देर तक खटखटाते रहने के बाद भी जब कोई फल नहीं हुआ तब निराश हो कर महावीर बोला : "अभी कुछ समय के लिये उसे आराम करने दो भौजी। कुछ समय बाद उसका जी अपने आप ही शांत हो जायगा।" कह कर वह अपने कमरे में चला गया।

पर झमिया दरवाजे के पास ही कान लगाये खड़ी रही। उसका मन किसी तरह भी शांत नहीं हो पाता था। रह-रह कर उसके मन में अस्पष्ट रूप से एक अमंगल आशंका उत्पन्न हो रही थी।

१३

अपने बंद कमरे में एकांत में लेटे-लेटे गिरिजा अपनी आज की मानसिक स्थिति के संबंध में विचार करने लगी। धीरे-धीरे वह अपने व्यवहार के लिये स्वयं ग्लानि और लज्जा का अनुभव करने लगी। उसने नाहक अपनी भोली अम्माँ और स्नेही चाचा का जी दुखाया। आज के पहले कभी वह इस तरह नहीं बौखलायी। आज अचानक जाने क्या हो गया उसे ! अपना सारा क्रोध उसने उन निरपराधों पर क्यों उतारा ? और उस क्रोध का कोई संगत कारण भी तो नहीं था ! आज वह एक संपन्न परिवार का ठाठदार फ्लैट और रहन-सहन का ऊँचा स्तर देख कर आयी—बस, केवल इतने ही से उसका दिमाग पलट गया ! तनिक भी संयम उसमें न रहा ! मिसेज वोरा के तत्वावधान में इतने दिनों तक शिक्षा पाने का यही फल हुआ ! धिक्कार है उसे ! सौ-सौ बार धिक्कार है ! जो लड़कियाँ मीना की तरह ठाठदार फ्लैटों में नहीं रहती है, और मोहनदास की

तरह के संपन्न युवकों को अपने गरीबखानों में बुला कर शानदार दावत नहीं दे पातीं वे सब क्या उसी की तरह अपना जीवन व्यर्थ समझने लगती हैं ? और, कौन होता है मोहनदास उसका कि उसे अपने यहाँ न बुला सकने के कारण उसके मन में ऐसी विकट प्रतिक्रिया हुई है ? इतना बड़ा शहर है, बड़े-बड़े करोड़पतियों से ले कर अत्यंत दीन-हीन भिखमंगे तक सभी यहाँ रहते हैं । उनमें एक मोहनदास भी है । इत्तफाक से उससे आज उसका परिचय हो गया और उसने दो मीठी बातें उसके साथ कर लीं, तो इससे क्या हुआ ? कौन बड़ी और असाधारण घटना उसके जीवन में घट गयी ? छी-छी, इतनी बड़ी ओछी और तुनुक-मिजाज लड़की है वह कि केवल उस एक अत्यंत तुच्छ और साधारण घटना के कारण इस कदर बिदक उठी है ! अपनी प्यारी अम्माँ, स्नेही चाचा-चाची और भोले किशन के बीच में रह कर इतने दिनों तक वह शांत भाव से सुख का जीवन बिताती आयी थी, कभी किसी प्रकार का असंतोष उसने अपने जीवन में अनुभव नहीं किया था, और आज अचानक एकदम ही उसका सिर फिर गया ? नहीं, वह आज की सारी घटना को तनिक भी महत्त्व न दे कर उसी तरह शांत भाव से नियमित जीवन बिताती चली जायगी जिस तरह इतने दिनों तक सुख और संतोष का जीवन बिताती चली आ रही थी ।

इस तरह सोच कर उसने अपने मन को शांत करना चाहा । और सचमुच उसका चित्त किसी कदर शांत हो भी गया । पर उस ऊपरी शांति के भीतर रह-रह कर प्रबल अशांति की एक सूक्ष्म किंतु प्रखर धारा उद्दाम वेग से बही चली जा रही थी जो उसके अंतर्जीवन की नाव को न जाने किस अज्ञात दिशा को बलपूर्वक ठेले और बहाये

ले जाना चाहती थी।

उस दिन से उसके ऊपरी जीवन के निर्विकार और निर्विचित्र वातावरण के नीचे अशांति और असंतोष की वह लहर भीतर की गहराई में प्रतिक्षण उथल-उथल मचाती चली गयी। बाहरी मन से वह सहज स्वाभाविक रूप से अपना सभी नित्य-नैमित्तिक काम करती चली जाती थी। कालेज भी जाती थी, घर आ कर कालेज में पढ़ाये गये पाठों और लिखाये गये नोटों का पुनरध्ययन भी करती थी, कालेज में पढ़नेवाली अपने साथ की लड़कियों से उसी तरह मिलती-जुलती और हँसी-खुशी की बातें भी करती थी। पर यह सब होने पर भी उसका मन भीतर ही भीतर एक अस्पष्ट असंतोष के कारण उखड़ा-उखड़ा रहता था। शांता से अक्सर उसकी बातें होती रहती थीं। शांता ने उसे बताया था कि मोहनदास उससे मिल कर वहुत प्रभावित हुआ है। उससे वह फिर मिलने की इच्छा रखता है, इसका सांकेतिक आभास भी शांता ने उसे दिया था। पर गिरिजा को अब स्वयं दुबारा मोहनदास के यहाँ किसी बहाने से जाने का साहस नहीं होता था और अपने यहाँ उसे निमंत्रित करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। अपनी डेयरी से संलग्न टीन के उस शेड-नुमाँ मकान में उसे निमंत्रित करना तो दूर की बात, उसे बाहर से दिखाने में भी उसे झेंप मालूम होती थी।

एक दिन शांता मोहनदास का एक निमंत्रण ले कर आयी। उसमें मोहनदास ने फिर किसी सिलसिले में अपने यहाँ दो दिन बाद दी जाने वाली चाय की दावत में उसे विशेष रूप से, व्यक्तिगत आग्रह से, निमंत्रित किया था। मन ही मन प्रसन्नता और गर्व का अनुभव करने पर भी गिरिजा का आत्म-लघुता की भावना और

संकोच से दबा हुआ मन उस निमंत्रण को स्वीकार करने के लिये तैयार न हो सका। उसने किसी दूसरे 'एप्वायंटमेंट' की झूठी बात का बहाना बना कर उसे टाल दिया। दूसरे दिन शांता मोहनदास का एक दूसरा पत्र ले कर आयी, जिसमें उसने बड़े ही अनुनय भरे शब्दों में उससे प्रार्थना की थी कि वह अवश्य ही चाय-पार्टी में सम्मिलित होने की कृपा करे, अन्यथा उसे घोर निराशा होगी। उस दुबारा किये गये व्यक्तिगत आग्रह को वह न टाल सकी। उसने जाना स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन जब वह निर्दिष्ट समय पर मोहनदास के यहाँ पहुँची तब मोहनदास पिछली बार की तरह कई लड़कियों से घिरा था। और सब लड़कियाँ उसी तरह चहक रही थीं। इस बार अंतर केवल यह था कि मोहनदास की बगल में एक और युवक बैठा था जो उससे भी अधिक स्वस्थ और सुन्दर दिखायी देता था। दोनों ओर से बीच-बीच में, बात-बात पर ठहाके चल रहे थे। मोहनदास उन फैशन की पुतलियों से बातें करने, कभी व्यंग, कभी हास्य और कभी अट्ट-हास द्वारा उनकी बातों का उत्तर अथवा प्रत्युत्तर देने में इस कदर व्यस्त था कि गिरिजा की ओर देखने का अवकाश ही उसे जैसे नहीं मिल रहा था। आज गिरिजा को उस मोहनदास का कोई पता ही नहीं लग रहा था जिसने उस दिन फैशन की पुतलियों के प्रति अपने मन के विराग की बात कही थी और जिसने शेली और कीट्स की कविताओं में निहित अनेक सूक्ष्म और गंभीर तत्त्व उसे सुनाये या समझाये थे। गिरिजा के हृदय को किसी ने जैसे बरफ की सिल से दबा दिया। मीना और शांता में से कोई भी उस समय ड्राइंग रूम में उपस्थित नहीं थी। जो लड़कियाँ वहाँ उपस्थित थीं उनमें से

अधिकांश से यद्यपि पिछली बार उसका परिचय कराया जा चुका था तथापि किसी ने शिष्टाचावश—झूठे मुँह भी—उसका स्वागत नहीं किया। सब ने उसे देख कर भी अनदेखा कर दिया। गिरिजा को क्षण-भर के लिये लगा कि निमंत्रण स्वीकार कर के उसने जो भूल की है उसके दंड-स्वरूप वह उसी क्षण फर्श के भीतर धँस जाय तो अच्छा हो। अपमान की वेदना, आत्मग्लानि और संकोच के कारण वह ठंढे पसीने से तर हो गयी। कुछ क्षणों के लिये निश्चल प्रतिमा की तरह अपने स्थान में खड़ी रही। लड़कियों के चहकने, खिल-खिलाने और युवकों के हास्य और अट्टहास का क्रम उसी प्रकार चल रहा था। गिरिजा को लग रहा था जैसे सारा विश्व उसके तीव्र उपहास के षड्यंत्र में योग दे रहा है।

सहसा उसने अपनी उस घोर दयनीय परिस्थिति से त्राण का उपाय सोच लिया। वह चुपचाप लौट जाने का निश्चय कर ही रही थी कि पीछे से मीना की आवाज आयी : "आप खड़ी क्यों हैं? बैठिये न!" गिरिजा को लगा कि उसके निश्चय के बाद अचानक मीना का आ पहुँचना उसके आज के दिन के सब से बड़े दुर्भाग्य का कारण सिद्ध हो कर रहेगा। उस अत्यन्त अशोभन और अप्रिय स्थिति से मुक्ति पाने का अब कोई उपाय नहीं रह गया। अब उसे फाँसी के तख्ते पर लटकना ही होगा, यह सोचती हुई वह धीरे से एक सोफा पर बैठ गयी।

मोहनदास ने मीना की आवाज सुन ली थी। "ओः होः, आप हैं! आइये, इधर पधारिये।"

"जी नहीं, मैं यहीं आराम से हूँ," आधी दृष्टि से उन लोगों की ओर देखते हुए गिरिजा ने कहा।

मोहनदास, जैसे अनिच्छा से, अपनी जगह से उठ कर धीरे से गिरिजा के बगल वाले कौच पर आ कर बैठ गया : "कहिये, आप की तबीअत कैसी है ?"

गिरिजा को वह प्रश्न बड़ा ही असंगत और हास्यास्पद लगा। वह कहना चाहती थी : "मेरी तबीअत कब खराब थी ?" पर ऐसा न कह कर धीरे से, तनिक संकोच भरे स्वर में बोली : "ठीक है।"

"आप कब आयीं ? मैंने आपको आते नहीं देखा।"

इस बार गिरिजा न रह सकी। धीमे, किंतु चुभते हुए, स्वर में बोली : "आपको तब अवकाश नहीं था।"

मोहनदास अट्टहास कर उठा। फिर बोला : "मेरे लिये किसी भी क्षण अवकाश की कोई कमी नहीं रहती। मेरे जीवन में केवल अवकाश ही अवकाश है, गिरिजाकुमारी जी। आपको किसी कारण से भ्रम हुआ है......"

ड्राइंग रूम में उपस्थित सभी व्यक्तियों की आँखें अब गिरिजा की ओर केन्द्रित हो गयी थीं। विशेष कर वे 'फैशन की पुतलियाँ' अब बड़े गौर से—बल्कि किंचित् क्रूर कटाक्ष से—उसकी ओर घूर रही थीं जो अभी तक मोहनदास तथा दूसरे युवक को घेरे हुए थीं।

"अपना भ्रम दूर होने पर मुझे खुशी ही होगी!" आधी दृष्टि से मोहनदास की ओर देखते हुए गिरिजा उसी धीमे स्वर में बोली।

मोहनदास फिर अट्टहास कर उठा। आज उसके अट्टहास वाला एक नया ही रूप गिरिजा देख रही थी। क्षण-भर के मौन के बाद मोहनदास बोला : "कुछ नयी मूर्तियों से आपका परिचय करा दूँ। यह है मेरा घनिष्ठ मित्र चंद्रमोहन..." कहते हुए मोहनदास

ने उस युवक की ओर इंगित किया जिसकी बगल में वह कुछ ही समय पहले तक बैठा था । "और यह हैं गिरिजाकुमारी जी—आप शांता के साथ कालेज में पढ़ती हैं ।"

चंद्रमोहन और गिरिजा दोनों ने एक दूसरे के प्रति शिष्टता से हाथ जोड़े । उसके बाद मोहनदास ने एक लड़की से उसका परिचय कराया, जो चंद्रमोहन के पास ही बैठी थी। उसका रंग गेहुँआ था, चेहरा कुछ लंबा था और आँखों में वह चश्मा लगाये थी । उसका नाम लीलावती बताया गया । बाद में मालूम हुआ कि वह चंद्रमोहन की बहन थी और यह भी पता चला कि चंद्रमोहन एक बहुत बड़े मिल मालिक का लड़का है, गुजराती है और जैन है ।

चाय के लिये प्रारंभ में मोहनदास, चंद्रमोहन, लीला और गिरिजा साथ ही एक टेबिल पर बैठे। कुछ देर बाद मोहनदास गिरिजा से क्षमा माँग कर पास ही एक दूसरी टेबिल पर चला गया जहाँ तीन सिंधी लड़कियाँ बैठी थीं । आज मोहनदास के रंग-ढंग गिरिजा को कुछ अजीब से लग रहे थे । गिरिजा ने देखा कि तीनों लड़कियों से वह बड़ी ही बेतकल्लुफी से हँस-बोल रहा था ।

चंद्रमोहन का व्यवहार बहुत ही शिष्टतापूर्ण था । लीला यद्यपि ऊपर से बड़ी शिष्टता से उसके साथ बातें कर रही थी, तथापि गिरिजा को अनुभव हो रहा था कि वह एक घमंडी लड़की है । स्पष्ट ही वह गिरिजा से अधिक हेल-मेल बढ़ाने के लिये विशेष उत्सुक नहीं जान पड़ती थी। पर चन्द्रमोहन ऐसा भाव जता रहा था जैसे उससे परिचय हो जाने से वह वास्तव में बहुत प्रसन्न हुआ हो । वह उससे घुल कर बातें करने के लिये उत्सुक दिखायी देता था । वह सम्मान

चाय पर्व समाप्त होने पर मोहनदास फिर एक बार गिरिजा से आ कर मिला और हाथ जोड़ता हुआ बोला : "अगर आज की मेहमानी में किसी प्रकार की कोई त्रुटि रह गयी हो तो उसके लिये क्षमा चाहता हूँ।"

गिरिजा केवल "नहीं, नहीं," कह कर रह गयी।

"आज आपको चन्द्रमोहन पहुँचा देगा। मैं ही पहुँचाता, पर आज एक बहुत आवश्यक काम आ पड़ा है, जिसकी कोई खबर मुझे पहले नहीं थी। इसलिये आज मुझे क्षमा कर दें।"

"मैं अपने-आप चली जाऊँगी, आप चिंता न करें," इस बार पूरी दृष्टि से मोहनदास की ओर देखते हुए गिरिजा ने कहा।

"चलिये, कहाँ चलना होगा, मैं आपको पहुँचा देता हूँ," चंद्र-मोहन ने कहा।

"नहीं, नहीं, आप कष्ट न करें।"

"इसमें कष्ट की क्या बात है। मुझे तो चलना ही है। अगर आपको मेरे साथ चलने में कोई आपत्ति हो तो दूसरी बात है!"

"नहीं, आपत्ति की क्या बात है। तब चलिये, मुझे वी० टी० के पास छोड़ दीजिये।"

चंद्रमोहन, लीला और गिरिजा, तीनों नीचे उतरे। आज न शांता से गिरिजा की कोई बात हुई थी, न मीना से। मोहनदास ने निमंत्रण दे कर उसे एक विचित्र उदासीन वातावरण में छोड़ दिया था, यह बात गिरिजा एक सेकेंड के लिये भी नहीं भूल पाती थी। फिर भी चंद्रमोहन के व्यवहार से वह प्रसन्न थी, यद्यपि एक संकोच-

जनित बेचैनी उसके मन से हट नहीं पाती थी।

मोटर में तीनों पीछे की सीट पर बैठे। पहले लीला बैठी, फिर चंद्रमोहन ने गिरिजा से बैठने को कहा और उसकी बगल में वह स्वयं बैठ गया। अपने को अनजाने और अनचाहे में चंद्रमोहन की बगल में बैठा हुआ पा कर गिरिजा बहुत संकुचित हो उठी। पर चंद्रमोहन बड़ी शालीनता से बैठा हुआ था और भरसक इस बात की कोशिश कर रहा था कि गिरिजा के और उसके बीच दो-चार अंगुल का व्यवधान अवश्य बना रहे।

रास्ते में चंद्रमोहन गिरिजा से पूछना चाहता था कि अब फिर कब उससे मिलना होगा और कहाँ। पर लीला के मौन रहने के कारण उसे साहस नहीं होता था। जब विक्टोरिया टर्मिनस की बरसाती पर कार खड़ी हुई और गिरिजा उतरने लगी तब चंद्रमोहन ने लीला से कहा : "तुमने गिरिजाकुमारी जी को किसी दिन अपने यहाँ चाय के लिये निमंत्रित नहीं किया!"

"अवश्य," अचानक अपनी 'भूल' की याद दिलाये जाने पर कुछ अकचकायी हुई सी आवाज में लीला बोली। "गिरिजा बेन, आपको अब कब अवकाश मिलेगा? हमारे यहाँ चाय पीने कब आओगी?"

"जब आप कहें," गिरिजा को स्वयं अपने उत्तर से आश्चर्य हुआ। वह निमंत्रण को टालना चाहती थी, पर मुँह से स्वीकृति निकल पड़ी।

"तो कल ही शाम को चले आइये न, चार बजे!"

"अच्छी बात है। आप लोग कहाँ रहते हैं?"

चंद्रमोहन ने कहा : "आपको मकान ढूँढने में दिक्कत पड़ेगी।

आप अपना ठिकाना बताइये, मैं वहीं 'कार' भेज दूँगा।"

गिरिजा कार से उतर कर क्षण-भर के लिये सोच में पड़ गयी। उसके बाद बोली : "मैं ठीक साढ़े तीन बजे कालेज के फाटक पर खड़ी रहूँगी।" और उसने अपने कालेज का पता बता दिया।

"अच्छी बात है। नमस्ते। तो कल पक्का रहा। हाँ, कल पूरी शाम के लिये छुट्टी ले कर आइयेगा। चाय के बाद कोई फिल्म देखने चलेंगे।"

अंतिम बात का कोई उत्तर न दे कर गिरिजा ने "नमस्ते" कह कर दोनों की ओर हाथ जोड़े। 'कार' चली गयी। गिरिजा अनमनी-सी स्टेशन के भीतर चली गयी। वहाँ शींव की गाड़ी के लिये बोर्ड पर निर्देशित समय और प्लेटफार्म नंबर देखा। गाड़ी लगी हुई थी। वह प्लेटफार्म के भीतर जा कर पहले दर्जे के डिब्बे में बैठ गयी। उसके पास महावारी 'पास' था।

घर लौटने पर उसके मन में फिर एक विचित्र ढंग की बेचैनी और उदासी समा गयी। वह अपनी वेदना को स्वयं ठीक से नहीं समझ पा रही थी, दूसरों को क्या समझाती! अपने घर का सारा वातावरण ही उसे एकदम विजातीय-सा, अरुचिकर और घिनौना लगने लगा था। अपनी अम्माँ और चाचा के प्रति भी एक उत्कट विरक्ति का भाव वह अपने भीतर महसूस करने लगी थी। उसके घर पहुँचते ही झमिया ने सहज स्नेह-भरी दृष्टि से उसका स्वागत किया। पर उसकी ओर दृष्टि पड़ते ही गिरिजा की भौंहों में बल पड़ गये। उसी क्षण उसकी ओर से दृष्टि हटा कर, बिना कुछ बोले वह अपने कमरे में चली गयी।

इतने में दरवाजे से आवाज आयी : "गुलबि...गिरिजा बहन!"

गिरिजा ने घूम कर देखा, किशन मुस्कराता और दाँत दिखाता हुआ खड़ा था। आज वह गिरिजा को एक खुशखबरी सुनाने आया था। पिछले कुछ महीनों से वह एक प्रेस में कंपोजिंग का काम सीख रहा था। आज उसके काम से खुश हो कर प्रेस के मैनेजर ने वेतन पर उसकी नियुक्ति कर दी थी। अभी कुछ दिनों तक 'एप्रेन्टिस' का वेतन (२५ रु०) देने की बात उसने कही थी, पर साथ ही यह भी वचन दिया था कि जल्दी ही उसे पूरी तनखाह दी जायगी।

पर उसे देखते ही गिरिजा मन ही मन खीझ उठी। आज पहली बार किशन के प्रति उसके मन में विरक्ति का भाव जगा। अपने घर के सारे वातावरण में केवल किशन ही ऐसा व्यक्ति रह गया था जिससे वह अभी तक नहीं उकतायी थी, और जिसके मुख पर सहज स्नेहपूर्ण भोली मुसकान देखते ही उसका उदास मन भी बरबस खिल उठता था। पर आज, न जाने क्यों, उसका उपस्थिति भी उसके मन को पीड़ा पहुँचाने लगी।

"क्या बात है ?" उसने अत्यन्त गंभीर मुद्रा से पूछा।

"कुछ नहीं, यों ही चला आया था। जानती हो गुल...गिरिजा, आज से मुझे प्रेस में नौकरी मिल गयी है !"

"क्या काम मिला है ? झाड़ू लगाने का या पानी भरने का ?"

उसके बोलने के ढंग से किशन को बड़ी चोट पहुँची। उसका मुस्कराना बन्द हो गया। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल एक पीड़ा-भरी, गम्भीर और मौन दृष्टि से गिरिजा की ओर देखता रहा।

"बेवकूफों की तरह क्या देख रहे हो ? मेरी बात का जवाब क्यों नहीं देते ? आखिर क्या काम तुम्हें दिया गया है ?" प्रायः कड़कती हुई आवाज में गिरिजा ने कहा।

"कुछ नहीं," बहुत ही धीमे और अस्पष्ट स्वर में किशन बोला।

"तब यहाँ खड़े क्या हो, जाओ!"

किशन कुछ देर तक अत्यन्त मार्मिक वेदना-भरी विकल दृष्टि गिरिजा की ओर गड़ाये रहा। उसके बाद चुपचाप लौट गया।

"कैसे अजीब और मूर्ख लोगों से पाला पड़ा है," अपने प्रति कमरे की दीवारों की सहानुभूति जगाने के उद्देश्य से अस्फुट स्वर में गिरिजा बोल उठी। उसके बाद भीतर से दरवाजा बन्द करके दीवार से लगी हुई एक छोटी सी अलमारी से एक गुजराती उपन्यास निकाल कर, बिना कपड़े बदले ही पलंग पर लेट गयी और पुस्तक खोल कर पढ़ने लगी। उसके दर्जे की एक गुजराती लड़की ने वह किताब उसे पढ़ने के लिये दी थी और कहा था कि बहुत ही 'इंटरस्टिंग' किताब है, उसे वह जरूर पढ़े। इतने दिनों तक वह चाहने पर भी उसे नहीं पढ़ पायी थी, एक-आध पृष्ठ पढ़ कर, जी न लगने के कारण पुस्तक बन्द करके रख देती थी। उपन्यास-कहानियाँ पढ़ने का चस्का उसे अभी तक नहीं लग पाया था। पर आज अचानक उसे लगा कि वह उपन्यास अवश्य पढ़ना चाहिये—अपने मन की अनोखी, अस्पष्ट और धुँधली सी बेचैनी को भुलाने का उससे अच्छा दूसरा उपाय कोई नहीं है।

और सचमुच पहले ही पेज से उसका जी उस उपन्यास में इस कदर रम गया कि वह अपने चारों ओर के वातावरण से एकदम ऊपर उठ कर अपने को एक दूसरी ही दुनिया में अनुभव करने लगी। चिर-राग-रंगमयी, निराले सुखों और अनजाने दुःखों के द्वन्द्व के कारण विचित्र घात-प्रतिघातमयी और वास्तविक जीवन में कभी अनुभव न की गयी प्रेम-घृणा, आतंक और रोमांच की अनोखी भावनाओं से भरी,

अपार रहस्यमयी दुनिया थी वह। गिरिजा अपने संपूर्ण मन और सारी आत्मा की चेतनाशक्ति को उपन्यास-लोक में निमग्न करके पृष्ठ पर पृष्ठ समाप्त करती चली गयी। प्रायः ६ बजे रात, झमिया के बार-बार खटाने, गिड़गिड़ाने और अनुनय-विनय करने के बाद उसने खीझ कर किवाड़ खोला। खाना आया। दो-एक कौर उसने किसी तरह मुँह में ठूँसे, और फिर किवाड़ बंद करके, पलंग पर लेट कर उपन्यास की दुनिया में खो गयी। सुबह चार बजे जब पूरी पुस्तक समाप्त हो गयी तब वह एक लंबी साँस भर कर, बत्ती बुझा कर सोयी। कालेज का समय होने तक सोती रही।

२१

दूसरे दिन चंद्रमोहन की कार समय पर कालेज के फाटक के बाहर आ कर खड़ी हो गयी। गिरिजा पहले ही से तैयार खड़ी थी। चंद्रमोहन के यहाँ पहुँचने पर उसने देखा कि चाय-पार्टी में कुछ नये ही लोग आये हुए थे। कई नयी-नयी महिलाएँ थीं, जिनका पोशाक-पहनावा और रंग-ढंग सिंधियों से भिन्न था। प्रायः सभी कृत्रिम कलात्मक ढंग की रंग-बिरंगी रेशमी साड़ियाँ, और उसीसे मिलते-जुलते ब्लाउज पहने थीं। उनमें से अधिकांश हाथों में और कानों में कीमती जवाहरात से जड़े, हलके किस्म के आभूषणों से सुसज्जित थीं। पौडर और क्रीम के अत्यधिक प्रयोग से सबके मुख चमक रहे थे और लिप-स्टिक की रंगीनी होठों में रक्त-विकार का सा भ्रम उत्पन्न करती थी। क्यूटेक्स से रँगे हुए बड़े-बड़े नाखून मानवीय अवचेतन मन में दबी हिंस्र भावनाओं को जैसे समूर्त रूप दे रहे थे। अधिकांश महिलाओं के मुख का रंग प्राकृतिक रूप से गोरा था। पौडर और क्रीम ने तो

केवल एक कृत्रिम सफेदी की पतली सी परत उस पर चढ़ा दी थी।

पुरुष समाज में भी सभी व्यक्ति सुन्दर, स्वच्छ और सुघर दिखायी देते थे। चंद्रमोहन ने एक-एक करके उन सबसे गिरिजा का परिचय कराया। उनमें तीन युवक चंद्रमोहन की ही तरह धनपतियों के सुपुत्र थे, जो उसी की तरह धोती-कुर्ता, कोट और नुकीली टोपियाँ पहने थे। एक पत्रकार था, जो बुशशर्ट और पैंट पहने था। एक व्यक्ति जिसका नाम हेमकुमार बताया गया, कोट-पैंट से सुसज्जित था। एक लाल और पीली धारियोंवाली टाई उसके गले के नीचे झूल रही थी। पता चला कि वह कई फिल्मों में खल नायक के रूप में अभि-नय कर चुका है और जल्दी ही एक नये फिल्म में प्रधान पात्र के रूप में काम करने वाला है। वह बड़े ही तकल्लुफ के साथ, कुछ अजीब ही लहजे में, जो कृत्रिमता के बावजूद अप्रिय नहीं लग रहा था, बात कर रहा था। यह जान कर कि वह एक अभिनेता है, गिरिजा उसे बड़े ही कौतूहल और सम्मान की दृष्टि से देखने लगी। हेम-कुमार भी उसमें दिलचस्पी ले रहा था और अँगरेजी में प्रश्न करता हुआ उसका विस्तृत परिचय प्राप्त करने के लिये उत्सुक सा जान पड़ता था। उसका अँगरेजी का उच्चारण भी अजीब था। न वह अँगरेजों का सा था न हिंदुस्तानियों का सा। गिरिजा भी सहज स्वाभाविक रूप से उसके प्रश्नों का उत्तर अँगरेजी ही में दे रही थी। संभवतः उसे अपने से अच्छी अँगरेजी बोलते देख कर हेमकुमार की दिलचस्पी उसके प्रति और अधिक बढ़ने लगी थी।

धीरे-धीरे फिल्मों की ही चर्चा चल पड़ी। "क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आपने जितनी भी फिल्में आज तक देखी हैं उनमें आपको सबसे अच्छी कौन लगी ?" हेमकुमार ने प्रश्न किया।

गिरिजा ने कुल मिला कर केवल तीन या चार फिल्में देखी थीं, इससे अधिक नहीं। और उन फिल्मों के नाम भी उसे ठीक से याद नहीं थे। वह याद करने लगी, और जिस फिल्म की याद उसे पहले आयी उसी का नाम उसने बता दिया। इत्तफाक की बात थी कि उस फिल्म में खलनायक का काम हेमकुमार ने ही किया था। गिरिजा को इस बात का कुछ भी पता नहीं था। उसके मन में केवल उस खलनायक के दुष्टतापूर्ण कार्य और बीभत्स मुद्राओं की एक धुँधली सी स्मृति वर्तमान थी। जब हेमकुमार ने पूछा कि उस विशेष फिल्म के खलनायक का अभिनय उसे कैसा लगा तब उसने बताया कि वह उसे तनिक भी अच्छा नहीं लगा और यह भी कहा कि उसकी दुष्टताएँ अक्षम्य थीं। हेमकुमार उसकी सरलता पर हँसा। उसने कहा : "माफ कीजियेगा, मैं उसके अभिनय के संबंध में पूछ रहा हूँ। उसे खलनायक का रोल प्ले करना था, इसलिये स्वभावतः वह दुष्टता का ही प्रदर्शन करने को मजबूर था। पर यह बात आप जान लीजिये, कुमारी जी, कि दुष्ट नायक का अभिनय प्रधान नायक के अभिनय की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन होता है..."

"जो भी हो, पर दुष्ट नायक को दुष्ट ही कहा जायेगा", गिरिजा ने सहज, संयत भाव से मुस्कराते हुए कहा। उसकी इस बात से सब लोग खिलखिला कर हँस पड़े। हेमकुमार खिसियाने पर भी मुस्कराने का प्रयत्न करने लगा।

"आपको शायद मालूम नहीं है, कुमारी जी," चंद्रमोहन ने कहा, "कि उस फिल्म में खलनायक का काम हेमकुमार जी ने ही किया था।"

गिरिजा ने एक बार आश्चर्य से हेमकुमार की ओर देखा। फिर

सहज भाव से मंद-मंद मुस्कराती हुई बोली : "माफ कीजियेगा, मुझे सचमुच इस बात की जानकारी नहीं थी। मुझे इस फिल्म के प्रधान नायक का भी नाम याद नहीं है। पर...माफ कीजियेगा...आप इस समय तो बहुत ही भले, सभ्य और सुशील लग रहे हैं!"

सब लोग ठठा कर हँस पड़े। हेमकुमार का चेहरा इतना सा हो कर रह गया। पर वह फिर भी मुस्कराता ही रहा। बड़ी ही शालीनता के साथ उसने कहा : "पर आप ऐसा क्यों समझती हैं कि खलनायक का रोल प्ले करने वाला व्यक्ति अपने जीवन में भी खल ही होगा?"

"यह आश्चर्य की ही बात है कि जो व्यक्ति ऐसी सचाई से, ऐसे यथार्थ रूप में खल का अभिनय कर सकता हो, उसके भीतर खलत्व का लेश भी न हो! शठता का सच्चा प्रदर्शन तभी हो सकता है जब उसकी अनुभूति कम से कम बीज-रूप में अभिनेता के भीतर वर्तमान हो।" गिरिजा को आज स्वयं अपनी ढिठाई पर आश्चर्य हो रहा था।

"बीज-रूप में जिसके भीतर शठता वर्तमान न हो ऐसे व्यक्ति के पैरों की धोवन मैं अपने सिर पर चढ़ाना चाहूँगा, कुमारी जी। मनुष्य-शरीर धारण करने पर यह बीज रक्त के साथ ही जैसे संचरण करने लगता है। पर मैं आपके इस आरोप को न अस्वीकार करता हूँ, न उसकी सफाई देना ही आवश्यक समझता हूँ।"

हेमकुमार के मुस्कराते हुए चेहरे पर तनिक गंभीरता छा गयी थी।

"लीजिये, आप तो नाराज हो गये!" गिरिजा ने कहा, और कहते उसने देखा, मोहनदास एक सिंधी लड़की के साथ, जिसे उसने

उस दिन मोहनदास ही के यहाँ चाय-पार्टी में देखा था, उसके सामने आ कर खड़ा हो गया था।

"कौन हो गये नाराज ?" मोहनदास ने गिरिजा की ही बगल में बैठते हुए कहा। आज वह किसी कारण से अत्यंत प्रसन्न दिखायी देता था। वह लड़की भी धीरे से मोहनदास की बगल में बैठ गयी थी। लड़की का नाम कमला था, गिरिजा को याद था। उतनी परिचित लड़कियों में से केवल कमला को ही उसने आज अपने साथ के लिये क्यों चुना, यह प्रश्न तत्काल गिरिजा के मन में उठा। उसे याद आया कि उस दिन वही लड़की सब से अधिक चहक रही थी। वह उसकी कोई रिश्तेदार नहीं थी, यह भी गिरिजा जानती थी। आज पहली बार उसके मन में किसी लड़की के प्रति ईर्ष्या का भाव उत्पन्न हुआ। मोहनदास की झुठाई पर उसे आश्चर्य हो रहा था। उस दिन उसने एक दार्शनिक की तरह 'फैशन की पुतलियों' के स्वभाव का विश्लेषण करते हुए उनके प्रति अपनी विरक्ति का भाव जताया था। पर आज वह उस लड़की को पा कर ऐसा प्रसन्न दिखायी देता था जैसे उसे जन्म-जन्म से आकांक्षित निधि लंबी तपस्या के बाद प्राप्त हो गयी हो। मानवीय स्वभाव की चंचलता, अनैश्चित्य और अविश्वसनीयता का यह पहला उदाहरण उसे मिला था, जिससे उसे एक गहरा धक्का पहुँचा। पहले दिन की मुलाकात से उसने सोचा था कि मोहनदास किसी कारण से उसके प्रति प्रबल रूप से आकर्षित हुआ है और उसका आकर्षित होना उसे, न जाने क्यों, अच्छा लगा था। वह स्वयं उसके प्रति किस हद तक आकर्षित हुई थी, यह वह नहीं जानती थी, पर उसके साथ में उसने सुख का ही अनुभव किया था। किंतु बड़े आग्रह से अपने यहाँ निमंत्रित करने

पर भी पिछले दिन उसने जो आपेक्षिक उदासीनता उसके प्रति दिखायी थी और कमला का साथ एक क्षण के लिये भी नहीं छोड़ा था, इसका कोई सुस्पष्ट कारण वह समझ नहीं पायी थी। आज फिर उसी कमला के साथ चंद्रमोहन की चाय-पार्टी में उसे सम्मिलित होते देख कर वह अपने भीतर के किसी एक अज्ञात स्थान में एक अस्पष्ट पीड़ा का-सा अनुभव करने लगी थी। "यह अच्छा ही हुआ कि एक ही दिन में इस व्यक्ति का सच्चा रूप मेरे सामने आ गया, नहीं तो उसके साथ बहुत दूर तक आगे बढ़ने के बाद एक दिन अचानक वास्तविकता का पता लगने पर मेरे अनुभूतिशील हृदय को न जाने कैसी गहरी ठेस पहुँचती", गिरिजा ने मन ही मन कहा : "और यह खलनायक हेमकुमार ? यह कैसा आदमी है ?" उसने अपने-आपसे प्रश्न किया। "आदमी तो यह कुछ बुरा नहीं मालूम होता",— उसके मन ही ने उत्तर दिया—"मेरे तीखे व्यंगों के बाद भी वह बराबर मुस्कराता रहा है और बहुत कट जाने पर भी बड़ी शालीनता और गंभीरता से ही पेश आया है।"

मोहनदास के प्रश्न को टालने के उद्देश्य से गिरिजा ने बिना उसकी ओर देखे ही रुखाई के साथ, धीमे स्वर में कहा : "कोई नहीं !..."

"पर नाराजगी की बात चल तो अवश्य ही रही थी", मोहनदास बोला।

"हाँ, पर जिसके साथ चल रही उसी से उसका संबंध था, दूसरे से नहीं। इसलिये आपके चिंतित होने का कोई कारण नहीं है।" फिर उसी रुखाई से, और मोहनदास की ओर बिना देखे गिरिजा ने कहा।

"पर मैं तो देख रहा हूँ कि आपकी सारी नाराजगी मेरे ऊपर है !"

गिरिजा रुखाई में भी मुस्करा उठी। पर उसने फिर भी मोहनदास की ओर नहीं देखा। इतने में चंद्रमोहन ने सब लोगों से चाय के लिये दूसरे कमरे में चलने के लिये अनुरोध किया। सब लोग उठे। दूसरे कमरे में जा कर चंद्रमोहन, लीला, हेमकुमार और गिरिजा एक ही टेबिल पर बैठे। चाय के दौरान में कोई विशेष बात नहीं हुई। चंद्रमोहन ने गिरिजा से यह प्रस्ताव किया कि चाय पीने के बाद कोई फिल्म देखने चला जाय। गिरिजा ने मौन सम्मति दे दी। चंद्रमोहन ने हेमकुमार से पूछा कि कौन फिल्म देखा जाय। हेमकुमार ने किसी एक विशेष फिल्म के लिये सिफारिश की। लीला ने उसका समर्थन किया और कहा कि यद्यपि वह उस फिल्म को एक बार देख चुकी है, तथापि वह उसे दुबारा देखना भी पसंद करेगी।

गिरिजा बीच-बीच में चाय पीती हुई मोहनदास और कमला की ओर देख लेती थी। दो और व्यक्ति—एक युवक और एक युवती—उन लोगों के साथ बैठे हुए थे। मोहनदास बहुत प्रसन्न दिखाई देता था। बात-बात में अट्टहास कर उठता। कमला भी बीच-बीच में खिलखिला उठती थी। देख कर गिरिजा को एक हलकी सी चुभन का-सा अनुभव हो रहा था। वह मन-ही-मन अपने को सांत्वना देती हुई कह रही थी कि यह अच्छा ही हुआ वह व्यक्ति दो ही दिन में पहचान में आ गया—नहीं तो उसकी मीठी-मीठी, धोखे से भरी बातों के बहकावे में आ कर वह न जाने किस अपरिचित स्थान और स्थिति में पहुँच कर भटकती फिरती होती। पर फिर भी मन के किसी रहस्य-मय कोने से रह-रह कर उठनेवाली टीस शांत नहीं होती थी।

चाय समाप्त होने पर जब सब अभ्यागत विदा हो गये तब चंद्र-

हन, हेमकुमार, लीला और गिरिजा फिल्म देखने के लिये निकल
ड़े।

खेल आरंभ होने के पहले चित्रपट पर उन व्यक्तियों की लंबी सूची
खायी गयी जिन्होंने उसमें काम किया था। गिरिजा ने उस सूची
कोई दिलचस्पी नहीं ली, न उसे पूरी तरह से पढ़ा। पर खेल
ारंभ होने के बाद जब उसने दूसरे ही दृश्य में हेमकुमार की सी
क्ल वाले एक हँसोड़ किंतु गुंडा किस्म के आदमी को चित्रपट पर
खा तब उसके आश्चर्य और विनोद का ठिकाना न रहा। "वह क्या
ाप ही हैं ?" बगल में बैठे हुए हेमकुमार से उसने धीरे से पूछा।

"जी हाँ, यही बंदा है, आपकी दुआ से।" आधे व्यंग और
ाधे परिहास के स्वर में हेमकुमार बोला।

"मैं अब समझ गयी कि इस विशेष फिल्म की प्रशंसा आपने
यों की !" गिरिजा बोली। चंद्रमोहन उसकी बात सुन कर दबी
आवाज में हँस पड़ा।

हेमकुमार पट पर एक विचित्र ही ढंग का विदूषक बना हुआ था
और उसका अभिनय देख कर सभी दर्शक खिलखिला कर हँस पड़ते
थे। गिरिजा को हँसी नहीं आ रही थी, पर वह मन-ही-मन अच्छे
विनोद का अनुभव कर रही थी। साथ ही उसके मन में यह कुतूहल,
जग रहा था कि उसकी बगल में बैठे हुए जिस व्यक्ति से उसका एक
ही दिन में घनिष्ठ परिचय हो गया है और जो चित्रपट में एक
विचित्र प्रकार के विदूषक का अभिमय कर के दर्शकों के इतने अधिक
विनोद का कारण बना हुआ है वह वास्तव में किस प्रकृति का आदमी
है ? बाहर से देखने से तो उसके चेहरे पर विदूषकत्व का कोई भी
चिह्न नहीं दिखायी देता। चाय के अवसर पर वह बहुत ही बुद्धिमान

चिंतनशील और गंभीर प्रकृति का व्यक्ति मालूम होता था। जो भी हो, यह अनुभूति कि उपस्थित चित्रपट में अभिनय करने वाला एक व्यक्ति उसी की बगल में बैठा है, उसके मन को गुदगुदा रही थी।

फिल्म-प्रदर्शन समाप्त होने पर गिरिजा ने उस दिन भी चंद्रमोहन के पूछने पर यही आग्रह किया कि उसे वी० टी० पहुँचा दिया जाय।

विक्टोरिया टार्मेनस पहुँच कर जब वह उतरने लगी तब चंद्र-मोहन ने पूछा कि अब फिर कब और कहाँ उससे मिलना होगा। गिरिजा में आज काफी आत्म-विश्वास जग चुका था। उसने सहज भाव से मुस्कराते हुए कहा : "अब तो मैं आपका मकान देख ही चुकी हूँ। जब चाहूँ तब बिना बुलाये ही आ सकती हूँ।" कह कर पता नहीं क्यों, उसने हेमकुमार की ओर एक विशेष दृष्टि से देखा।

"तब जल्दी ही आने की कोशिश कीजियेगा", चंद्रमोहन और लीला दोनों ने प्रायः साथ ही कहा।

"मुझसे आज के व्यवहार में जो गलती हुई हो उसके लिये क्षमा चाहता हूँ", हेमकुमार बोला।

"वाह, आपसे भला कोई गलती कैसे होगी! आपके कारण तो आज हर तरह से अच्छा मनोविनोद रहा।" कह कर वह खुल कर मुस्करायी। "अच्छा, नमस्कार!" उसने बारी-बारी से तीनों की ओर देखते हुए हाथ जोड़े। उसके बाद सीधे स्टेशन के भीतर चली गयी। बोर्ड पर देखने से पता चला कि शींव की गाड़ी २ नंबर वाले प्लेटफार्म पर खड़ी थी। वहीं जा कर एक डिब्बे में बैठ गयी।

२२

परीक्षा निकट आ गयी थी। एक दिन सहसा गिरिजा का ध्यान
इस बात की ओर गया कि पिछले कुछ दिनों से उसने कोर्स की पढ़ाई
की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया है और उपन्यासों और कहानियों
को पढ़ने में वह व्यस्त रही है। गफलत की नींद से जग कर वह
फिर पूरी लगन से कोर्स की पढ़ाई में जुट गयी। बी० ए० की परीक्षा
में प्रथम आने की आकांक्षा उसके मन में बहुत दिनों से थी, जो
बीच में कुछ समय के लिये दब गयी थी। अब फिर वही आकांक्षा
उसके मन में पूरे जोरों से जग उठी। फल यह हुआ कि उसे काफी
हद तक मनोनुकूल सफलता मिली। परीक्षा में सबसे पहला स्थान
पाने से वह केवल कुछ ही नंबरों से रह गयी।

उसने बहुत दिनों से निश्चय कर रखा था कि बी० ए० की
परीक्षा समाप्त होने पर वह किसी होस्टल में रहेगी और वहीं रह कर
एम० ए० पढ़ेगी। एक दिन उसने झमिया को अपने निश्चय की
सूचना दे दी। झमिया इस प्रस्ताव पर किसी तरह राजी न हुई। वह
किसी भी हालत में लड़की को इस हद तक स्वतंत्र और एकाकी
जीवन बिताने की छूट नहीं देना चाहती थी। इसके अतिरिक्त उससे
बिछुड़ने के कष्ट की कल्पना भी उसके लिये असहनीय सिद्ध हो रही
थी। गिरिजा ने बहुत समझाया कि घर पर रहने से उसकी पढ़ाई
नहीं हो सकती। बी० ए० उसने किसी तरह पास कर लिया है, पर
एम० ए० की पढ़ाई बहुत कठिन होती है, जो उस टीन के शेड में,
मयरी के वातावरण में, घरवालों के बीच में रह कर नहीं हो सकती।
और फिर, उसने बताया, वह सप्ताह में एक या दो बार अवश्य ही

घर आती रहेगी और उन लोगों से मिलती रहेगी। जब यह बात भी झमिया को नहीं जँची तब उसने साफ-साफ बताया कि वह उस गंदे मकान में अपने साथ की लड़कियों को नहीं बुला सकती। वह उन लोगों के यहाँ बड़े-बड़े ठाठदार मकानों में, सुन्दर, सुसज्जित फ्लैटों में जाती है, उन्हें गंदे शेड में, गायों और भैंसों के गंदे रहन-सहन के कारण आनेवाली दुर्गंध के बीच में, बुला कर अपनी हँसी नहीं कराना चाहती। उसने यह भी समझा दिया कि उस वातावरण से वह उकता गयी है, और अगर अब उसे वहाँ जबर्दस्ती बाँधे रखने का प्रयत्न किया जायगा तो वह एक दिन भाग कर जहाँ मन आयेगा चली जायगी।

उसके इस दृढ़ निश्चय से परिचित हो कर झमिया घबरा उठी। उसका जैसे दिल ही बैठ गया। "यह तू क्या कह रही है, बिटिया," वह भरे हुए गले से बोली। "तू इस कदर निर्मोही बन गयी है! अपनी अम्माँ और चाचा के लिये तनिक भी माया-ममता तेरे मन में नहीं रह गयी! मेरी बात जाने दे। मैं तो जनम की अभागी हूँ। पर तेरे चाचा ने इतने प्यार से तुझे पाला-पोसा, उन्हीं की बदौलत तू इतना पढ़-लिख पायी, और अब आज उन्हीं को ठुकरा कर तू चले जाने की धमकी देती है! यह बड़ा अन्याय है, बिटिया! ऐसे अनर्थ की बात तुझे सोचनी भी नहीं चाहिये!"

"क्यों नहीं सोचनी चाहिए! किसी ने अगर मुझे पढ़ाया-लिखाया तो मुझ पर क्या अहसान किया! न पढ़ाते। मुझसे कंडे पथवाते, बर्तन मँजवाते, चूल्हे-चौके का काम करवाते तो अच्छा था। तब कम से कम इस बात पर मुझे लोगों की हँसी तो न सुननी पड़ती कि मुझे गायों और भैंसों के साथ, उन्हीं की तरह एक शेड

रहना पड़ता है !"

झमिया को गिरिजा के वे वचन बड़े ही कठोर, बड़े ही मार्मिक
प से तीखे—विष-बुझे बाणों की तरह—लगे। अपनी लड़की—
पनी गुलबिया—के मुँह से अपने—और विशेष कर देवर के—
ये इस तरह की अकृतज्ञता-भरी बात सुनने की आशा उसने कभी
हीं की थी। वह सोचने लगी कि उसके देवर ने उस कृतघ्न लड़की
प्रति निःस्वार्थ ममता के कारण उसे राजकुमारी की तरह पाला,
सकी किसी भी इच्छा की पूर्ति में कभी कोई रुकावट नहीं आने दी,
से पढ़ा-लिखा कर इस काबिल बनाया कि आज वह बड़ी-बड़ी
ढ़ी-लिखी और फैशनवाली लड़कियों के बीच में आसानी से हिल-
ल सकती है और धड़ल्ले से बातें कर सकती है, और आज वह
र्लज्जों की तरह कहती है कि उस पर किसी का कोई अहसान नहीं
और उन लोगों के साथ रहने में अपनी बेइज्जती समझने लगी
! सचमुच इससे तो यही अच्छा होता कि उसने कुछ भी न पढ़ा
ता, वह वही गुलबिया की गुलबिया ही रहती जिसे वह समय
मय डाँटती, फटकारती, मारती और पीटती थी।

लड़की की अंतिम बात के जवाब में वह कुछ न बोली। चुप-
ाप, दुखी मन से अपने कमरे में चली गयी और एक अजीब सी
कान और सिर-दर्द का अनुभव करती हुई सी लेट गयी। महावीर
हीं बाहर गया हुआ था। कुछ देर बाद मालती अपने दो बच्चों
साथ उसके कमरे में पहुँच गयी। मालती का बड़ा बच्चा अब
ः साल का हो गया था। उसका नाम सरजू था। उससे छोटी
क लड़की थी जिसका नाम मालती ने ललिता रखा था। दोनों
पनी अम्माँ से भी अधिक झमिया से हिलगे हुए थे। वे महावीर की

ही तरह उसे 'भौजी' कह कर पुकारते थे। झमिया ही उन्हें नहलाती, कपड़े पहनाती, खाना खिलाती, बाहर-भीतर आते-जाते उनकी देख-रेख करती, उन्हें अपने ही साथ सुलाती और देहाती कहानियाँ सुनाती। मालती के पास कुछ ही देर रहने पर वे उकता जाते और "भौजी के पास चलो, भौजी के पास चलो!" कहते हुए मालती को परेशान कर देते। बच्चों के प्रति झमिया की निःस्वार्थ स्नेह-भावना देख कर उसके प्रति मालती के मन की विद्वेष-ज्वाला भी बहुत-कुछ बुझ चुकी थी। झमिया जिस आंतरिक स्नेह से, लगन से और कुशलता से बच्चों की देख-रेख करती थी उस हद तक वह स्वयं भी न कर पाती, यह बात मालती जानती थी। इधर वह कुछ आलसी भी हो गयी थी, और झमिया के कारण बच्चों के संबंध में निश्चिन्त हो कर, छोटी-छोटी बातों के लिये हठ करने, रोने-चिल्लाने, और उपद्रव मचाने वाले बच्चों द्वारा पैदा होने वाली परेशानियों से मुक्त हो कर, वह रात में भी आराम से सोती थीं और दोपहर में भी। इधर गिरिजा द्वारा उपेक्षित और स्नेह-वंचित झमिया को बचों का बड़ा सहारा मिल गया था। उसके लिये जैसे जीने का एकमात्र आधार, एकमात्र उद्देश्य ही वे बच्चे हो गये थे। आज दोनों बच्चे कुछ देर के लिये अपनी अम्माँ के पास गये थे। पर वहाँ वे ऐसी शरारत करने लगे, इस तरह आपस में लड़ने-झगड़ने, चीखने-चिल्लाने और उपद्रव मचाने लगे कि मालती तंग आ कर फिर उन्हें झमिया के पास ले आयी। मालती कुछ समय से एक अजीब ढंग के स्नायविक रोग से ग्रस्त हो उठी थी। बचों के चीखने-चिल्लाने से उसके सिर की एक-एक नस जैसे झनझना उठती थी। इसलिये वह अधिक समय तक बचों को अपने पास रख नहीं पाती थी।

दोनों बच्चे आते ही झमिया की खटिया पर चढ़ गये और दोनों ओर से उसे घेर कर "भौजी, हम भी सोयेंगे तुम्हारे साथ," कहते हुए उछल-कूद मचाने लगे। झमिया स्नेह से दोनों की पीठ पर हाथ फेर कर, पुचकार कर शांत करने लगी।

"एक कहानी सुनाओ, भौजी," सरजू ने आग्रह किया।

"अभी मेरा जी ठीक नहीं है, बेटा, अभी चुपचाप लेटे रहो। रात को कहानी सुनाऊँगी।"

"नहीं भौजी, अभी सुनाओ न!" मचलता हुआ सरजू बोला।

"सुनाओ भौजी," ललिता बोली।

"तुम लोग नहीं मानोगे! अच्छा तब सुनो। एक राजा था। उसकी एक रानी थी। उन दोनों के दो बच्चे थे—एक लड़का और एक लड़की। दोनों बड़े नटखट थे। कभी आपस में झगड़ते। कभी अपनी अम्माँ को परेशान करते, कभी अपने बाबू को। उन दोनों की एक ताई थी, जिसे वे भौजी कहते..."

"धत्! यह भी कोई कहानी है!" समझदार सरजू बोला। "यह तो हमारी ही कहानी है......"

"भौजी, आप लेटी क्यों हो? तबीअत क्या कुछ खराब है?" महावीर ने आ कर पूछा।

झमिया धीरे से उठ बैठी। "कुछ नहीं, यों ही लेट गयी थी", उसने धीमी आवाज में कहा : "गिरिजा से मिले थे?"

"नहीं तो, क्या बात है?" चिंतित हो कर महावीर ने पूछा।

"कुछ नहीं। कहती है कि अब से मैं होस्टल ही में रहूँगी। यहाँ शायद पढ़ाई ठीक से नहीं हो पाती।"

"पढ़ाई ठीक से नहीं होती! उसे अलग कमरा दे रखा है, जहाँ

उसकी इजाजत के बिना न कोई बच्चा जाता है न कोई और। फिर भी उसे शिकायत है, यह तो बड़ी अजीब बात है। किस होस्टल में जाना चाहती है? किसी भी होस्टल में जाय, उसे वहाँ क्या कभी घर की सी सुविधा मिल सकेगी? यह लड़कपन तो अच्छा नहीं है, भौजी। कहाँ है वह?"

"अपने कमरे में है। उसे जा कर समझा आओ। मैं तो समझा कर हार मान चुकी हूँ। मेरी बात वह किसी तरह भी नहीं मानना चाहती।"

"अभी जा कर समझाता हूँ" तनिक उत्तेजित हो कर महावीर बोला। "इस तरह का लड़कपन किसी भी हालत में अच्छा नहीं। पर..." सहसा उसका जोश कपूर की तरह हवा हो गया।

"क्या बात है? क्या सोच रहे हो?" झमिया ने पूछा।

"कुछ नहीं", तर्जनी से सिर खुजलाते हुए महावीर ने कहा। "मैं सोचता हूँ, भौजी, कि इस मामले में तुम्हारा ही समझाना ठीक रहेगा। तुम औरत हो, समझाना जानती हो। और फिर, वह मेरी किसी भी बात का कोई जवाब नहीं देगी, यह मैं जानता हूँ।"

"मैं समझा कर हार मान चुकी हूँ, देवर, अब तुम्हीं जा कर समझाओ।"

"पर वह कहती क्या है?" बात को फिर से ठीक से समझने के उद्देश्य से महावीर ने पूछा।

झमिया गिरिजा की बातों से जितना कुछ समझ पायी थी उसे महावीर को बताने लगी। अपने साथ की फैशनवाली लड़कियों को गायों और भैंसों के रहने योग्य 'शेड' में न बुला सकने की जो बात गिरिजा ने कही, वह भी उसने बता दिया।

महावीर सुनता रहा और बाँए हाथ की उँगलियों के पोरों को गिनता रहा। जब सब-कुछ सुन चुका तक एक लंबी साँस ले कर धीरे से बोला: "पर बात वह कुछ गलत भी नहीं कहती है, भौजी। बड़े-बड़े घरों की लड़कियों से उसकी जान-पहचान है। उन सबके यहाँ जा कर देखती होगी कि कैसे ठाठ से वे रहती हैं। सचमुच, हम लोगों के टीन के शेड में उन्हें कैसे बुलाया जा सकता है! अब गिरिजा हमारी ऐसी-वैसी लड़की थोड़े ही रह गयी है। अब तो वह बी० ए० पास हो गयी है। सब लोगों के बीच में उसे इज्जत से रहना होता है। बी० ए० पास करना कोई खेल नहीं है, भौजी। एक गुजराती सेठ हैं, जिसके यहाँ बरसों से हमारे यहाँ का दूध जाता हैं। उनका लड़का दो साल से बी० ए० में फेल होता चला जा रहा है। और एम० ए० की पढ़ाई! वह क्या ऐसी-वैसी पढ़ाई होती है? न जाने कितनी बड़ी-बड़ी पोथियाँ रटनी पड़ती हैं। हमारी गिरिजा का दिमाग बहुत तेज है, इसलिये वह समझ लेती है। दूसरी कोई लड़की उसकी जगह होती तो कुछ भी न समझ पाती, और इस टीन के शेड वाले कमरे में तो एक पंक्ति भी न पढ़ पाती..."

"तब क्या तुम भी यही चाहते हो कि गिरिजा होस्टल में ही रहे!" हताश भाव से झमिया ने कहा।

"हर्ज क्या है, भौजी? जब उसकी इच्छा है तो साल दो साल के लिये उसे होस्टल में ही रहने दो। बीच-बीच में वह हम लोगों से मिलती रहेगी। हम भी कभी-कभी उससे मिल लिया करेंगे..."

झमिया कुछ क्षणों तक सूनी दृष्टि से महावीर की ओर देखती रही। फिर बोली: "पर मैं कहती हूँ कि अब आगे उसका पढ़ना क्या जरूरी है? काफी तो पढ़ लिया है।"

"अब उसकी इच्छा पूरी होने दो, भौजी। जब इतना उसने अपने ही बूते, बिना घर में किसी मास्टर के सिखाये पढ़ाये, पढ़ लिया है, तब एक दर्जा और पढ़ लेने दो। उसके बाद अपने-आप ही पढ़ाई खतम हो जायगी। एम० ए० के आगे फिर कुछ नहीं होता, इतना मैं जानता हूँ।"

झमिया ने एक लंबी साँस ली। "जैसी तुम्हारी मर्जी हो, मैं इस मामले में अब कुछ न बोलूँगी।" कह कर वह अनमने भाव से ललिता को गोद में ले कर, मुँह फेर कर बैठ गयी।

महावीर झमिया की माँ के हृदय की वेदना को समझ रहा था। पर यह सोच कर कि भौजी का धैर्य अटूट है और वह जल्दी ही शांत हो जायगी, वह उसे बिना अधिक सांत्वना दिये अपने कमरे में चला गया।

२३

गिरिजा पहले ही से जानती थी कि उसकी इच्छा-शक्ति के आगे उसके घर वालों को—निरीह अम्माँ और भोले चाचा को—हार माननी ही पड़ेगी। इसलिये महावीर ने जब होस्टल के लिये अपनी स्वीकृति दे दी तब उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उसने बड़ी कोशिशों के बाद लड़कियों के एक होस्टल में अपने लिये एक कमरा प्राप्त कर कर लिया। आवश्यक किंतु अच्छा सामान खरीद कर उसने अपने कमरे को अच्छी तरह सजा लिया। अब वह अपने को स्वतंत्र अनुभव करने लगी। अब वह निस्संकोच अपनी परिचित लड़कियों और महिलाओं को अपने यहाँ बुलाती, चाय पिलाती और हँसी-खुशी की बातें करती। शांता, मीना, लीला आदि सभी उसके यहाँ

आतीं और वह भी उनके यहाँ अक्सर जाती। मोहनदास, चंद्रमोहन, हेमकुमार से तथा उनके साथ के दूसरे युवकों से भी उसका मिलना अक्सर होता रहता। अब वह नियमित रूप से सिनेमा जाती—कभी होस्टल की लड़कियों के साथ और कभी परिचित युवकों के साथ। होस्टल की सुपरिंटेंडेंट को उसने अपनी मीठी-मीठी बातों और अपनी विद्या और बुद्धि से वश में कर लिया था, इसलिये जब कभी वह कुछ देर से होस्टल में लौटती तो उस पर कोई डाँट न पड़ती। झमिया को उसने वचन दिया था कि सप्ताह में एक बार घर आ कर वह उन लोगों से मिलती रहेगी। पर होस्टल में भरती होने और बंबई के फैशनेबुल समाज में मुक्त रूप से विचरने की सुविधा मिल जाने के बाद वह घरवालों को इस तरह भूल गयी जैसे उनसे कभी कोई संवंध ही उसका न रहा हो। पूर्व जन्म की सी स्मृति का-सा जो एकदम अव्यक्त और अस्पष्ट आभास अवचेतन मन में छिपा रहता है, कुछ वैसी ही धुँधली सी स्मृति अपने घरवालों के संबंध में उसकी अन्तश्चेतना में दवी सी रहने लगी—इससे अधिक नहीं। टीन के शेड की चहारदीवारी इतने दिनों तक जैसे किसी इस्पाती दीवारोंवाले विराट जेल की तरह उसे लगती रही और उसके भीतर का अपना कमरा महा-कालकोठरी के समान लगता रहा। उस जेल से, उस कालकोठरी से छुटकारा पा कर अब वह फैशन की रंग-बिरंगी दुनिया में जैसे स्वर्ग के अपार आनंदमय वातावरण में पिंजरे-मुक्त पंछी की तरह उल्लास-भरी उड़ान भर रही थी। उसे सब-कुछ अच्छा, सव-कुछ नया, सुन्दर और मोहक लग रहा था। ऐसा अनुभव होता था जैसे बाहर की उस रंगीनी और नयेपन का न कहीं ओर है न छोर; और अंतर के उस उल्लास का न कहीं

आदि है न अंत। नव-यौवन की जो तरंगें उसके भीतर इतने दिनों तक अनेकों कुंठाओं से बँधी हुई थीं और बीच-बीच में रुक-रुक कर ससंकोच बाहर निकलने की इच्छा रखते हुए भी किसी भीतरी खिंचाव से बार-बार पीछे को लौट पड़ती थीं, वे अब सौ-सौ उच्छ्वासों से, निर्मुक्त और निर्द्वन्द्व भाव से इठलाती, बल खाती हुई जैसे सारे अग-जग को अपनी बाढ़ से छा देने के लिये पागलों की तरह उमड़-उमड़ उठने लगीं।

पर वह प्रारंभिक उल्लास, उत्साह और उच्छ्वास अधिक दिनों तक कायम न रहा। उस कृत्रिम जीवन की ऊपरी रंगीनी के भीतर जो एकरसता, जो निर्विचित्रता थी वह धीरे-धीरे बाहर के रंगीन पर्दों के एक-एक करके हटते चले जाने से सुस्पष्ट रूप में गिरिजा के आगे खुलने लगी। मोहनदास, चंद्रमोहन और उन्हीं की तरह के उनके साथियों के यहाँ की चाय-पार्टियों में नित्य एक ही तरह का—ऊपर से आकर्षक और भीतर से पोला—समाज जुटता था, एक ही तरह की बातें होती थीं, एक ही तरह का छिछलापन सारे वातावरण में शीशे के बक्सों में भरे पानी के भीतर बंद की गई छोटी-छोटी सुन्दर रंगीन मछलियों की दुनिया का आभास देता था। उस छिछले पानी में जिस प्रकार वे अति-लघु मछलियाँ अगाध सागर में तैरने का सा अनुभव करती होंगी, वही हाल उस कृत्रिम समाज के कृत्रिम जगत् में विचरण करने वाले स्त्री-पुरुषों का था। गिरिजा का महत्त्वाकांक्षी मन कुछ ही महीनों बाद उस छिछलेपन की तह पा जाने से ऊबने और छटपटाने लगा। इसके अलावा उसने देखा कि कोई भी स्त्री या पुरुष उस समाज में ऐसा नहीं था जो उसमें कोई खास—दूसरों की अपेक्षा अधिक दिलचस्पी लेता हो। सभी

पुतलियाँ समान थीं—जैसी एक वैसी दूसरी। इसलिए उस समाज के युवकगण जैसा शिष्ट व्यवहार एक पुतली के प्रति जताते थे वैसा ही दूसरी के प्रति—जब तक कोई विशेष ही आकर्षण किसी में न हो। गिरिजा न रूप में दूसरों की तुलना में कोई विशेषता रखती थी न रंग में। अधिकांश पुतलियाँ उससे कुछ कम सुन्दरी और गोरी नहीं थीं। उसमें केवल एक ही विशेषता थी—उसकी सब समय ध्यानमग्न सी रहने वाली आँखों की अभिव्यक्ति में झलकनेवाली बुद्धिमत्ता और गांभीर्य। मोहनदास पहले दिन के परिचय से उसके मुख की अभिव्यक्ति की इसी विशेषता के कारण उसकी ओर आकर्षित हुआ था और चंद्रमोहन की प्रारंभिक घनिष्ठता के पीछे भी कुछ इसी तरह का कारण था। पर अपनी बुद्धिमत्ता का कोई विशेष परिचय देने का कोई अवसर ही उस कृत्रिम और अपने ही संकीर्ण घेरे में बन्द, अपने-अपने चहकने में व्यस्त और मस्त समाज में उसे नहीं मिल पाता था। उसने, शायद अपने अज्ञात में, यह आशा कर रखी थी कि वह अपनी बुद्धिमत्ता और 'व्यक्तित्व की विशेषता' के कारण शीघ्र ही उस फैशनेबुल समाज में शीर्ष स्थान प्राप्त कर लेगी। पता नहीं, अपने 'व्यक्तित्व की विशेषता' के संबंध में उसके मन में ऐसी निश्चित धारणा कैसे बन गयी थी। पर कारण जो भी रहा हो, यह निश्चित था कि उस धारणा के वशीभूत हो कर वह अपने भविष्य की 'उज्ज्वलता' के संबंध में तरह-तरह की अस्पष्ट और रंगीन कल्पनाएँ किये बैठी थी। वह सोचती थी कि उस समाज की प्रत्येक नारी उसके प्रति ईर्ष्या का भाव रखने लगेगी और प्रत्येक युवक उसके चरणों पर लोटने के लिये व्याकुल हो उठेगा। पर कुछ ही महीनों के अनुभव से उसने देख लिया कि वास्तविकता बिलकुल

दूसरी है। केवल ऊपरी शिष्टाचार द्वारा सौजन्यपूर्ण भाव जताने के अतिरिक्त कोई भी युवक उसके लिये 'मर मिटने' को तैयार न था। केवल अभिनेता हेमकुमार एक ऐसा व्यक्ति था जो उसे किसी हद तक अपने प्रति आकर्षित लगता था। जब कभी किसी पार्टी में वह और हेमकुमार दोनों पहुँच जाते थे तो हेमकुमार दूसरे परिचित युवकों और युवतियों का साथ छोड़ कर गिरिजा के ही निकट बैठने का अवसर ढूँढता रहता था। प्रारंभ में हेमकुमार का संसर्ग उसे तनिक भी अच्छा नहीं लगता था। पर जब उसकी कच्ची उम्र के सारे रंगीन स्वप्न भंग होते दिखायी देने लगे तो हेमकुमार उसे जैसे डूबते को तिनके के सहारे की तरह लगा।

मोहनदास ने प्रारंभिक परिचय में उतनी अधिक आत्मीयता दिखा कर बाद में क्यों कन्नी काट ली, यह बात उसकी समझ में तनिक भी नहीं आ पा रही थी। धीरे-धीरे उसने देखा कि केवल मोहनदास ही नहीं, उसका परिचित सारा समाज, उसके प्रति ऊपरी शिष्टता और सौजन्य का मुखड़ा भी उतार कर फेंकने लगा था। उस समाज के युवकों और युवतियों ने उसके प्रति सुस्पष्ट रूप से अवज्ञा का भाव जताना आरंभ कर दिया था। यहाँ तक कि मीना और शांता भी उसके संसर्ग से कतराने लगीं।

कारण कुछ भी न समझने पर अपने भीतर ही किसी अज्ञात कमी का अनुभव करती हुई गिरिजा बहुत ही उदास और खिन्न रहने लगी। इस बीच वह महिलाओं के एक क्लब की सदस्या बन चुकी थी। क्लब का नाम 'रंजना' था। वहाँ वह अक्सर आने-जाने लगी। वहाँ जाने से जिस प्रारंभिक लाभ का अनुभव उसने किया वह यह था कि युवकों और युवतियों की सम्मिलित पार्टियों में वह ईर्ष्या की जिन

अदृश्य ज्वालाओं को धधकता हुआ अनुभव करती थी उनका 'रंजना' में एकांत अभाव था। दूसरा लाभ उसे यह हुआ कि संगीत और नृत्य का प्रारंभिक ज्ञान उसे वहाँ बहुत जल्दी हो गया और धीरे-धीरे उस प्रारंभिक ज्ञान को वह और आगे बढ़ाने के प्रयत्नों में पूरी लगन से जुट गयी। दूसरे सब विषयों में 'रंजना' की सदस्याओं का छिछला-पन उसे सुस्पष्ट दिखायी देने लगा। 'कला और संस्कृति' का केवल ऊपरी प्रदर्शन उसने वहाँ पाया। एक भी सदस्या ऐसी नहीं थी जो साहित्य, कला या जीवन-संबंधी किसी गंभीर विषय पर गंभीरता से बात करने की योग्यता या रुचि रखती हो। प्रारंभ में कुछ दिनों तक सभी सदस्याओं का व्यवहार उसके साथ अच्छा रहा। सभी उसके समान स्तर पर उससे मिलती थीं और उसकी नृत्य-गीत संबंधी प्रतिभा का परिचय पा कर उससे बहुत प्रसन्न थीं। पर धीरे-धीरे, न जाने किस अज्ञात और रहस्यमय कारण से, एक-एक करके सब के व्यवहार में उसके प्रति रुखाई दिखाई देने लगी—ठीक जिस तरह उसकी पूर्व-परिचित फैशनेबुल मंडली के लोग एक-एक करके उसके प्रति उदासीनता दिखाने—बल्कि कतराने—लगे थे।

केवल एक हेमकुमार ही ऐसा व्यक्ति था जिसकी दिलचस्पी अभी तक उसके प्रति वैसी ही बनी हुई थी। बल्कि यह जान कर कि इस बीच गिरिजा ने नृत्य और संगीत के क्षेत्र में अच्छी निपुणता प्राप्त कर ली है, वह उसकी ओर और अधिक आकर्षित हुआ-सा लगता था। अक्सर शनिवार या रविवार की शाम को वह गिरिजा से किसी एक निर्दिष्ट स्थान में मिलने का प्रस्ताव कर लेता था। कभी विक्टो-रिया टर्मिनस के बुक स्काल के पास, कभी 'इंडिया गेट' पर, और कभी किसी सिनेमा हाउस के पास। मिलने पर फिर दोनों कभी

एपोलो बंदर में नौका-विहार करते, कभी चौपाटी की सैर करते, कभी किसी सिनेमा में चले जाते और कभी किसी रेस्तोराँ में ही एक-आध घंटा बिता देते। अपने पूर्व-परिचित फैशनेबुल समाज की उदासीनता के बाद हेमकुमार का संग उसे पहले की तरह खलता नहीं था, बल्कि अपने प्रति उसकी सहृदयता कायम देख कर उसके खल-नायकत्व के बावजूद वह उसे जँचने लगा था।

एक दिन रविवार की संध्या को हेमकुमार गिरिजा को जूहू के समुद्रतट पर भ्रमणार्थ ले गया। वहाँ काफी देर टहलते रहने के बाद दोनों एक एकांत स्थान पर बैठ गये। सहसा हेमकुमार, न जाने क्या सोच कर, बिना किसी पूर्व चर्चा के, बोल उठा : "मुझसे यह बात छिपी नहीं है, गिरिजा जी, कि आप आजकल ऊपर से प्रसन्न दिखायी देने पर भी भीतर से बहुत उदास रहती हैं और अकेलेपन का अनुभव करती हैं..."

गिरिजा जैसे स्वप्न में चौंक उठी। हेमकुमार के समान 'विदूषक' की अंतर्दृष्टि इस कदर पैनी हो सकती है, इसकी कल्पना भी उसने कभी नहीं की थी। उसके भीतर के भी भीतर छिपी हुई वेदना को उसने कैसे जान लिया जब कि उसने कभी किसी इंगित से भी उसके आगे उसका तनिक भी आभास प्रकट नहीं होने दिया था, यह रहस्य वह समझ नहीं पायी।

पर प्रकट में हेमकुमार के उस अत्यन्त गंभीर और मार्मिक मंतव्य को परिहास में परिणत करने के उद्देश्य से वह बोली : "आप तो, देखती हूँ, कि दिन पर दिन अंतर्यामी होते चले जा रहे हैं!" कहते हुए उसके मुख पर व्यंग की एक मंद मुस्कान फूट पड़ी। पर उस मुस्कान के भीतर छिपी हुई पीड़ा भी जैसे हेमकुमार से छिपी न रही।

"नहीं, गिरिजा जी, हँसी की बात नहीं है, मैं पिछले कुछ दिनों से बड़ी गंभीरता से इस विषय पर सोच रहा हूँ। आपके साथ बहुत बड़ा अन्याय हुआ है—अत्यंत नीचतापूर्ण अन्याय !"

इस बार गिरिजा के मुँह पर से कृत्रिम परिहास का चिह्न एकदम लुप्त हो गया। अत्यन्त गम्भीर भाव से उसने पूछा : "किस अन्याय की बात आप कह रहे है, मैं कुछ समझी नहीं ?"

"आपसे सभी परिचित स्त्री-पुरुष एक-एक करके विमुख क्यों हो गये, क्या आपने इस बात के कारण पर भी कभी विचार किया है ?"

"नहीं," अत्यन्त चिंतित और उत्कंठित भाव से गिरिजा ने कहा।

"मैं बहुत दिनों से सोच रहा था कि आपको बताऊँ, पर न तो उपयुक्त अवसर ही मिल पाता था न साहस ही होता था। आज मुझे प्रसन्नता है कि मैंने साहस करके इस बात की चर्चा छेड़ दी है..."

"पर आपने बताया नहीं कि वह कारण क्या है," अत्यन्त अधीरता से गिरिजा ने बीच ही में हेमकुमार की बात काटते हुए कहा।

"बता रहा हूँ। बात यह है गिरिजा जी, कि हमारे देश के तथाकथित फैशनेबुल समाज का दृष्टिकोण बड़ा ही छिछला, बहुत ही संकीर्ण होता है। वे एक नकली दुनिया के नकली ही तौर-तरीकों की बंदिशों से घिरे रहते हैं। मनुष्य की वास्तविक पहचान उन्हें नहीं है, उसके व्यक्तित्व के भीतरी रूप को न तो वे पहचान ही पाते हैं न पहचानने की रुचि ही रखते हैं। यदि बाहरी माप-दंड से किसी व्यक्ति का सामाजिक स्तर उन्हें नीचा लगता है तो उसके कारण वह

व्यक्ति अपनी सभी भीतरी योग्यताओं के बावजूद उन्हें अत्यन्त हीन लगने लगता है..."

हेमकुमार की भूमिका से गिरिजा की अधीरता और बढ़ गयी थी। "पर आप कहना क्या चाहते हैं? मूल बात पर आइये", उसने तनिक खीझ के साथ कहा।

"मैं कहना यह चाहता हूँ कि किसी जरिये से उन सब लोगों को यह पता लग गया है कि आप—स्पष्टोक्ति के लिये मुझे क्षमा कीजियेगा—एक दूध बेचनेवाले की लड़की हैं। वह सूचना उन लोगों के लिये बड़ी ही विस्फोटक सिद्ध हुई है। किसी दूध बेचनेवाले की लड़की से—फिर चाहे वह कैसी ही पढ़ी-लिखी क्यों न हो—समान स्तर पर बातें करने और हिलने-मिलने से अधिक अपमानकर बात वे अपने लिये दूसरी नहीं समझते..."

गिरिजा का मुँह सूख कर इतना सा हो कर रह गया। हेमकुमार को लगा कि एक क्षण पहले की गिरिजा में और इस समय की गिरिजा में जैसे कोई साम्य ही न था। दोनों एक-दूसरे से इतना सुस्पष्ट अंतर रखती थीं। उसके मुख का सारा व्यंगात्मक भाव, सारी मस्ती, सारा अल्हड़पन, जवानी का संपूर्ण आत्म-विश्वास पल में इस तरह गायब हो गये जैसे रंग-बिरंगे बल्बों का बंदनवार, मेन स्विच के 'आफ्' होते ही एक क्षण में सारे का सारा बुझ जाय। वह अपने निःसत्त्व मुख की निर्जीव और निःस्पंद दृष्टि से हेमकुमार की ओर देखती रह गयी। सामने समुद्र के पश्चिमी क्षितिज पर सूर्यास्त हो रहा था। समुद्र की सैकड़ों लहरें उमड़-उमड़ कर, उफन-उफन कर, शेषनाग के सहस्रों फनों की तरह फुफकारती हुई तट से टकरा रही थीं—जैसे मानव-जाति द्वारा मानव के अपमान से क्षुब्ध हो कर

रोषपूर्वक गरज रही हों।

"आपको किसने बताया कि उन लोगों को मेरे संबंध में इस तरह की बात मालूम हो गयी है?" अत्यंत धीमी—प्रायः फुसफुसाती हुई—आवाज में गिरिजा ने पूछा।

"मेरे घनिष्ठ रूप से परिचित व्यक्तियों और मित्रों की संख्या उस मंडली में बहुत अधिक है। इसलिये मुझे जो सूचना मिली है उसके संबंध में आप संदेह न करें। पर नाम न पूछें। उससे कोई लाभ आपको न होगा। और एक या दो नहीं, कइयों के मुख से मैंने आपके संबंध में इसी तरह की बात और व्यंगपूर्ण मंतव्य सुने हैं।

संध्या के अंधकार की तरह ही गिरिजा के मुख का अंधकार बढ़ता चला जा रहा था। किन्तु विस्तृत तट पर सैकड़ों आनन्दान्वेषी नर-नारी-गण बालू के ऊपर टहलते हुए हँसी खुशी की बातें कर रहे थे, जैसे संसार में सर्वत्र राग-रंगमय निर्द्वन्द्व जीवन बिताने की सारी सुविधाएँ बालू के कणों की तरह ही मुक्त बिखरी पड़ी हों। "मुझे दुःख है कि यह अप्रिय सूचना सबसे पहले आपको मुझसे मिली," हेमकुमार ने अत्यंत संवेदनात्मक स्वर में कहा। "पर मैं बहुत दिनों से यह अनुभव कर रहा था कि इस समाज के बीच में आपका वास्तविक स्थिति से अपरिचित और अनभिज्ञ रहना उचित नहीं है। इसलिये मैंने इस कड़वे सत्य की ओर आपका ध्यान आकर्षित किया है। मेरी बात सुन कर आपका दुःखित होना स्वाभाविक है। पर इस संबंध में मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि आप उस समाज को एकदम भूल जायँ। मैं आपका परिचय एक ऐसे नये समाज से कराऊँगा जो फैशनेबुल होते हुए भी समाज के उच्च और निम्न स्तर के बीच में किसी वंशगत या कृत्रिम भेदभाव को नहीं मानता। उस समाज में

हीन से हीन परिस्थितियों में पली हुई नारियाँ भी अपनी प्रतिभा के चमकने का सुयोग पा कर आज सारे समाज में, बल्कि सारे देश में, प्रतिष्ठित बनी हुई हैं......"

यह जानने की तीव्र उत्सुकता होने पर भी कि वह समाज कौन है, गिरिजा कुछ नहीं बोली। केवल अपनी पथराई हुई आँखों से, उसी निर्जीव और निःस्पन्द दृष्टि से हेमकुमार की ओर देखती रही। बोलने की शक्ति ही जैसे उसमें नहीं रह गयी थी।

हेमकुमार दो क्षण रुक कर बोला: "और वह समाज है सिनेमा-समाज। उस समाज में निम्न से निम्न स्तर से आयी हुई नारियों ने जो ख्याति और सम्मान प्राप्त कर लिया है वह उस फैशनेबुल समाज की नारियों के लिये भी अत्यंत प्रलोभनीय है, जिन्होंने आपके प्रति इस कदर नीचतापूर्ण उपेक्षा दिखायी है।"

गिरिजा फिर भी कुछ नहीं बोली। उसके भीतर सामने समुद्र की लहरों की तरह ही जो तूफानी हलचल मच रही थी वह उसी में जैसे डूबती चली जा रही थी। मुँह से कुछ बोलने की न उसमें कुछ स्फूर्ति रह गयी थी न इच्छा।

काफी देर तक दोनों मौन बैठे रहे। हेमकुमार अपने को बड़ी ही अशोभन परिस्थिति में अनुभव करने लगा। अंत में साहस करके बोला: "अब उठिये गिरिजा जी। कुछ देर टहला जाय। उसके बाद वापस चले चलेंगे।" कह कर वह स्वयं उठ खड़ा हुआ।

गिरिजा भी बिना कुछ बोले ही, धीरे से उठी और डगमगाते हुए पाँवों से हेमकुमार के साथ टहलने लगी। हर कदम पर उसे लगता था कि वह गिर जायगी।

"चलिये लौट चलें," अत्यंत क्षीण और अस्पष्ट स्वर में

उसने कहा।

"चलिये," हेमकुमार बोला।

उसी तरह डगमगाते पाँवों से गिरिजा किसी तरह अपने को गिरने से बचाने का प्रयत्न करती हुई हेमकुमार के साथ चलने लगी। पश्चिम के आकाश में ऐसा धुँधलका छा गया था जैसे वहाँ कुछ ही समय पूर्व सूर्य की धधकती हुई आग के बुझ जाने के बाद राख का ढेर जमा हो गया हो। समुद्र का विराट दिगन्त-प्रसारित रूप भी धीरे-धीरे अंधकार में ढकने लगा था। केवल उसकी फेनिल लहरों की श्वेत रेखाएँ दिखायी देती थीं और अजानित क्षोभ और रोष से गरजती हुई दैत्याकार लहरों के तट पर टकराने का शब्द कानों में सुनायी देता था।

जूहू सैकत-तट के पार पहुँच कर हेमकुमार ने एक टैक्सी तय की और दोनों उस पर बैठ गये। रास्ते में हेमकुमार ने मौन भंग करते हुए कहा : "जिस समाज की बात मैंने आपसे कही है, उसमें आप बहुत आसानी से प्रवेश पा सकती हैं, कुमारी जी। आप उसके लिये हर तरह से योग्य हैं। आप सुशिक्षित हैं, नृत्य और गीत संबंधी कलाओं में कुशल हैं, आपके चेहरे में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं है। आप जैसी योग्य लड़कियाँ यदि फिल्मी दुनिया में प्रवेश करें तो जनता का भी बड़ा हित होगा। आजकल जो लड़कियाँ वहाँ कब्जा जमाये हैं उनमें उच्चकोटि की शिक्षा और संस्कृति का बहुत बड़ा अभाव है। वे केवल अपने चेहरों और प्रचार के बल पर जमी हुई हैं। फिल्म-निर्मातागण उनसे पिंड छुड़ाना चाहते हैं, पर उनका स्थान ग्रहण कर सकने वाली योग्य लड़कियों के अभाव के कारण वे ऐसा कर नहीं पाते। आप..."

"आप क्या अपने भीतरी विश्वास से यह बात कह रहे हैं कि मैं फिल्मी दुनिया में प्रवेश करने के लिये हर तरह से योग्य हूँ।" सहसा गिरिजा ने प्रश्न किया। इस बार उसका गला पहले से कुछ साफ था, और आवाज पहले की तरह मरियल नहीं थी। लगता था जैसे इस बीच वह पहले—अप्रत्याशित और गहरे—धक्के से काफी सँभल चुकी है, और अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में कुछ सोच भी चुकी है।

"मैं केवल आंतरिक विश्वास से ही नहीं, बल्कि निश्चित रूप से यह कह सकता हूँ कि आप फिल्मी दुनिया के सर्वथा योग्य हैं," अपने एक-एक शब्द पर जोर देता हुआ हेमकुमार बोला।

"मैंने सुना है कि फिल्मी दुनिया कुछ ऐसी चहारदिवारियों से घिरी रहती है कि उस चक्रव्यूह के भीतर प्रवेश पाना कोई साधारण बात नहीं है।" इस बार गिरिजा की आवाज और अधिक साफ हो गयी थी और उसमें काफी ढिठाई आ गयी थी।

"वह चक्रव्यूह जिनके लिये है उनके लिये है, आपके लिये नहीं," उत्साहित हो कर हेमकुमार बोला। "केवल आत्म-विश्वास-हीन, अयोग्य और अशक्त लोग ही उससे भीत होते हैं। योग्य और समर्थ लोगों के लिये वह छुईमुई सिद्ध होता है। आप चलिये; मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपके प्रवेश करते ही वे दीवारें अपने-आप, जैसे किसी जादू के बल से, आपके सम्मान में हटती चली जायेंगी और आपके लिये रास्ता छोड़ती जायेंगी..."

जो मर्म-पीड़ा कुछ ही समय पूर्व हेमकुमार की इस घोर ग्लानिकर सूचना से गिरिजा को मिली थी कि फैशनेबुल समाज के लोग उसे एक दूध वाले की लड़की जान कर उससे कतराने लगे हैं, उसकी

चुभन यद्यपि अभी तक उसके भीतर वैसी ही बनी हुई थी, तथापि हेमकुमार की बात के ढंग से, तीखी मानसिक वेदना की उस स्थिति में भी वह बिना मुस्कराये न रह सकी।

"आप मुझे इतनी बड़ी जादूगरनी मानते हैं?" मीठी चुटकी लेते हुए गिरिजा ने कहा।

"जरूर मानता हूँ", उसके लहजे से और अधिक उत्साहित हो कर हेमकुमार ने कहा। "आप अपनी योग्यता से स्वयं परिचित नहीं हैं, इसलिये इस तरह की अविश्वास की बात कह रही हैं। मैं हर तरह के समाज में रह चुका हूँ, कुमारी जी। समाज के सभी स्तरों के व्यक्तियों के घनिष्ठ संपर्क में आ चुका हूँ। इसलिये व्यक्ति को पहचानने में मुझसे चूक नहीं होती। आप केवल मेरे साथ मेरे बताये हुए रास्ते पर चली चलें। आप देखेंगी कि आपका क्या स्वागत होता है। बोलिये, मेरे प्रस्ताव से आप सहमत हैं या नहीं?"

"दो-एक दिन बाद सोच कर बताऊँगी," तनिक गंभीरता के साथ गिरिजा ने कहा।

"अच्छी बात है। आप अवश्य खूब अच्छी तरह सोच लें। पर अधिक देर न करें। बार-बार इस तरह के सुयोग नहीं आते। इस समय एक ऐसा सिलसिला मेरे पास है जिससे बड़ी सुविधा से जल्दी ही बात तय हो सकती है।"

गिरिजा कुछ बोली नहीं। होस्टल के पास जब टैक्सी रुकी तब गिरिजा उतर पड़ी। हेमकुमार की ओर हाथ जोड़ कर वह फाटक के भीतर चली गयी।

२४

रात में कमरे की बत्ती बुझा कर, पलंग पर लेटे-लेटे, बहुत देर तक गिरिजा यही सोचती रही कि वह दूध बेचने वाले की लड़की है और उसका उस समाज में कोई स्थान नहीं है, जहाँ उसने मोहवश, जवानी के मद से अंध हो कर, दुनिया के तौर-तरीकों से अपरिचित रहने के कारण, अपने लिये स्थान बनाना चाहा था। उसे कहानी के उस कौवे की याद आयी जो अपने डैनों के नीचे मोर के पंख खोंस कर, अपने समाज वालों को घृणा की दृष्टि से देखता हुआ मोरों के बीच में जा पहुँचा था। उसने स्वयं अपनी अपार स्नेहमयी माँ से, अपने पितातुल्य चाचा से, अपने बचपन के साथी किशन से मुँह मोड़ कर, उन्हें अत्यंत हीन समझ कर, उनकी छूत तक से बच कर चलना चाहा था और ऐसे लोगों के बीच में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानी चाही थी जो अपनी वंशगत बड़प्पन की भावना में जीते हैं और एक कृत्रिम सांस्कृतिक वातावरण की झूठी रंगीनी में साँस लेते हैं। उस समाज के प्रति झूठे मोह के कारण उसका जो घोर अपमान और तिरस्कार हुआ वह बिलकुल स्वाभाविक था, यह बात उसकी समझ में शीशे की तरह साफ हो उठी।

"मुझे मेरी नीचता का बहुत उचित दंड मिला है", उसने मन-ही-मन अपने आपको कोसते हुए कहा : "मैं इसी योग्य थी! चाचा ने असीम स्नेहवश मेरी सभी ज्यादतियों को सहन करते हुए, मेरे सभी दुराग्रहों को दुलराते हुए मुझे पढ़ने-लिखने की पूरी सुविधाएँ दे कर, मुझे इस हद तक शिक्षित बनाया और मैं मूर्ख की मूर्ख ही रह

गयी ! बल्कि मेरी बुद्धि स्वाभाविकता की सीमा त्याग कर और अधिक भ्रष्ट हो गयी । ठीक है, मेरी यही दुर्गति होनी चाहिये थी । मुझे यह अपना बहुत बड़ा सौभाग्य समझना चाहिये कि जल्दी ही मुझे यह मार्मिक शिक्षा मिल गयी । यदि कुछ ढील मुझे और मिली होती तो मैं न जाने पतन के किस गढ़े में जा गिरती ! गले-गले तक डुबा दिये जाने के बाद जब मुझे चेतावनी मिलती तब वह मेरे किस काम आती ? मैं बच गयी ! मैं बच गयी !..." उसकी इच्छा होती थी कि अपने होस्टल के अँधेरे कमरे की खिड़की से मुँह बाहर निकाल कर चिल्ला-चिल्ला कर उस भरी रात में सब को यह सूचित करे कि वह बच गयी । असीम अपमान की चरम वेदना के साथ बच जाने की अनुभूति के अपार उल्लास के मिश्रण से उसकी दोनों आँखों में आँसू छलक आये । और उसी क्षण उसकी भीतरी आँखों के आगे अपनी भोली और प्यारी माँ, अपने सरल-हृदय स्नेही चाचा और भोले और प्यारे किशन की मूर्तियाँ सुस्पष्ट रूप में सजीव प्रतिमाओं की तरह खड़ी दिखायी दीं । वह कल्पना में ही प्रत्यक्ष की तरह अपनी अम्माँ के गले से लिपट गयी और अपने अधिकाधिक वेग से उमड़ते हुए आँसुओं से उसका अंचल भिगो कर तर करने लगी । "अरी बिटिया, तनिक हट कर खड़ी हो जा, तेरे ये दामी कपड़े मेरे गंदे कपड़ों से लिपटने से खराब हो जायेंगे," कल्पना में ही उसने प्रत्यक्ष की तरह अपनी अम्माँ को कहते सुना । "नहीं अम्माँ, मेरी अच्छी, भोली, प्यारी अम्माँ, तुम्हारे कपड़े छू कर मैं आज पवित्र हो गयी हूँ," वह कल्पना में ही अपनी अम्माँ को उत्तर देने लगी । "ये कपड़े जिन्हें मैं पहने हूँ वे मोर के नकली पर हैं, जिन्हें एक दिन झड़ना ही था । ये मेरी

हँसाई की पात्री बनूँ ? क्योंकि यह तो निश्चित ही है कि सिनेमा के उस 'चक्रव्यूही' गढ़ में मैं अपने सहज रूप में कभी प्रवेश नहीं कर सकूँगी। वहाँ मुझे निश्चय ही अपने सहज-स्वाभाविक रूप के ऊपर कोई ऐसा कृत्रिम मुखड़ा पहनना होगा जो उस समाज के अनुरूप हो और वह मुखड़ा किसी भी क्षण उतर सकता है, क्योंकि वह मेरे असली चेहरे पर कभी 'फिट' नहीं बैठेगा। नहीं, यह सब मुझसे न होगा! मुझे अपने इस अपमानित जीवन के विकास के लिये कोई दूसरा ही रास्ता खोजना होगा!"

और वह सोचने लगी कि वह दूसरा रास्ता क्या हो सकता है। र कोई निश्चित रास्ता उसकी कल्पना की पकड़ में नहीं आ पाता था। सोचते-सोचते उसके मस्तिष्क की नसें थक गयीं और उसे नींद आ गयी। सारी रात नींद में भी अत्यन्त अस्पष्ट रूप से, कुछ अनोखे और विशृंखल स्वप्नों के माध्यम से, अपने व्यक्तिगत और ातिगत अपमान की वेदना उसके मन को छाये रही। सुबह ायः चार बजे एक अस्पष्ट, किन्तु भयावना, स्वप्न देखने के बाद ाब उसकी आँखें खुलीं तब सहसा उसके भीतर के और बाहर ; सघन अंधकार को चीरती हुई एक तीव्र प्रकाश-रेखा चमक गयी, ौर एक क्षण में उसे अपना रास्ता सूर्य के प्रकाश की तरह साफ ेखायी दिया। उसने निश्चय कर लिया कि वह हेमकुमार के प्रस्ताव ो स्वीकार कर लेगी। सिनेमा के क्षेत्र में उसे प्रारंभ में चाहे कैसी ी अवमानना क्यों न सहन करनी पड़े, चाहे कैसा ही वेष क्यों न दलना पड़े, वह सब कुछ सहन करती हुई अपनी कला के पूरे कास और अपने गुप्त उद्देश्य की परिपूर्ण सिद्धि तक अत्यन्त शांति ौर धैर्य से काम लेती रहेगी।

पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार दो दिन बाद हेमकुमार से उसकी भेंट चर्चगेट स्टेशन के सामने एक सिनेमा-घर के बाहर हुई। वहाँ से दोनों मेरीन ड्राइव की ओर टहलते हुए चले।

"आपने मेरे प्रस्ताव पर कुछ विचार किया कुमारी जी?" रास्ते में हेमकुमार ने पूछा।

"हाँ, मुझे आपका प्रस्ताव स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं दिखायी दी।"

"मुझे बहुत खुशी हुई, आपसे यह सूचना पा कर", प्रायः पुलकित भाव से हेमकुमार ने कहा। "अगले शनिवार को मैं आपको एक प्रसिद्ध फिल्म-कंपनी के प्रधान पुरुष के पास ले चलूँगा। सब बातें अच्छे ढंग से और अच्छी शर्तों पर तय हो जायेंगी, आप निश्चिन्त रहें। मेरी केवल एक ही प्रार्थना है। जिन महोदय के पास मैं आपको ले जाऊँगा, आप उन्हें कोई निश्चित उत्तर न दें। सब कुछ सुनने के बाद यह कहें कि 'मैं सोच कर बताऊँगी'। किसी भी शर्त को स्वीकृत या अस्वीकृत करने के पहले आप मेरी राय अवश्य लें। नहीं तो आप धोखा खा जायेंगी। यहाँ की दुनिया कुछ दूसरी ही है। इसका आपको अभी कोई अनुभव न होने से आपको प्रारंभ में बहुत सावधानी बरतने की आवश्यकता है।"

"आप जैसा कहेंगे मैं वैसा ही करूँगी। आपकी राय के बिना मैं एक कदम भी आगे नहीं बढ़ूँगी। आप निश्चिंत रहें।"

"मुझे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपने मुझ पर विश्वास कर लिया है। आप देखेंगी, आप अपनी योग्यता से और मेरे पथ-निर्देशन से कहाँ से कहाँ पहुँच जायेंगी!"

"यहाँ से मेरीन ड्राइव और वहाँ से होस्टल तक तो आप मुझे

जरूर ही पहुँचायेंगे, इतना तो मैं भी जानती हूँ ! क्या और भी कहीं पहुँचाने का इरादा है ?" दुष्टतापूर्वक मंद-मंद मुस्कराती हुई गिरजा बोली ।

हेमकुमार उसकी बात सुन कर हँस पड़ा। पर फिर तत्काल गंभीर हो कर बोला : "नहीं कुमारी जी, इस समय मैं परिहास नहीं करता और न विदूषक या 'विलेन' का ही अभिनय कर रहा हूँ । मैं बड़ी गंभीरता से आपके भविष्य के संबंध में पूरी योजना की कल्पना कर रहा हूँ ।"

गिरिजा ने एक बार पूरी दृष्टि से हेमकुमार की ओर देखा। उसके मुख कर सचमुच परिहास या कृत्रिमता का कोई चिह्न उसे नहीं दिखायी दिया। बल्कि एक सहज गंभीरता उसमें वर्तमान थी। किंतु खल-नायक का अभिनय करने वाले व्यक्ति के मुख पर इस प्रकार की अकृत्रिम गंभीरता भी गिरिजा को हास्यास्पद लग रही थी। वह न चाहने पर भी मन-ही-मन हँसे बिना नहीं रह पाती थी। किन्तु बाहर उसने हँसी का कोई आभास प्रकट नहीं होने दिया। वह हेमकुमार का जी इस हद तक नहीं दुखाना चाहती थी कि वह बेचारा सहन ही न कर सके ।

थोड़ी ही देर में वे दोनों मेरीन ड्राइव पहुँच गये। सामने समुद्र-तट वाले फुटपाथ पर जा कर अरब सागर की मर्यादा बाँधने-वाली दीर्घ-विस्तृत दीवार पर सांध्य-भ्रमण को आये हुए नर-नारी एक सिरे से दूसरे सिरे तक कतार बाँध कर विश्राम कर रहे थे और बड़े-बड़े काले पाषाणों पर दारुण रोष से टकराने वाली, प्रचंड भावावेग से फूल-फूल कर फेनायित होने वाली लहरों का गरजने और उफनने का दृश्य देख रहे थे। हेमकुमार और गिरिजा उसी दीवार से लगे-

लगे बहुत दूर तक चले गये। वे लोग किसी एक अपेक्षाकृत एकांत स्थान में बैठने की सोच रहे थे, पर आधे मील तक चलने पर भी कहीं तनिक भी मुक्त स्थान उन्हें नहीं मिला। जब निराश हो कर लौट रहे थे तब एक स्थान से तीन चार आदमी एक साथ उठे। हेमकुमार और गिरिजा ने तत्काल उस रिक्त स्थान पर कब्जा जमा लिया। ज्वार के वेग से लहरें पत्थरों से टकरा कर दोनों के मुख पर छींटे मार रही थीं। कभी-कभी जब वे नमकीन छींटे पूरे प्रवेग से गिरिजा के मुख पर आ कर पड़ते तब वह बच्चों की तरह किलकारी मार उठती। हेमकुमार को उसका वह बचकाना रूप बहुत अच्छा लग रहा था। गिरिजा को किलकते देख कर वह भी बीच बीच में हास्य कर उठता था। सामाजिक अपमान से आहत अपने पीड़ित मन की सारी वेदना भूल कर उस समय गिरिजा जातिभेद की भावना से एकदम मुक्त थी और उसके मन के तार उसी के उम्र की सभी मानवीय लड़कियों के तार से जैसे एक स्तर में बँध गये थे। जूहू में सन्ध्या के अन्धकार में उसने सागर के अत्यन्त गंभीर और भयावने रूप का परिचय पाया था, और यहाँ उसने उसका बाल-सुलभ चपल और क्रीड़ा-प्रेमी रूप देखा। उसकी उस दिन की और आज की मनोभावनाओं में भी बहुत अंतर था। जूहू में उसने उस समाज द्वारा अपने नीरव और परोक्ष बहिष्कार की सूचना पायी थी जिसमें मान्यता प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा वह अपने अंतर में बहुत दिनों से पाले बैठी थी। तब सन्ध्या के उस झुटपुटे में जीवन के प्रति जिस घोर निराशा और व्यर्थता का अनुभव वह करने लगी थी वह जूहू के उस सांध्यकालीन सागर की सघन-गहनता के साथ मेल खाती थी। पर आज उसका मन किसी कारण से बहुत हलका, निर्बन्ध और चिन्ताहीन अवस्था में

एक आनन्दमय संसार में उड़ान भर रहा था। वह कारण निश्चय ही यह नहीं था कि उसमें रोमांटिक रंगीनी की भावना फिर से जोर मारने लगी थी, बल्कि यह कि अपनी यथार्थ सामाजिक स्थिति की चेतना के पूर्णतया सजग हो जाने के बाद अपने भावी जीवन के विकास की जो नयी योजना उसने अपनी कल्पना में तैयार की थी उसकी सफलता की आशा का आभास आज उसे अपने अंतर में झलकता हुआ अनुभव होने लगा था।

कुछ समय बाद गिरिजा सहसा मौन और गंभीर हो गयी। काफी देर तक वह सागर की लहरों का उभड़ना, उफनना, गरजना और साथ ही पृथ्वी की मिट्टी के प्रति तीव्र आकर्षण और उत्कट प्यार से बार बार उसे आलिंगन-पाश में बाँधना, दुलारना, सहस्र मुखों से चूमना और फिर शंकित भाव से पीछे हट जाना, और फिर आदिम स्नेहवश लौट कर असंख्य भुजाओं में उसे समेटना—इस मोहक दृश्य की पुनरावृत्ति देखती रही। हेमकुमार बातें करने के लिये बहुत उत्सुक था। पर गिरिजा का मौन और तन्मय भाव देख कर वह भी मौन साधे बैठा रहा।

२५

जब सागर के किनारे-किनारे मीलों तक अर्द्धचक्राकार रेखा में असंख्य हीरक-दीप जल उठे तब गिरिजा उठ खड़ी हुई और उसका अनुसरण करता हुआ हेमकुमार भी। मोटरों की आने-जाने वाली भीड़ को बड़ी सावधानी से पार कर दोनों सड़क के उस पार पहुँच गये। हेमकुमार ने प्रस्ताव किया कि एक रेस्तोराँ में बैठ कर कुछ खाया पीया जाय। गिरिजा ने कोई आपत्ति नहीं जतायी। वहाँ कुछ

हलका-सा भोजन करने और कॉफी पीने के दौरान में भी कोई विशेष बात दोनों के बीच नहीं हुई। हेमकुमार की तीव्र उत्सुकता और प्रयत्न के बावजूद गिरिजा कोई भी बात जमने नहीं देती थी। केवल "हाँ" या "ना" कह कर रह जाती थी।

रेस्तोराँ से बाहर आ कर हेमकुमार ने गिरिजा को पहुँचाने के उद्देश्य से एक 'टैक्सी' की। रास्ते में उसने अगला कार्यक्रम निश्चित करते हुए गिरिजा से कहा कि शनिवार को तीन बजे दिन में वह चर्चगेट स्टेशन पर उससे मिले, वहाँ से दोनों किसी एक विशेष फिल्म कंपनी के प्रधान व्यक्ति से मिलने जायेंगे।

तीसरे ही दिन शनिवार था। गिरिजा ठीक पौने तीन तीन बजे स्टेशन पर पहुँच गयी। बहुत से दफ्तरों स्कूलों और कालेजों में जल्दी छुट्टी हो जाने से उस दिन स्टेशन पर बड़ी भीड़ थी। प्लेट-फार्म पर खड़े-खड़े गिरिजा ने देखा, दूध बेचने वालों, दफ्तरों और स्कूलों में खाना पहुँचाने वालों, मिलों में काम करने वाले मजदूरों, नयी बनने वाली इमारतों में ईंट, मिट्टी, सीमेंट, गारा ढोने वाली मजदूरनियों की हड़बड़ी और ठेलपेल के कारण जो कोलाहल मच रहा था उससे सारा स्टेशन एक सिरे से दूसरे सिरे तक गूँज रहा था। "ये सब लोग उसी जाति और उसी समाज के हैं जिससे मेरे रक्त का संबंध है और जहाँ से मैं जीवन के पथ पर आगे बढ़ी हूँ।" गिरिजा के भीतर के भी भीतर से यह आवाज सारे बाहरी संस्कारों की दीवारें तोड़ कर निकल पड़ी। उन सब के चेहरों से लगता था कि वे दिन-भर के काम और दौड़-धूप से थक कर चूर हो गये हैं, किंतु अभी जल्दी ही विश्राम पाने की कोई आशा उनकी मुरझायी हुई आँखों में झलकती हुई नहीं दिखायी देती थी। अभी

त्काल ही उन्हें स्थानीय रेलों के डिब्बों के भीतर मालगाड़ी में
ैसे जाने वाले माल की तरह ही अपने आप को ठूँसना होगा।
ास कल्पनातीत रूप से कष्टकर यात्रा के बाद किसी तरह अपनी-
ग्रपनी झोंपड़ियों और 'शेडों' में पहुँचने पर भूखे बाल-बच्चों की
ीख-पुकार द्वारा उनका स्वागत होगा और उसी थकित अवस्था
ं उन्हें अपने और बाल-बच्चों के लिये ऐसा खाना उबालना होगा
ो किसी भी सभ्य देश में मनुष्यों के लिये अखाद्य समझा जाता
। छुटपन से ही शींव (सायन) में अपने पास-पड़ोस की गंदी
स्तियों में मजदूरों का जीवन वह अपनी आँखों से वर्षों देख
ुकी थी। पर इसके पहले कभी उनकी दुर्दशा के सम्बन्ध में
सी मार्मिक अनुभूति उसके मन में नहीं जगी थी जैसी उस दिन
जगने लगी थी जब हेमकुमार ने उसे सूचित किया था कि जिस
शनेबुल समाज के बीच में वह आया जाया करती है उसके सदस्य
से एक दूध बेचने वाले की लड़की जान कर किस प्रकार उससे
ृणा करने और उससे बच-बच कर चलने लगे हैं।

मजदूर और मजदूरनियाँ किस प्रकार डिब्बों के भीतर ठुँसते
ले जा रहे थे, यह दृश्य वह प्लेटफार्म के पास ही खड़ी हो कर
कटक आँखों से देख रही थी। इस बीच चार-पाँच भिखारियों,
िखारिनियों और भिखारी बच्चों ने "ए माई, गरीब, लाचार के ऊपर
या करो!" कहते हुए उसे चारों ओर से घेर लिया था। फुटपाथों
र अपनी सारी जिन्दगी बिता देने वाले इन अभागे बूढ़ों, बच्चों, जवानों
ौर स्त्रियों का जीवन वह देख चुकी थी। छुटपन से ही उनके प्रति
सके मन में दया का भाव अवश्य जगता था, पर उनके संबंध में
स मार्मिक यथार्थता का अनुभव उसने पहले कभी नहीं किया

था जिसकी तीव्र अनुभूति आज उसके अंतर को बड़ी ही निर्दयता से कचोट रही थी। उसने अपना मनी-बैग खोला और उसमें से कुछ रेजकारी निकाल कर उन मँगतों में बाँट दी—इस अनुभूति के साथ कि जो-कुछ भी वह उन लोगों को दे रही है वह नहीं के बराबर है, उससे उनकी प्रतिदिन की समस्या का हल रंचमात्र भी न हो सकेगा। उन पाँच भिखारियों के जाते ही क्षण भर में पाँच-सात और भिखारियों और भिखारी-बच्चों ने उसे घेर लिया। "ए माई, हमको भी! ओ रानी, मुझको भी!" कहते हुए सब उसके चारों ओर चरखे के से एकतारा-स्वर में एक विचित्र सम्मिलित राग अलापने लगे। मनी-बैग से कुछ और रेजकारी निकाल कर गिरिजा ने बाँटना शुरू कर दिया। भिखारियों के लिये यह बिलकुल एक नया अनुभव था कि कोई व्यक्ति मँगतों की भीड़ से घिर जाने पर भी उन्हें डाँटने-डपटने के बजाय अत्यंत शांत भाव से, आंतरिक सहृदता का भाव आँखों में झलकाते हुए उन्हें कुछ न कुछ देता चला जाय! उन पाँच-सात नये भिखारियों के हटने के पहले ही आठ-दस और भिखारियों के एक दल ने उसे घेर लिया। गिरिजा के आगे एक विकट समस्या खड़ी हो गयी—कैसे उन लोगों को बिना दुःखित और निराश किये उनसे छुट्टी पाये! "लाओ, लाओ, दो, दो, मुझको—मुझको, ए माई इधर! ओ रानी इधर!" चारों तरफ से इस तरह की आवाजें आती थीं और चारों ओर से छोटे-बड़े हाथ महाकाल की कभी पूरी न हो सकने वाली माँग की तरह उसके इर्द-गिर्द फैले हुए थे। एक तमाशा सा खड़ा हो गया था। गिरिजा कुल रेजकारी निकाल चुकी थी, अब उसके पर्स में केवल नोट बचे थे। "लाओ लाओ! दो! दो! ए माई! ए रानी!" की अत्यंत करुण

और मर्म-विदारक पुकार उसके दोनों कानों में भायँ-भायँ करके बज रही थी।

"अब मेरे पास रेजकारी बिलकुल नहीं बची है," अत्यंत करुण और क्षमा-याचना के-से स्वर में उसने भिखारियों से कहा।

"रुपया लाओ, हम रेजकारी दिये देते हैं", एक प्रायः सोलह-सत्रह साल की लड़की बोली।

गिरिजा ने एक बार गौर से उस लड़की ओर देखा। फटे चिथड़ों से लिपटी होने पर भी प्रसन्नता का भाव उसके मुख पर स्पष्ट झलक रहा था। "क्या ये कुत्ते-बिल्लियों से भी अधिक दयनीय लोग किसी कारण से प्रसन्न हो सकते हैं?" यह प्रश्न बरबस गिरिजा के मन में उठा। लड़की ने सोलह आने गिन कर उसके हाथ में दे दिये। गिरिजा ने बदले में उसे एक रुपया दे दिया। वास्तव में लड़की की प्रसन्नता का कारण यह था कि उसके मन में बहुत दिनों से यह आकांक्षा थी कि वह प्रतिदिन के चना-चबेना के बाद भी एक रुपया जमा कर सके। सो आज उसका वह स्वप्न सफल हो गया था। दो-दो पैसा प्रतिदिन बचाते रहने के बाद आज गिरिजा के दिये हुए पैसों को मिला कर उसके पास पन्द्रह आने जमा हो गये थे। उसने गिरिजा से पूरा रुपया ले कर उसके हाथ में पंद्रह आने थमा दिये थे। गिरिजा ने सरसरी निगाह से उन पैसों को गिना और जान कर भी अनजान सी बन कर वह शेष पैसे भिखारियों में बाँटने लगी। चारों ओर से ऐसी छीना-झपटी, ऐसी चिल्लपों मच गयी कि उस घेरे से अपने को छुड़ाना उसके लिये असंभव सा हो गया। इस बीच कुछ कंकालावशेष बूढ़ों, बुढ़ियों और बच्चों का एक नया दल दुहरा घेरा बना कर खड़ा हो गया था।

"यह क्या तमाशा खड़ा कर रखा है आपने ?" घेरे को तोड़ कर गिरिजा के पास पहुँचने का प्रयत्न करते हुए हेमकुमार ने कहा।

हेमकुमार को देख कर गिरिजा के मुख पर लज्जा की-सी लालिमा दौड़ गयी, जैसे वह चोरी करने के अपराध में रँगे हाथों पकड़ ली गयी हो। हेमकुमार ने भिखारियों को धक्का दे कर, झिड़क कर गिरिजा के बाहर निकलने के लिये रास्ता बनाया। चारों ओर से उसी तरह "ए माई! ए रानी! ए बिटिया!" की करुण पुकारें गिरिजा के कानों में अत्यंत मार्मिकता से चुभती हुई गूँज रही थीं। शेष पैसे एक वृद्ध कंकाल के हाथों में रख कर वह हेमकुमार के साथ बाहर निकल आयी। हेमकुमार ने अँधेरी तक के लिये फर्स्ट क्लास के दो टिकट खरीदे और फिर दोनों ने लोहे के फाटक के भीतर प्रवेश किया। एक गाड़ी खड़ी थी। दोनों तेज कदम रखते हुए उसे पकड़ने के लिये गये। गार्ड सीटी दे चुका था। वे लोग फर्स्ट क्लास के डिब्बे तक पहुँच भी न पाये थे कि गाड़ी छूट गयी। गिरिजा उसे पकड़ने के लिये दौड़ने जा रही थी, पर हेमकुमार ने रोका। बोला : "अभी दूसरी गाड़ी आती ही होगी, जल्दी क्या है! आइये, तब तक टहलें।"

और दोनों धीरे से प्लेटफार्म पर टहलने लगे। "अच्छे लोगों के चक्कर में फँस गयी थीं आप!" हेमकुमार ने कहा।

"बेचारे बड़े ही दुखी, बड़े ही दयनीय हैं। मेरी तो इच्छा होती थी कि मेरे पास जितना भी रुपया है सब बाँट दूँ..."

"तब बाँटा क्यों नहीं ?" हेमकुमार की आवाज में तीखापन था। उसमें या तो खीझ भरी थी या व्यंग।

"मैं केवल इसलिये रह गयी," हेमकुमार की आवाज के

तीखेपन की ओर तनिक भी ध्यान न देते हुए गिरिजा बोली, "कि लोग मेरी वह दानशीलता देख कर निश्चय ही मेरी हँसी उड़ाने लगते !"

"क्षमा करें, किसी अच्छे काम के लिये लोकलाज की परवा करना तो स्वभाव की बहुत बड़ी कमजोरी की निशानी है।" उसकी आवाज में अब भी हवी तीखापन था।

"मैं मानती हूँ यह मेरी बहुत मूर्खतापूर्ण कमजोरी थी। चलिये हम लोग लौट चलें। मेरे 'पर्स' में इस समय पचास रुपये हैं। क्या कहीं से उतने के एक-एक रुपये के नोट या रेजकारी नहीं मिल सकेगी ?"

हेमकुमार ने देखा, गिरिजा के मुख के भाव में कृत्रिमता का लेश भी नहीं था। वह सहज भाव से, पूरी ईमानदारी से अपने सच्चे मनोभाव को प्रकट कर रही थी।

"कुमारी जी, आप इस हद तक भावुक हैं, यह मैं नहीं जानता था," इस बार हेमकुमार ने सहज, सहृदय भाव से कहा। "मैं आपकी इस उदार भावना की बहुत प्रशंसा करता हूँ। पर क्या आप यह समझती हैं कि भिखारियों को इस तरह पैसा लुटाने से उनकी व्यक्तिगत का सामूहिक समस्याएँ हल हो जायेंगी ? आप यह क्यों नहीं सोचतीं कि आप पचास क्या पाँच हजार रुपया भी बाँट दें तो भी केवल इस एक शहर के पचास-साठ हजार भिखारियों के एक लघुतम अंश की दो-चार दिन की भी सुविधा का प्रबंध आप नहीं कर सकेंगी। देश की इस विराट समस्या पर आप क्षणिक भावुकता की दृष्टि से नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक दृष्टि-कोण से विचार करने की आदत डालें। तब आप देखेंगी कि इस

सामाजिक कोढ़ के कीटाणु देश के भीतर किस गहराई से घुसे हुए हैं और चारों ओर कैसे ताने-बाने फैलाये हुए हैं। यह इस देश का दुर्भाग्य है कि यहाँ इस विकट समस्या के हल के केवल दो आसान तरीके सोचे जाते हैं। एक तो यह कि जो भिखारी सामने आये, उसकी दयनीय दशा का खयाल करके उसे पैसे दो पैसे दे कर विदा करना यहाँ प्रत्येक भले आदमी का कर्तव्य माना जाता है। दूसरी ओर सुधारवादी नेता उन्हें शहर से एकदम निष्कासित कर देना ही इस समस्या का चरम समाधान मानते हैं। शहर से निकाल दिये जाने के बाद वे लोग कहाँ जायेंगे, कैसे अपनी गुजर करेंगे, शहर के बाहर किन क्षेत्रों में धावा बोलेंगे, इन सब प्रश्नों के उचित हल के लिये वे अपने को उत्तरदायी नहीं मानते।"

"तब आपकी दृष्टि में इस समस्या का उचित हल क्या हो सकता है!" अत्यंत चिंतित भाव से गिरिजा ने पूछा।

"इसका उचित हल यही हो सकता है कि भिखारियों के लिये कुछ ऐसे केन्द्र खोले जायँ जहाँ उनके भोजन और आवास की सुविधा के अलावा शिक्षा का पूरा प्रबंध हो, उन्हें उपयोगी शिल्प सिखाये जायँ और उनमें मनुष्यत्व की—आत्म-सम्मान की—भावना जगायी जाय। तब अपने आप भिक्षा-वृत्ति की निपट हीनता उनके आगे स्पष्ट हो जायेगी और वे अपनी तामसिक पशुता के भीतर छिपे हुए मनुष्यत्व का आविष्कार कर उसके विकास की ओर स्वतः प्रयत्नशील हो उठेंगे। इस समय वे जिस जीवित मृत्यु की अवस्था में जीवन बिता रहे हैं और चरम जड़ता और आलस्यवश, दूसरों की दया उभाड़ कर, दिन-भर दर-दर गिड़गिड़ा कर, दो-चार पैसा कमा कर, उसी पर गुजर करके किसी तरह जिन्दा रहने को ही

जीवन का उद्देश्य माने बैठे हैं, वह दृष्टिकोण फिर उनका नहीं रह जायगा। वे एक दूसरे ही परिप्रेक्षण में जीवन को देखने लगेंगे, जीवन का व्यापक और बहुमुखी स्वरूप उनके आगे मुक्त हो जायगा..."

गिरिजा एकांत मन से, पूरी तन्मयता से उसकी बातें सुन रही थी। 'खल-नायक' हेमकुमार का एक नया ही रूप आज उसके आगे प्रकट हो रहा था। उसके खल-नायकत्व के भीतर छिपे हुए गंभीर व्यक्तित्व का थोड़ा-सा आभास उसे पहले भी मिल चुका था। पर आज का रूप कुछ दूसरा ही था। "आप ठीक कहते हैं," गिरिजा ने उसी भावमग्नता के साथ कहा। "आपकी बात में बहुत ही महत्त्व-पूर्ण और गंभीर तथ्य भरा है। पर यह सब समझते हुए भी प्रत्यक्ष में उन लोगों की वह दयनीय दशा, वह करुण रूप देख कर नहीं रहा जाता। वे बेचारे इन सब सामाजिक सिद्धांतों को क्या समझें। उनके लिए तो अपनी तत्काल की समस्या—पेट की समस्या—को छोड़ कर दूसरी कोई समस्या जीवन में है ही नहीं। और कैसी शोचनीय स्थिति है उनकी, तनिक सोचिये तो सही! औरतों के पास लाज ढकने को पूरे कपड़े नहीं हैं, उनके बच्चों के लिये खेल की दुनिया का कोई अस्तित्व ही नहीं है—खेलने का अवकाश ही उन्हें कहाँ है! दिन-भर की चिरौरी के बाद दो पैसे मिलने की आशा के पीछे-पीछे उन्हें भटकते रहना होता है। सत्तर-सत्तर, अस्सी-अस्सी बरस के चलते-फिरते हड्डी के ढाँचे भी एक कौर की जुगत कर पाने की प्रत्याशा से एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन, एक सड़क से दूसरी सड़क का चक्कर काटते फिरते हैं। छोटे-छोटे दुधमुँहे बच्चे अपनी माताओं की गोदों में दूध के अभाव से बिलबिला रहे हैं। ये भी मनुष्य हैं और यह भी जीवन है!...मैंने दो-एक रुपये बाँट दिये तो वही उनके

लिये एक बहुत बड़ी नियामत—बहुत बड़ा पर्व हो गया !..."

हेमकुमार ने देखा, गिरिजा की आँखें डबडबा आयी थीं।

"देखिये, फिर आपकी भावुकता का बाँध खुल गया !"

गिरिजा उसकी बात सुन कर ऊपर से मुस्कराती हुई भी अधिकाधिक आँसू बहाती चली गयी। दोनों अनमने भाव से टहलते हुए बहुत दूर, प्लेटफार्म के एकदम दूसरे सिरे पर पहुँच गये थे। उसी अनमने भाव से दोनों सहसा रुक गये।

"मैं आपसे आंतरिक प्रार्थना करता हूँ, कुमारी जी", हेमकुमार ने कहा, "आप आज की इस घटना को एक अत्यंत साधारण बात मान कर उसे एकदम भूल जाइये। यदि आपको अपने भीतर करुणा ही उभाड़नी है—और यदि अपने भीतर करुण भाव उभाड़ कर आपको सचमुच संतोष मिलता है—तो मेरे साथ चलिये, मैं इसी बंबई शहर में आपको जीवन के ऐसे ऐसे पहलुओं, ऐसे-ऐसे दृश्यों से प्रत्यक्ष परिचित करा दूँगा कि रोते-रोते आपके आँसुओं का सागर ही रीता हो जायगा ! अभी आपने जीवन देखा कहाँ है कुमारी जी ! अभी तो आप घोंसले से निकल ही रही हैं। अभी जीवन के ऐसे-ऐसे कड़वे तथ्यों से आपको परिचित होना होगा कि आप में इच्छा-शक्ति की कमी होने पर आपकी जीभ से फिर वह तीतापन कभी छूटेगा ही नहीं। इसलिये अभी से भावुकता के आवेग में बह न जाइये—नये अनुभवों के लिये साहस बटोर कर अभी से तैयार हो जाइये ! यह लीजिये, गाड़ी भी आ गयी। चलिये हम लोग पीछे की ओर लौट चलें..."

२६

बिजली-परिचालित गाड़ी घड़घड़ाती हुई प्लेटफार्म पर आ लगी। यात्रियों के उतरते ही दोनों एक प्रथम श्रेणी के डब्बे के भीतर चढ़ गये। एक गद्देदार बेंच पर, जिस पर केवल दो आदमियों के बैठने की जगह थी, दोनों बैठ गये। गाड़ी के चलने तक दोनों मौन बैठे रहे। जब गाड़ी चल पड़ी तब हेमकुमार ने गिरिजा को बताना शुरू किया कि जिस आदमी से वे लोग मिलने जा रहे हैं वह किस तरह का है, उसका क्या हुलिया है और शील-स्वभाव कैसा है।

"आदमी है पक्का बनिया," हेमकुमार कह रहा था, "और स्वभावतः अपना स्वार्थ खूब अच्छी तरह समझता है। मूर्ख वह कतई नहीं है। जानता है कि किस अभिनेता या अभिनेत्री को नियुक्त करने से वह जनता से अधिक से अधिक से पैसे खसोट सकेगा। यह होने पर भी आज तक वह प्रसिद्ध तारिकाओं को ही नियुक्त किये रहता था, हालाँकि उन्हें बहुत लंबी-लंबी रकमें उसे देनी पड़ती हैं, और जितना रुपया एक फिल्म में उसे लगाना पड़ता है उस हिसाब से अधिक आय नहीं होती, पर घाटा भी कभी नहीं होता। और घाटे से बचने के लिये और अपने को सुरक्षित स्थिति में रखने के लिये ही वह ख्याति-प्राप्त अभिनेत्रियों से संबंध तोड़ने का साहस आज तक नहीं कर पाता है। पर इधर दूसरी कम्पनियों को कुछ नयी और अपेक्षाकृत सस्ती तारिकाओं को नियुक्त करके उसकी जमी हुई कम्पनी से भी अधिक लाभ उठाते देख कर उसका विचार बदला है। वह अब सुयोग्य नयी तारिकाओं को नियुक्त करने के लिये बहुत उत्सुक हो उठा है। मैंने आपके सम्बन्ध में उससे बातें की थीं।

आपके सम्बन्ध में उसकी दिलचस्पी बहुत बढ़ गयी है। मुझे पूरा विश्वास है कि आपसे मिल कर, वह बहुत खुश होगा और बड़ी प्रसन्नता से आपको नियुक्त कर लेगा। केवल एक बात है, आपको उतना रुपया वह कभी नहीं देगा, जितना कि पुरानी जमी हुई तारिकाओं को देता रहा है। उतना क्या, उसका आधा भी देना चाहेगा या नहीं, इसमें सन्देह है......"

"उन ख्याति-प्राप्त तारिकाओं को एक फिल्म के लिये वह कितना देते रहे हैं?" गिरिजा ने धीरे से, तनिक उदासीन से लगने वाले स्वर में, पूछा।

"लाख, सवा लाख तक भी वह देता रहा है।"

"और मुझे, आपके अनुमान से, कितना तक देना चाहेंगे?"

"मेरा ऐसा खयाल है कि वह पचीस-तीस हजार से शुरू करेगा। पर आप चालीस हजार से कम पर किसी भी हालत में राजी न हों।"

गिरिजा को पचीस-तीस हज़ार भी काफी बड़ी रकम मालूम हो रही थी। अपनी कला-सम्बन्धी योग्यता का आर्थिक मूल्यांकन उसने कभी नहीं किया था, और अभी तक जीवन का इतना कम अनुभव उसे रहा कि पचीस-तीस हजार और एक लाख में व्यावहारिक दृष्टि से क्या अंतर पड़ता है, इसका ठीक-ठीक अंदाज लगा सकना उसके लिये संभव भी नहीं था। फिर भी उसने हेमकुमार की बात गाँठ बाँध ली।

इसके बाद हेमकुमार ने एक-एक करके कई तारिकाओं के किस्से उसे सुनाये। वे सब पहले क्या थीं, कैसे उन्होंने सिनेमा में प्रवेश किया, पहली फिल्म के लिये प्रत्येक ने कितना रुपया स्वीकार किया और बाद में अर्थ और ख्याति की दृष्टि से किसने कितनी तरक्की की।

प्रत्येक का इतिहास बहुत दिलचस्प था। गिरिजा बड़े ध्यान से सुन रही थी। कई स्टेशन आये और गये, पर किस्से समाप्त न हुए। अंत में अँधेरी भी आ पहुँचा। दोनों उतर पड़े। स्टेशन के बाहर पहुँच कर हेमकुमार ने एक टैक्सी की और उससे निर्दिष्ट स्टूडियो चलने के लिये कहा।

स्टूडियो बहुत दूर नहीं था। वहाँ पहुँचने पर हेमकुमार उतर पड़ा और गिरिजा से उसने कुछ देर टैक्सी में ही ठहरे रहने के लिये कहा। कुछ ही देर बाद वह साँवले रंग के, धोती, कुर्ता और कोट पहने हुए एक अधेड़ सज्जन के साथ बाहर आया। हेमकुमार ने गिरिजा से उतर जाने के लिये इशारा किया और इशारे से ही बताया कि वह वही सज्जन हैं जिनसे उसे मिलना है। टैक्सी का दरवाजा हेमकुमार ने स्वयं खोल दिया और गिरिजा उतर पड़ी। उसके उतरते ही अधेड़ सज्जन ने बड़े ही मीठे ढंग से मुस्कराते हुए उसकी ओर हाथ जोड़े और कहा: "आइये देवी जी, पधारिये!" हेमकुमार ने उनका परिचय कराते हुए कहा: "आप श्री शंकरलाल गर्ग हैं। आप ही...फिल्म कंपनी के सत्त्वाधिकारी हैं। यह स्टूडियो भी आप ही का है। और आप हैं गिरिजाकुमारी जी, जिनकी चर्चा मैंने आपसे की थी।"

"चलिये भीतर बैठा जाय", शंकरलाल जी ने उसी मीठी मुसकान के साथ कहा। गिरिजा शंकित पगों से उनके पीछे-पीछे चलने लगी। कुछ ही देर बाद उन लोगों ने एक कुटियानुमाँ बँगले में प्रवेश किया। कमरा बहुत साधारण था। चार-पाँच साधारण-सी कुर्सियाँ और उसी ढंग की एक मेज वहाँ पड़ी हुई थी। "विराजिए!" शंकरलाल जी शुद्ध हिंदी में बोले। गिरिजा एक कुर्सी खींच कर

बैठ गयी। शंकरलाल जी ने हेमकुमार से कहा : "तुम जाओ। 'लीला' की शूटिंग चल रही है, जा कर देखो कि काम ठीक से हो रहा है कि नहीं।"

हेमकुमार ने गिरिजा से कहा : "मैं जा रहा हूँ। अभी लौट कर आता हूँ। तब तक आप बैठे रहियेगा।" कह कर चला गया।

"हाँ, तो देवी जी, आप आजकल कहाँ हैं, क्या करती हैं?" चीनी से भी मीठी और मक्खन से भी कोमल मुसकान मुख पर झलकाते हुए शंकरलाल जी ने पूछा।

गिरिजा को उनकी वह मुसकान अत्यंत अरुचिकर लग रही थी। उसे देखते ही उसका सारा मन सिकुड़ा जाता था—जैसे कोई बड़ी ही घिनौनी चीज वह देख रही हो। पर ऊपर से वह अत्यंत शांत और प्रसन्न मुद्रा बनाये रही। उसने सहज भाव से उत्तर दिया : "मैं यहीं एम० ए० में पढ़ती हूँ और...होस्टल में रहती हूँ।"

"बड़ी खुशी हुई यह जान कर। अच्छा देवी जी, आप क्या यह बताने की कृपा करेंगी कि नृत्य और गीत में भी कभी आपकी दिलचस्पी रही है?"

"जी हाँ, मैं जिस क्लब की सदस्या रही हूँ, वहाँ नृत्य, संगीत और नाट्य-कला को विशेष महत्त्व दिया जाता है। स्टेज में भी मैंने काम किया है," अत्यंत शांत भाव से गिरिजा ने कहा, यद्यपि भीतर-ही-भीतर वह उन अज्ञात कुलशील सज्जन के सामने एकांत कमरे में बैठी हुई एक विचित्र सी बेचैनी का अनुभव कर रही थी। उनके साँवले मुख पर चीनी से भी मीठी मुसकान देख कर उसे उबकाई सी आ रही थी।

"बहुत खुशी हुई यह जान कर," शंकरलालजी ने प्रायः

पुलकित भाव मुख पर झलकाते हुए कहा। "अच्छा देवीजी, आपका सबसे प्रिय विषय क्या है, क्या मैं जान सकता हूँ ?"

"एम० ए० में मैंने अँगरेजी साहित्य को अपना विषय चुना है," आधी दृष्टि से शंकरलालजी की ओर देखती हुई गिरिजा धीरे से बोली।

"ओह, यह तो आपने मेरे मन का विषय बताया ! मुझे भी अँगरेजी साहित्य से बहुत प्रेम है। टेनीसन का 'ओड टु दि स्काइ-लार्क' आपने अवश्य ही पढ़ा होगा। कैसी सुन्दर कविता है ! पढ़ कर आदमी आकाश में उड़ान भरने लगता है।"

"जी, यह कविता टेनीसन की नहीं शेली की है।"

"हाँ, हाँ, ठीक, ठीक ! याद आ गया, यह शेली की कविता है। पर टेनीसन ने भी तो शायद कोई कविता इसी तरह की लिखी थी !......"

गिरिजा ससंकोच मंद-मंद मुस्कराती हुई, जान-बूझ कर चुप रही।

"वहरहाल", शंकरलालजी बोले, "यह बात आपके व्यक्तित्व के अनुरूप ही है कि आपको साहित्य, संगीत और कला से प्रेम है। हाँ, तो देवीजी, सबसे जरूरी बात जो मैं आपसे जानना चाहता हूँ वह यह है कि फिल्मी दुनिया में भी आप कुछ दिलचस्पी लेती हैं या नहीं।"

"मैं इधर फिल्मों में काफी दिलचस्पी ले रही हूँ......"

"आप हमारे किसी एक फिल्म में काम करना पसंद करेंगी ?"

"अवश्य ! पर एक शर्त के साथ..." पक्के व्यापारिक ढंग से गिरिजा ने कहा।

"वह शर्त क्या है ?"

"मैं केवल प्रधान नायिका के ही रूप में अभिनय कर सकती हूँ।"

"ठीक! मैं स्वयं यही सोच रहा था।"

इतने में एक नौकर एक ट्रे में चाय ले कर आ पहुँचा।

"लीजिये देवी जी, चाय पीजिये। बंबई के जीवन का आधार एक मात्र यही पेय है। मुझे यदि प्रत्येक घंटे बाद एक प्याला चाय न मिले तो न कुछ सोच सकता हूँ, न कोई काम कर सकता हूँ। लीजिये," कह कर शंकरलालजी ने एक प्याला गिरिजा की ओर बढ़ा दिया। गिरिजा ने बिना तकल्लुफ के धीरे से पीना शुरू कर दिया।

शंकरलालजी एक घूँट लेने के बाद ही बोल उठे: "मुझे कितनी खुशी हुई है आज आप से मिल कर, मैं कह नहीं सकता। सच मानिये देवीजी, मैं कोई चापलूसी नहीं करता—आपके व्यक्तित्व से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ। एक 'बिजनेसमैन' को इस तरह की बात कहनी नहीं चाहिये, पर मैं चाह कर भी अपने मन के भाव को छिपा नहीं पाता हूँ। मैंने सोचा था कि प्रारंभिक परीक्षा लेने के बाद सोचूँगा कि आपसे कंट्रेक्ट करना चाहिये या नहीं। पर इतनी ही देर में मैंने अपनी अंतर्बुद्धि से यह जान लिया है कि आपसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति नयी फिल्म के लिये हमें मिल नहीं सकता। इसलिये मैं चाहता हूँ कि आज ही सब बातें तय हो जायँ। अच्छा तो आप अपने 'टर्म्स' बता दीजिये..."

"पहले आपही बताइये," पक्के व्यापारी की तरह गिरिजा बोली।

"देखिये देवी जी," तनिक गंभीर मुद्रा में शंकरलाल जी बोले,

"मैं पहले ही कह चुका हूँ मैं आपसे बहुत प्रभावित हुआ हूँ और आपके साथ 'कंट्रेक्ट' करने के लिये उत्सुक हूँ। पर एक बात आपको साफ बता दूँ—और वह आपके हित के लिये ही—कि प्रारंभ में हम आपको अधिक नहीं दे सकेंगे और न आपको ही अधिक की माँग करनी चाहिये—अगर आप फिल्मी दुनिया में आना चाहती हैं तो।"

गिरिजा ने देखा कि शंकरलाल जी का बनिया वाला रूप अब धीरे-धीरे उघड़ने लगा है।

"मैं आपसे यही तो पूछती हूँ कि आप अधिक से अधिक कितना देना चाहेंगे," तीखी, गंभीर और पूरी दृष्टि से शंकरलाल जी की ओर देखते हुए गिरिजा ने कहा।

"पचीस हजार।"

"प्रधान नायिका को केवल पचीस हजार? चाहे कोई ऐक्ट्रेस नयी ही क्यों न हो, वह जब प्रधान नायिका के रूप में अवतरित होने की योग्यता रखती हो और जब उसे अपने ऊपर पूरा विश्वास हो तब वह कदापि इतनी कम रकम पर राजी नहीं हो सकती," कहते हुए गिरिजा को अपने आत्म-विश्वास पर स्वयं आश्चर्य हो रहा था।

"तो आप कम से कम कितना चाहेंगी?" शंकरलाल जी की मीठी मुसकान में कुछ खट्टापन आ गया था।

"मैं कम-से-कम चालीस हजार लूँगी, इससे एक कौड़ी कम नहीं। इससे कम रकम स्वीकार करना मैं अपने आत्म-सम्मान के नीचे समझती हूँ।" उसके मुख पर प्रगाढ़ गांभीर्य वर्तमान था, हालाँकि यह सोच कर उसके भीतर के किसी एक छिपे हुए स्थान में गुदगुदी उठ रही थी कि रकम के आँकड़ों की किस विशेष रेखा तक आत्म-सम्मान कायम रहता है और उसके नीचे कैसे वह गिर

जाता है, इस बात की नाप जोख उसने खूब की !

"तब अच्छी बात है, मुझे इस सम्बन्ध में सोचने के लिये एक दिन की मोहलत दीजिये। मैं आपकी स्पष्टवादिता से बहुत प्रसन्न हूँ," शंकरलाल जी ने कहा। और वास्तव में गिरिजा के आत्म-विश्वास और अपनी बात पर जोर देने का विशेष ढंग देख कर शंकर-लाल जी बहुत प्रभावित हुए थे।

"तो इस समय मैं चलती हूँ। आप कृपया हेमकुमार जी को बुला दीजिये," गिरिजा ने कहा। "और आप अपने निर्णय से दो-एक दिन बाद अवश्य ही हेमकुमार जी को सूचित कर दीजियेगा, ताकि मैं अधिक समय तक अनिश्चित स्थिति में न रहूँ।" कह कर वह उठने लगी।

शंकरलाल जी ने देखा कि वह तनिक भी इस बात के लिये लालायित नहीं है कि उसे 'कंट्रैक्ट' मिल ही जाय। इसके पहले वह इसी सिलसिले में कई लड़कियों से 'इंटरव्यू' कर चुके थे। उनमें सभी तो नहीं, पर कई लड़कियाँ ऐसी थीं जो चेहरे से और ऊपरी गुणों से फिल्म के लिये काफी योग्य ठहरती थीं। पर उनमें एक भी लड़की ऐसी नहीं थी जिसे अपने ऊपर पूरा विश्वास हो या जो अपनी आन पर डटे रहना चाहती हो। वे सभी फिल्मी दुनिया में प्रवेश करने के लिये इस कदर उत्सुक थीं कि किसी भी शर्त पर 'कंट्रैक्ट' के लिये राजी थीं—पन्द्रह बीस हजार तक में भी वे आसानी से राजी हो जातीं, ऐसा आभास शंकरलाल जी को मिल चुका था। पर गिरिजा चाहे रूप-रंग में उनमें से कुछ विशेष लड़कियों के मुकाबले में न भी ठहर सके, किन्तु व्यक्तित्व में, तेजस्विता में, चारित्रिक दृढ़ता में और दूसरे भीतरी गुणों में वह उन सब को मीलों पीछे छोड़ जाती थी, यह बात

शंकरलाल जी की अनुभवी आँखों से छिपी न रही। और फिल्म के लिये बाहरी दृष्टि से भी उसकी आकृति बहुत अनुकूल पड़ेगी, यह समझने में भी उन्हें देर न लगी।

"तनिक और बैठिये, देवी जी, इतनी जल्दी क्या है। हेमकुमार को मैं बुलाता हूँ। आपके और हमारे बीच व्यावसायिक बात तय हो चाहे न हो, पर आप हम पर कृपा तो बराबर ही बनाये रहें। किसी भी कारण से आप नाराज न हों, यह मेरा आंतरिक अनुरोध आपसे है।

गिरिजा धीरे से बैठ गयी। एक तीखी, व्यंग-भरी मुसकान उसकी आँखों में झलक उठी। "व्यावसायिक संबंध को छोड़ कर और कोई भी दूसरा सम्बन्ध हम दोनों के बीच न है, न होने की संभावना है, कृपया इस बात को न भूलें।"

"मित्रता का सम्बन्ध भी नहीं!"

"जी नहीं। अभी इसकी कोई विशेष आवश्यकता मैं नहीं समझती, न इसके लिवे अभी कोई कारण ही मेरे सामने है। अभी यह प्रमाणित नहीं हुआ है—इसके लिये अवसर ही नहीं मिला है—कि हम दोनों एक दूसरे के प्रति मित्रोचित सहृदयता पाने और निभाने के योग्य हैं।" उसकी तीखी चितवन बहुत चुभती हुई थी।

"बहुत अच्छे! आपने बहुत ही सुन्दर बात बड़े ही अच्छे ढंग से—एक जन्मजात अभिनेत्री की पूरी नाटकीय कला के साथ—कही है। मेरी बधाई स्वीकार करें। चलिये मैं आप को हेमकुमार के पास ले चलता हूँ। वहीं आप हमारी नयी आने वाली फिल्म 'लीला' की शूटिंग भी देख लेंगी।"

गिरिजा उठ खड़ी हुई। शंकरलालजी के साथ वह कुछ ही दूर

गयी होगी कि सामने से हेमकुमार आता हुआ दिखायी दिया।

"यह लीजिये, बिना बुलाये ही आ पहुँचा आपका मित्र!" 'मित्र' शब्द पर तनिक व्यंगात्मक ढंग से हलका-सा जोर देते हुए शंकरलालजी ने कहा। फिर हेमकुमार की ओर मुख करके बोले: "तुम्हारे चले जाने से देवीजी बहुत घबरायी हुई थीं। तुम इन्हें मेरी 'कार' में होस्टल पहुँचा आओ। फिर लौट कर मेरे पास आना। तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं।"

"अच्छी बात है", कह कर हेमकुमार ने गिरिजा से अपने साथ चले चलने के लिये संकेत किया।

गिरिजा ने शंकरलाल जी की ओर उदासीन भाव से—शायद केवल शिष्टाचार निभाने के लिये—हाथ जोड़े। प्रत्युत्तर में शंकर-लालजी ने भी हाथ जोड़ते हुए बड़े उत्साह-भरे स्वर में कहा: "नमस्ते देवीजी, नमस्ते! बहुत ही प्रसन्नता हुई आपसे मिल कर। मुझे पूरा विश्वास है कि 'हम लोगों' के प्रति आपकी नाराजगी बहुत जल्दी दूर हो जायगी। अच्छा नमस्ते!" कह कर उन्होंने दुबारा अपने जुड़े हुए हाथों को आदर के साथ ऊपर उठाया।

जब दोनों 'कार' पर बैठ गये और 'कार' रवाना हो गयी तब हेमकुमार ने बड़ी उत्सुकता से पूछा कि शंकरलाल जी से उसकी क्या बातें हुईं। गिरिजा ने अक्षर-अक्षर शंकरलाल जी के प्रश्नों और अपने उत्तरों को दुहरा दिया और साथ ही यह भी बता दिया कि उसने स्वयं किस ढंग से किस मुद्रा में और किस स्वर में उनकी बातों का उत्तर दिया था और शंकरलाल जी ने उन्हें किस भाव से ग्रहण किया था।

हेमकुमार बड़े गौर से सुनता रहा। जब सब सुन चुका तब

वह बहुत प्रसन्न भाव से बोला : "मैं शंकरलाल जी के स्वभाव से बहुत अच्छी तरह परिचित हूँ। वह पक्के व्यवसायी हैं, संदेह नहीं, और शायद इसीलिये अपने मतलब के आदमी को पहचानने में उनसे कभी चूक नहीं होती। मुझे पूरा विश्वास है कि वह आपकी शर्त बड़ी ही प्रसन्नता से मान लेंगे। आपकी बातों से मैं यह अनुमान लगा सकता हूँ कि एक ही बार की भेंट से वह आपके सभी गुणों का आभास पा गये हैं। देखिये, आज ही उनसे मेरी बातें होंगी, तब पता लग जायगा।"

होस्टल के फाटक तक गिरिजा को पहुँचा कर हेमकुमार यह कह कर लौट गया कि "कल तीन बजे दिन में आप फिर चर्चगेट स्टेशन पर मिलें।"

२७

दूसरे दिन भी गिरिजा हेमकुमार से पहले ही स्टेशन पर पहुँच गयी। उस दिन वह दस रुपये का एक नोट भँजा कर बहुत-सी रेजकारी अपने साथ ले गयी। भिखारियों ने उसे देखते ही पहचान् लिया और पिछले दिन की तरह उस दिन भी छोटे-छोटे बच्चों से बुड्ढे भिखारियों तक, सभी ने उसे घेर लिया। वह पर्स से एक-एक सिक्का निकाल कर प्रत्येक भिखारी को देती जाती थी। वह सिक्का छाँटती नहीं थी, जिसके भाग में जो निकल आता—इकन्नी, दुअन्नी, चवन्नी या अठन्नी—वह बिना देखे या परखे दे देती।

जब हेमकुमार पहुँचा तब उसने धीरे से झिड़क कर भिखारियों को भगाना चाहा। पर वे टस से मस न हुए। "ओ माई मुझे, ओ रानी इधर!" कहते हुए कई भिखारी एक दूसरे को धक्का दे कर एक

साथ हाथ फैलाये हुए बड़ी ही व्याकुलता से गिड़गिड़ा रहे थे।

"यह आपने बड़ी खराब बीमारी पाल ली है," हेमकुमार ने बहुत दुःख-भरे स्वर में कहा। "अब ये लोग रोज आते-जाते आपको परेशान किया करेंगे।" और यह कह कर उसने कड़े स्वर में भिखारियों को डाँट कर भगाना आरंभ कर दिया।

जब सभी भिखारी हट गये तब गिरिजा ने शांत भाव से कहा : "मुझे कुछ भी परेशानी नहीं होती। बल्कि उन दीन-हीन अनाथों को कुछ दे देने से मेरी आत्मा को संतोष होता है।"

"इस संतोष के खिलाफ मुझे कुछ नहीं कहना है, पर इतना आप जान लें कि इसका मूल्य चुकाने के लिये आपको बहुत बड़ी अशांति मोल लेनी होगी।"

"इसके लिये वह 'बहुत बड़ी' अशांति भी मुझे सहर्ष स्वीकार होगी", कहती हुई वह हेमकुमार के खीझ-भरे मुख की ओर दुष्टता से मुस्कराती हुई आँखों से देख रही थी।

"तब ठीक है, मुझे कोई शिकायत नहीं है", अपनी खीझ को बरबस पीने की चेष्टा करते हुए हेमकुमार ने कहा। "अब चलिये, मैं टिकट खरीद लाया हूँ।"

"कहाँ चलना होगा?"

"आज भी अँधेरी जाना होगा। शंकरलाल जी ने आपको बुलाया है। वह आपकी सब शर्तें मानने को तैयार हैं। आज कंट्रेक्ट फार्म पर हस्ताक्षर करना होगा।"

गिरिजा भिखारियों के प्रसंग से ऐसी अनमनी हो गयी थी कि वह सचमुच ही यह भूल गयी थी कि वह स्टेशन क्यों आयी है। पिछले दिन शंकरलाल जी से जो बातें हुई थीं उन्हें भी वह इस तरह

भूल गयी थी जैसे वे किसी पिछले जन्म की बातें हों। हेमकुमार के याद दिलाने पर उसका सारा व्यक्तित्व ही जैसे बदल गया—भीतरी और बाहरी, दोनों रूपों से। उसके मुख पर से दुष्टता के सारे चिह्न एकदम लुप्त हो गये और प्रगाढ़ गंभीरता छा गयी।

हेमकुमार को उसके मुख का वह आकस्मिक परिवर्तन देख कर अत्यंत आश्चर्य हुआ। "क्यों, क्या हो गया आपको ?" उसने पूछा।

"कहाँ ! कुछ भी तो नहीं हुआ !" गिरिजा ने धीरे से कहा।

"आपके मुख का रंग ही एकदम बदल गया है। मैं तो सोचता था कि मैं जब आपको यह सुसमाचार सुनाऊँगा तब आप पुलकित हो उठेंगी। पर आप तो ऐसे स्तब्ध हो गयी हैं जैसे मैंने किसी के मरने का समाचार आपको सुना दिया हो। चलिये, प्लेटफार्म के भीतर चला जाय।"

अँधेरी को जाने वाली गाड़ी भीतर खड़ी थी। दोनों पहले दर्जे के डिब्बे में बैठ गये। गिरिजा एकदम मौन, गंभीर और अनमनी सी, निश्चल स्थिति में बैठी रही।

"कुमारी जी, आप क्या सोच रही हैं, कुछ बताइये तो सही," विस्मय-विमूढ़ भाव से हेमकुमार ने पूछा। "अचानक आपका भाव ऐसा बदल गया है कि मैं तो कुछ समझ ही नहीं पा रहा हूँ। इतनी बड़ी खुशखबरी ले कर मैं आया हूँ और आप मेरा इस तरह स्वागत कर रही हैं !"

"हेमकुमार जी, आपको सच बताऊँ ? आप विश्वास करेंगे ?" उसी गंभीर भाव से गिरिजा ने कहा।

"क्यों नहीं !" और अधिक विस्मत हो कर हेमकुमार बोला।

"आपने अभी कहा कि 'आप तो ऐसे स्तब्ध रह गयीं जैसे मैंने

किसी के मरने का समाचार सुनाया हो।' बुरा न मानें और मेरी बात का कोई दूसरा अर्थ न लगायें, पर बात मुझे सचमुच ऐसी ही लगी। आपके मुँह से यह संवाद सुनने के बाद मुझे सचमुच कुछ इसी तरह लगता है जैसे गिरिजा मर गयी और उसके भीतर किसी दूसरे की आत्मा प्रवेश करने जा रही है। फिल्मी दुनिया में प्रवेश करने पर निश्चय ही मेरी काया-पलट हो जायगी और मेरे आज तक के जीवन का सारा क्रम उलट जायगा, सारे संबंध टूट या छूट जायेंगे, सारे स्वप्न बदल जायेंगे, यहाँ तक कि मेरी सारी आत्मा ही बदल जायेगी—अच्छे के लिये या बुरे के लिये, यह भविष्य ही बतायेगा..."

"आप अकारण घबरा रही हैं, कुमारी जी," अपने गंभीर स्वर में अधिक से अधिक नम्रता घोलते हुए हेमकुमार ने कहा। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आप बहुत भावुक हैं। और आपकी उम्र में प्रायः सभी लड़कियाँ शायद भावुक होती हैं। इस उम्र की यह एक बीमारी है, कुमारी जी। यह मैं मानता हूँ कि फिल्मी दुनिया में प्रवेश करने पर आपके जीवन में महान परिवर्तन आयेगा। पर वह परिवर्तन आपके जीवन को सच्ची प्रगति की ओर मोड़ने में सहायक सिद्ध होगा न कि ह्रास और पतन की ओर पीछे ले जाने में। मनुष्य की रूढ़िवादी प्रगति किसी भी परिवर्तन से कतराती है—उसे सहज में स्वीकार नहीं करना चाहती। पर इस आदिम प्रवृत्ति से संघर्ष करके उस पर विजयी होना ही तो सच्ची मनुष्यता की निशानी है। यह बात भी सही है कि फिल्मी दुनिया बदनाम है और उससे संबंध स्थापित करने का अर्थ ही चारित्रिक भ्रष्टता समझा जाता है; पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जिस व्यक्ति में चारित्रिक

दृढ़ता हो उसके लिये वहाँ किसी बात के भय का कोई भी कारण नहीं है। आप कैसी ही भावुक क्यों न हों, मैं देख चुका हूँ कि आपके भीतर चारित्रिक दृढ़ता की कोई कमी नहीं है। इसलिये वह आपके लिये खतरे का क्षेत्र नहीं, बल्कि वास्तविक उन्नति की ओर एक बहुत ऊँची और लंबी उड़ान भरने का आधार-बिंदु—वर्तमान की संकीर्ण परिधि से भविष्य के विस्तृत जीवन की ओर प्रस्थान करने का—सिद्ध होगा।"

"अर्थात् महाप्रस्थान की तैयारी करने के लिये 'ट्रेनिंग ग्राउंड' सिद्ध होगा?" कहते हुए एक कटीले व्यंग की तीखी मुसकान गिरिजा की आँखों में झलक उठी।

हेमकुमार ने अंतर की परिपूर्ण गंभीरता से जो बात कही थी उसे जब गिरिजा ने इस तरह चुटकी में उड़ा दिया तब उसे एक धक्का-सा लगा, यद्यपि गिरिजा की गुरु-गंभीर मुद्रा को मुसकान में बदलते देख कर उसे प्रसन्नता ही हुई।

"आप जब मेरी गंभीर बात को इस तरह परिहास में लेती हैं तब इस संबंध में आपसे कुछ अधिक कहना व्यर्थ ही है। फिर भी मेरा आपसे निवेदन है कि आप मेरी बात पर फिर कभी एकांत में ध्यान से विचार करें···" कह कर हेमकुमार चुप हो गया।

गिरिजा के मुख पर फिर पहले की तरह गंभीरता छा गयी थी, लगता था जैसे वह सचमुच हेमकुमार की बात पर गंभीरता से विचार करने लगी हो।

स्टेशन के बाद स्टेशन पीछे पड़ता जाता था और यात्रियों का चढ़ना-उतरना निरंतर जारी था। पर गिरिजा का ध्यान ही जैसे भंग नहीं होता था। अंत में जब अँधेरी स्टेशन आया तो हेमकुमार ने

उसका ध्यान भंग किया और उतरने के लिये कहा। गिरिजा हड़-बड़ाती हुई उठी। सहसा उसकी मुद्रा फिर बदल गयी। फिर परिहास और व्यंग-भरी चंचल मुसकान से उसका सारा मुख उज्ज्वल हो आया। उसके भीतर के सारे भय, ग्लानि और पश्चात्ताप की भावना को जैसे किसी ने धो कर पोंछ दिया हो।

"इस 'अँधेरी' में आपके मुख पर उजाला देख कर मुझे बड़ा बल मिला है, नहीं तो आपका गंभीर रूप देख कर तो मैं अपने को जैसे अपराधी समझने लगा था!" हलका-सा छींटा कसते हुए ट्रेन से उतरने पर हेमकुमार ने कहा। गिरिजा उसी तरह मौन भाव से मुस्कराती रही, कुछ बोली नहीं।

स्टेशन से बाहर निकल कर एक टैक्सी पर बैठ कर दोनों शंकर-लाल जी के स्टूडियो की ओर चल दिये। तब तक गिरिजा का चित्त स्थिर और शांत हो गया था और आत्म-विश्वास फिर से पूरे तौर से जग उठा था।

२८

उस दिन जब गिरिजा 'कंट्रेक्ट' फार्म पर हस्ताक्षर करके लौटी तब होस्टल में न जा कर सीधे घर पहुँची। हेमकुमार ने जब उसे सूचित किया था कि शंकरलाल जी उसकी सारी शर्तें मानने को तैयार हैं तब जो गंभीर अवसादमूलक प्रतिक्रिया उसके मन पर हुई थी उसका लेश भी अब नहीं रह गया था, बल्कि उसके विपरीत इस समय उसके उल्लास का ठिकाना नहीं था, वह आते ही झमिया के गले से लिपट गयी। झमिया के लिये यह एकदम नया अनुभव था। गिरिजा का व्यवहार उसके प्रति बराबर रूखा और

अत्यंत उपेक्षापूर्ण रहा था । माँ के गले से लिपटना तो दर-किनार, वह कभी स्नेह से भरे दो शब्द भी झमिया से नहीं बोली थी। झमिया पिछले कुछ वर्षों से इस बात के लिये तरसती रह गयी थी कि गिरिजा उससे केवल एक प्यार-भरी मीठी वाणी में 'अम्माँ' कह कर पुकारे। पर गिरिजा या तो उससे बोलती ही न थी, या यदि कभी किसी चीज की आवश्यकतावश बोलती भी थी तो भौंहें सिकोड़ कर और झिड़क कर । इसलिये जब आज गिरिजा आते ही अपनी पुलकित दृष्टि में निश्छल उल्लास छलकाती हुई प्यार से लबालब भरे स्वर में "अम्माँ!" कह कर उससे लिपट गयी तब उसे अपने उस कल्पनातीत सौभाग्य पर विश्वास ही नहीं होता था। वह समझ नहीं पाती थी कि आनन्द का जो मुक्त प्रवाह उसके भीतर उमड़ उठा है वह उसके छोटे से हृदय में कैसे समायेगा। उसकी मुसकाती हुई आँखों से स्नेह और हर्ष के आँसू छलक उठे और उसने भी बिटिया को दोनों बाँहों से जकड़ कर छाती से कस लिया। आनन्द के आँसू उसके दोनों गालों से हो कर लुढ़कते चले जा रहे थे । उन्हें पोंछने को तीसरा हाथ उसके पास नहीं था।

दोनों माँ-बेटी कुछ समय मौन भाव से केवल अपने हृदयों की धड़कनों द्वारा एक-दूसरे की अन्तर की नीरव रहस्य-भरी बातें सुनाती रहीं । प्रारंभिक उल्लास जब शांत हुआ तब गिरिजा एक हाथ से उसका सिर सहलाने लगी और दूसरे हाथ से उसकी पीठ थपथपाती रही।

"अम्माँ, मैंने कालेज छोड़ने का निश्चय कर लिया है," प्राथमिक आवेग कुछ शांत हो जाने पर गिरिजा ने धीरे से कहा।

"क्यों?" झमिया ने उसी तरह गिरिजा की पीठ थपथपाते हुए

आश्चर्य से पूछा।

मैं अब सिनेमा में काम करूँगी।''

''क्यों? पूछते हुए झमिया उसकी पीठ थपथपाना छोड़ कर चकित दृष्टि से उसकी ओर देखती रह गयी। ''तुम वहाँ क्या काम करोगी? और तुम्हें कहीं काम करने की जरूरत ही क्या है? भगवान की किरपा से और अपने चाचा की बदौलत अभी तुम चार आदमियों को अपने यहाँ काम पर रख सकती हो। किसी दूसरे के यहाँ तुम क्यों काम करने जाओगी? इस तरह की बात कभी भूल कर भी न सोचना, बिटिया।'' उसका मुँह अत्यंत गंभीर हो आया था।

''तुम समझी नहीं, अम्माँ, मैं ऐक्ट्रेस बनूँगी, ऐक्ट्रेस!''

''वह क्या होता है, बिटिया?'' झमिया के लिये पहेली और भी जटिल हो उठी थी।

''उस दिन तुम 'दुनिया' नाम की फिल्म देखने गयी थीं न! याद है, वह लड़की जो पहले बड़ी अच्छी हालत में रहती थी, बाद में पति के लापता हो जाने पर बड़े दुख का जीवन बिताती हुई भीख माँगने लगी थी?''

झमिया ने जीवन में जो कुल तीन फिल्में देखी थीं, उनमें एक वह भी थी। उस लड़की की दुर्दशा पर उसने सिनेमा हाल में अविरल आँसू बहाये थे। उसे वह कभी भूल नहीं सकती थी। उसने कहा ''हाँ, खूब अच्छी तरह याद है। तो क्या?''

''उसी की तरह मैं भी काम करूँगी। फिर मेरा भी चित्र तुम सिनेमा के पर्दे पर देखोगी। अब समझीं?'' झमिया को फिर एक बार अपनी दोनों भुजाओं में प्यार से कसते हुए गिरिजा ने कहा।

''अरे बाप रे! उस लड़की की तरह बनने की बात भूल कर

भी मत सोचना, बिटिया! तुम यह सब क्या कर रही हो, मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ। तुम्हारे दुश्मन को भी कभी उस लड़की की तरह न बनना पड़े! न, न, तुम सिनेमा-विनेमा कहीं काम करने न जाओगी। पढ़ने की इच्छा हो तो पढ़ो, नहीं तो चुपचाप घर चली आओ और आराम से खाओ पीओ! इस तरह की बेमतलब की बातों से अपना दिमाग खराब मत करो।" अपने मुख के भाव से अधिक असंतोष प्रकट करने का प्रयत्न करती हुई झमिया बोली।

माँ की बात सुन कर गिरिजा को मन ही मन हँसी भी आयी और साथ ही वह कुछ आशंकित भी हो उठी—यह सोच कर कि कहीं सचमुच अपनी नासमझी के कारण वह हठपूर्वक उसे रोकने पर न तुल जाय। यह वह जानती थी कि उसे सचमुच में कोई रोक नहीं सकता, पर इस बार माँ को अप्रसन्न करके जाने की इच्छा उसे नहीं होती थी।

"अम्माँ, आश्चर्य है कि मेरी बात तुम समझ नहीं पा रही हो। मैं सचमुच में उस लड़की की तरह थोड़े ही बनने जा रही हूँ। और जो वह लड़की भिखारिन बनी थी वह सचमुच में भिखारिन थोड़े ही बनी थी। वह तो केवल भिखारिन का स्वांग बनी हुई थी। वह नाटक कर रही थी। तुमने कभी नाटक देखा नहीं, इसलिये तुम्हें समझाने में कठिनाई पड़ रही है। मान लो, मुझे किसी गाँव की बहू का 'पार्ट' खेलना पड़े। तब मैं एक ठेठ देहातिन के से कपड़े पहन कर ठीक देहाती बहू का सा रूप बना लूँगी। और मान लो कि कहानी में यह हो कि उसका पति किसी बात से उससे नाराज हो कर, या शराब पी कर उसे पीटने लगता है। तब जब वह शराबी मुझे पीटने लगेगा तब मैं घूँघट के भीतर से इस तरह

कहूँगी : 'हाय रे दय्या ! इस निखट्टू मरदुए ने मुझे मार डाला ! कीड़े पड़ें इसके पाँव में ! कोढ़ हो जाय !...'' और उसने सचमुच उसी तरह घूँघट काढ़ कर हाव-भाव से और स्वर से उस विशेष देहाती बहू की ठीक-ठीक नकल उतारते हुए ऐसा नाटक रचा कि झमिया नाराज होना चाहने पर भी बरबस हँस पड़ी।

जब गिरिजा ने नाटक पूरा करने के बाद अपनी टेढ़ी कमर सीधी की तब देखा कि सामने वाले कमरे के दरवाजे से मालती झाँक रही है और उसका नाटक देख कर मुस्करा रही है। चाची को देख कर वह स्वयं भी अपनी नाटकीय कला पर खिलखिला कर हँस पड़ी। उसके बाद बोली : ''चाची, इधर आओ। तुम्हीं तनिक अम्माँ को समझा दो कि ऐक्ट्रेस का क्या काम होता है...''

मालती मंद-मंद मुस्कराती हुई धीरे से झमिया और गिरिजा के पास आ कर खड़ी हो गयी। गिरिजा को देख कर आज वह कुछ-कुछ सकुचा-सी रही थी। गिरिजा का व्यक्तित्व आज उसे इस कदर ऊँचा उठा हुआ लग रहा था कि उसके प्रति एक आदर और संभ्रम का सा भाव उसके मन में छा गया था। तनिक ईर्ष्या का पुट भी उसके उस मनोभाव में संभवतः वर्तमान था, पर स्नेह का अभाव नहीं था। अब वह दो बच्चों की माँ बन चुकी थी और माँ की ममता से भली भाँति परिचित हो चुकी थी। इसलिये झमिया की आँखों से उसे देखने पर मालती के मन में भी उस सुघड़ लड़की के प्रति स्नेह-भावना उमड़ रही थी। वह अपने कमरे से माँ-बेटी की बातें सुन चुकी थी।

''तुम क्या सचमुच 'ऐक्ट्रेस' बनने जा रही हो, बिटिया ?'' उसने सहज स्निग्ध भाव से पूछा।

गिरिजा के मुख पर से परिहास का भाव जाता रहा। उसने भी सहज भाव से उत्तर दिया : "हाँ चाची, बात बिलकुल पक्की हो गयी है।"

"तब तो बड़ी अच्छी बात है" पुलकित भाव से, आँखों में परिपूर्ण प्रसन्नता झलकाते हुए मालती ने कहा। "कब से काम शुरू करोगी!"

"जल्दी ही शुरू होने की बात है, चाची; पर तुम पहले अम्माँ को तो समझा दो कि यह कोई बुरा काम नहीं है, बल्कि सारे देश में इससे मेरा नाम होने और शोहरत फैलने की ही संभावना अधिक है।"

"जीजी क्या कहती हैं?" झमिया की ओर देखते हुए मालती ने पूछा।

"मैं कहती हूँ कि इन सब चक्करों में पड़ने की जरूरत ही क्या है बिटिया को! अगर कालिज में पढ़ना हो तो पढ़े, नहीं तो मैं कहती हूँ कि अब कालिज में पढ़ने की भी क्या जरूरत है। काफी तो पढ़ लिया है। घर आ कर हम लोगों के बीच रहे, खाये, पीये, आराम करे। इतने दिन हो गये, चाचा, चाची और अम्माँ से कतराती फिर रही है। घर पर इसका तनिक भी जी नहीं लगता। अपने चाचा के लिये भी इसके मन में तनिक भी ममता नहीं है, जिन्होंने खिला-पिला कर, पढ़ा-लिखा कर इतना बड़ा किया और हर महीने करीब सौ रुपया इसके पीछे खर्च करते रहते हैं। अब तो यह सयानी हो गयी है। अब तो इसे समझदार होना चाहिये..."

बहुत दिनों से दबी पड़ी शिकायत, बहुत दिनों से बिटिया के प्रति भीतर ही भीतर फूल कर रह जाने वाला मान, झमिया के अंतर से भावावेग के कारण सहसा फूट पड़ा।

गिरिजा सहानुभूतिपूर्ण, दबी हुई मुसकान से उसकी गीली आँखों की ओर देख रही थी। अम्माँ को मान-अभिमान प्रकट करने का पूरा अधिकार है, उसके पास उसके लिये समुचित कारण है, यह तथ्य आज उसका हृदय पूरी तरह स्वीकार कर रहा था। जब से हेमकुमार ने उसे सूचित किया था कि उसके सामाजिक स्तर की निम्नता के कारण फैशनेबुल समाज उसे अत्यंत हीन और उपेक्षा-भरी दृष्टि से देखने लगा है तब से अपने वर्ग वालों के प्रति उसके मन में आंतरिक सहानुभूति उमड़ उठी थी—उस समाज के प्रति जिसका प्रतिनिधित्व—उसकी दृष्टि में—उसकी अम्माँ करती थी। इतने दिनों तक अपनी भोली, स्नेहशीला, कष्टसहिष्णु और उदार-स्वभाव अम्माँ के प्रति वह सचमुच अत्यंत निर्मम भाव से उदासीन—बल्कि विमुख—कैसे बनी रही, सोच-सोच कर गिरिजा ग्लानि और पश्चात्ताप की भावना से अपने ही भीतर सिमटती चली जाती थी। उसकी अपनी क्षुद्रता उसे जैसे स्वयं कचोट रही थी। वह सोचने लगी कि फैशनेबुल समाज की बाहरी तड़क-भड़क के मोह में पड़ कर अपने समाज के प्रति वह केवल उदासीन या विमुख ही नहीं हो गयी थी, बल्कि उसके प्रति एक उत्कट विद्वेष की भावना उसके मन में समा गयी थी। नीचता और नैतिक हीनता के किस निम्नतम स्तर तक वह पहुँच गयी थी! और सचमुच अपनी अम्माँ के अलावा अपने स्नेही चाचा, चाची और किशन को वह भूल गयी थी। कितनी बड़ी अकृतज्ञता थी वह! अम्माँ यदि उसे उलाहना दे रही है, उसके प्रति अभिमान प्रकट कर रही है तो यह उचित ही है। उसकी वह पूरी अधिकारिणी है।

"अम्माँ, मुझसे जो गलती हुई उसके लिये मैं माफी चाहती

हूँ," उसने प्यार और भावुकता से एक-साथ हँसती और रोती आँखों से झमिया की ओर देखते हुए कहा। "मैं मानती हूँ कि मुझसे बहुत नीचता हुई है। इस बार माफ कर दो, अब से ऐसी भूल नहीं होगी। अब से मैं तुम सब लोगों के साथ ही घर ही पर रहूँगी। साथ ही सिनेमा में भी काम करती रहूँगी। बस इतनी सी आज्ञा मुझे दे दो, मेरी भोली, मेरी प्यारी, मेरी अच्छी अम्माँ!" कहते हुए उसने प्यार से झमिया की ठुड्डी पकड़ ली और धीरे से उसे हिलाने लगी।

"तुम जैसा चाहती हो करो, मुझे इन सब बातों में मत घसीटो, मैं कुछ नहीं जानती," गिरिजा के प्यार से पिघलते हुए झमिया ने कहा। "अपने चाचा से पूछना। वह जैसा कहेंगे वैसा करना।"

"चाचा कभी मना नहीं करेंगे। मुझे केवल तुम्हारी आज्ञा चाहिये थी। तुम बहुत अच्छी हो अम्माँ, बहुत अच्छी!" कह कर उसने अपनी अम्माँ के दाएँ गाल पर अपना गाल स्थापित कर दिया।

"पगली कहीं की!" कह कर झमिया हँस पड़ी।

"क्या हो रहा है, भौजी," कहते हुए महावीर ने भीतर प्रवेश किया।

गिरिजा हट कर खड़ी हो गयी। क्षण-भर के लिये वह असमंजस में खड़ी रही। उसके बाद सहसा सीधे महावीर के पास जा कर उसके दोनों पावों को छू कर उसने प्रणाम किया। आज पहली बार उसने महावीर के पाँव छुए थे। आज तक इस तरह की कोई कल्पना ही कभी उसके मन में नहीं जगी। पर आज, जाने क्यों, उसके मन में सहसा यह प्रेरणा जगी कि उसे चाचा के पाँव छूने ही चाहिये। आज वह प्रायः दो महीने बाद महावीर से मिली थी। उसे जब रुपयों

व्यक्ति में दिखायी दे रहा था।

"आज बहुत दिनों बाद दिखायी दी हो, बिटिया, तबीअत तो ठीक रही?"

"हाँ चाचा, तबीअत बिलकुल ठीक थी। मैं कुछ जरूरी कामों में ऐसी फँसी रह गयी कि यहाँ आ नहीं पायी..."

"यह कहती है कि मैं कालिज छोड़ कर सिनेमा में चली जाऊँगी," झमिया बीच ही में बोल उठी।

"सिनेमा जायगी तो उससे कालिज छोड़ने की बात कहाँ पर आती है। सिनेमा देख कर लौट आयेगी और दूसरे दिन फिर कालिज जायेगी।"

"नहीं, तुम समझे नहीं", देवर की समझ में बात आती न देख झमिया ने अच्छे विनोद का अनुभव करके मंद-मंद मुस्कराते हुए कहा: "वह कहती है कि वह सिनेमा में नौकरी करेगी और उस दिन फिल्म में जो लड़की माँ बनी हुई थी उसी तरह वह भी बनेगी..."

"सच? क्यों गिरिजा, क्या भौजी ठीक कह रही हैं?"

"हाँ चाचा", गिरिजा ने शांत भाव से कहा। "मैंने अब काफी पढ़ लिया है। अब आगे पढ़ना बेकार है। एम० ए० की पहले साल की पढ़ाई खतम कर ली है, दूसरे साल की पढ़ाई घर ही पर कर लूँगी और फिर कभी मौका हुआ तो प्राइवेट तौर से इम्तहान दे दूँगी। मैंने अब फिल्म में जाने की बात सोच ली है।"

"पर बिटिया, मैंने तो सुना है कि फिल्म में अच्छे लोग नहीं जाते। वहाँ जो लोग काम करते हैं उनका चरित्र अच्छा नहीं होता। कोई भी भले घर की लड़की वहाँ नहीं जाती..."

"कौन कहता है कि भले घर की लड़कियाँ नहीं जातीं? अब दुनिया बहुत बदल गयी है, चाचा। अब तो वहाँ अधिकतर भले घर की लड़कियाँ ही जाती हैं, और उनके चरित्र पर कोई आँच नहीं आने पाती। तुम लोग यों ही घबराये हुए हो। फिल्म में काम करना अब एक इज्जत का पेशा माना जाता है। और तुम लोग देख लेना, मैं वहाँ जा कर अपनी इज्जत बढ़ा कर ही आऊँगी, घटा कर नहीं। तुम बिलकुल निश्चिंत रहो चाचा, और मुझे जाने की आज्ञा दे दो।"

उसके किसी भी आग्रह को टालने की शक्ति उसके स्नेही चाचा में कभी नहीं रही, और आज भी उसका प्रारंभिक प्रतिरोध जल्दी ही ढह गया। "तुम्हारी अगर यही इच्छा है तो यही सही", महावीर ने कुछ ठंढे भाव से कहा। "पर एक बात का ध्यान रखना। अगर वहाँ के रंग-ढंग तुम्हें अच्छे न दिखायी दें तो फिर एक दिन भी वहाँ न ठहरना।"

इतनी आसानी से प्रतिरोध हट जायगा, वह गिरिजा ने नहीं सोचा था। वह अत्यंत प्रसन्न हो उठी। उसका बच्चों का सा उल्लास उसकी आँखों—उसके सारे मुख पर चमक उठा।

"मैं तुम्हारी बात का पूरा ध्यान रखूँगी, चाचा। इसकी तनिक भी चिंता न करो। सुन लिया अम्माँ, चाचा ने आज्ञा दे दी है। अब मुझे पूरा विश्वास है कि मुझे अपने काम में पूरी सफलता मिलेगी।"

"कितना रुपया तुम्हें दे रहे हैं, बिटिया?" महावीर ने केवल कुतूहल-वश पूछा।

"चालीस हजार," सहज भाव से गिरिजा ने कहा।

"हाँ! चालीस हजार! सच? तुमने ठीक सुना है? कहीं तुम्हें

ठगने के लिये तो तुमसे ऐसा नहीं बताया गया है ?"

"नहीं चाचा, ठगने की उसमें कोई बात नहीं है। सब कानूनी लिखा-पढ़ी हो चुकी है।"

झमिया, महावीर और मालती तीनों अवाक् हो कर उसकी ओर देखते रह गये। जिन्दगी भर दूध का व्यवसाय करते रहने पर भी महावीर इतनी रकम नहीं जुटा पाया था और गिरिजा फिल्म में प्रवेश करते ही एकमुश्त इतना अधिक रुपया कमाने जा रही थी, यह उसके लिये एक अजीब, अप्रत्याशित और अननुभूत घटना थी।

"यह तो बड़ी ही खुशी की बात है, बिटिया," प्रायः गद्गद भाव से महावीर ने कहा। "तुम खुशी से जाओ। सिर्फ अपनी इज्जत बचाये रहना—एक बार मैं और यह बात तुम्हारे कानों में डाल देना चाहता हूँ। अगर इज्जत में कुछ भी बट्टा आने का डर हो तो चालीस हजार क्या चालीस लाख पर लात मार कर चली आना। इससे अधिक और मैं इस बारे में कुछ नहीं कहना चाहता।"

"बस चाचा, मैं अब आपके मन की बात समझ गयी। मुझ पर भरोसा करो। कभी तुम्हें धोखा नहीं मिलेगा।"

झमिया की तो कल्पना ही में यह बात ठीक से नहीं आ पाती थी कि चालीस हजार की रकम कितनी होती है। और फिर रुपये का कोई प्रलोभन उसे कभी नहीं रहा। वह कुछ दूसरी ही अस्पष्ट चिंताओं में डूबी हुई थी।

२६

"चाची !" दरवाजे से ही आवाज लगाता हुआ किशन भीतर आ पहुँचा। "अरे, गिरिजा आई हुई है !" और उसकी विस्मित

आँखों की पुलकित दृष्टि गिरिजा की ओर स्थिर हो कर रह गयी। आज गिरिजा के मुख की अभिव्यक्ति में जैसे उसका एक नया ही रूप किशन के सामने आ रहा था।

गिरिजा भी आज कई महीनों बाद किशन को देख रही थी। उसे भी आज किशन बहुत बदला हुआ लग रहा था। वह काफी सयाना और जवान दिखायी देता था। और उसके मुख पर एक स्निग्ध और सरस सहृदयता पूरी समा न सकने के कारण जैसे बरबस टपकी पड़ती थी। क्षणभर के लिये गिरिजा सिमटी सी खड़ी रही। पर तत्काल ही उसका सहज रूप लौट आया। बोली : "किशन, तुम आ गये, यह अच्छा ही हुआ। मैं अभी तुमसे मिलने की सोच ही रही थी। आज़कल क्या कर रहे हो?"

"एक प्रेस में कंपोजिटरी करता हूँ," प्रारंभिक चकाचौंध से सँभलने का प्रयत्न करता हुआ किशन बोला।

"कितना अभ्यास कर लिया है?"

"अब तो काफी अभ्यास हो चुका है," आत्म-विश्वास के साथ किशन ने कहा—यद्यपि उसके मुख के भाव में अभी तक संकोच की मात्रा काफी थी।

"चलो, उस कमरे में चलें, तुमसे बहुत सी बातें पूछनी हैं," कहती हुई गिरिजा अपने कमरे की ओर बढ़ी। किशन भी संकुचित पगों से धीरे-धीरे उसके पीछे हो लिया।

जब दोनों कमरे में पहुँच गये तब गिरिजा एक छोटी-सी कुर्सी पर बैठ गयी और उसने किशन से भी बैठने के लिये कहा। कुछ देर तक तो किशन एक अजीब से संकोच के दबाव से खड़ा ही रहा, पर गिरिजा के बार-बार कहने पर पास ही से एक स्टूल खींच कर वह बैठ गया।

"अच्छा, तो किशन, तुम्हें यह नौकरी पसंद है? तुम खुश हो?"

"हाँ।"

"अच्छा, अब तो तुम्हारा हिंदी का ज्ञान बहुत बढ़ गया होगा?" गिरिजा बच्चों का सा उल्लास और उत्सुकता मुख पर झलकाती हुई उससे प्रश्न कर रही थी।

"हाँ गुलबि...गिरिजा, अब मैं हिंदी की अच्छी-अच्छी और बड़ी-बड़ी किताबें पढ़ कर आसानी से समझ लेता हूँ।" किशन का संकोच धीरे-धीरे हटने लगा था और पुरानी घनिष्ठता का भाव उसका स्थान ग्रहण कर रहा था।

"बड़ी खुशी हुई यह जान कर," गिरिजा के स्वर से और मुख के भाव से आंतरिक स्नेह और सहृदयता व्यक्त हो रही थी। साथ ही वह विस्मय-उत्सुक भाव से किशन की ओर देख रही थी। उसे आज किशन एक नया ही आदमी लग रहा था। उसके रूप में, रंग में शील में, स्वभाव में, आकृति में, प्रकृति में एक ऐसा मूलगत परिवर्तन आ गया था जिससे पुराने किशन की कोई कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। विस्मय, कुतूहल, स्नेह और सौहार्द का एक अजीब मिश्रण गिरिजा की आँखों में समा गया था।

"जानती हो गिरिजा," किशन ने उत्साहित हो कर कहा, "मैं अब जटिल से जटिल भाषा में लिखी गयी पुस्तकों की अस्पष्ट से अस्पष्ट पांडुलिपियों को बड़ी आसानी से पढ़ लेता हूँ। कंपोजिंग में भी दूसरे कंपोजिटरों की अपेक्षा मुझसे कम भूलें होती हैं और प्रूफ के अनुसार संशोधन का काम भी मैं बड़ी जल्दी कर लेता हूँ..."

गिरिजा न तो इस बात से परिचित थी कि कंपोजिंग किस तरह होता है, न किसी पुस्तक के प्रूफ से ही उसका कोई परिचय था, न उसके

संशोधन से । वह तो केवल इस बात का परिचय मिलने से मन ही मन पुलकित हो रही थी कि किशन पंडितों की तरह शुद्ध संस्कृतमयी हिंदी बोलने लगा है ।

कुछ देर तक वह उसी पुलकित दृष्टि से उसकी ओर देखती रही। उसके बाद बोली : "तुम्हें वेतन क्या देते हैं ?"

"अभी तो चालीस ही रुपया देते हैं, पर मैनेजर साहब ने कहा है कि जल्दी ही मेरी तरक्की हो जायगी। वह मेरे काम से खुश हैं और मुझे फोरमैन बनाने की सोच रहे हैं ।"

"फोरमैन बनने पर तुम्हें क्या मिलेगा ?"

"पहले साल पचास मिलेगा, दूसरे साल से साठ मिलने लगेगा —ऐसा उन्होंने मुझे बताया है ।"

"तुम्हें संतोष है इस नौकरी से ?"

"हाँ गिरिजा, मुझे कोई खास असंतोष नहीं है । अभी तो मैं एक साधारण प्रेस में काम करता हूँ, पर अब मुझे काम का ऐसा तजर्बा हो गया है कि मैं जल्दी ही किसी बड़े प्रेस में काम करने की बात भी सोच रहा हूँ । मुझे आशा है, मुझे इस प्रयत्न में सफलता मिल जायगी ।"

"तुम्हारी वहाँ इज्जत से तो निभ जाती है ?" गिरिजा ने जाने क्या समझ कर अचानक यह प्रश्न किया ।

"तुम्हारा आशय क्या है, मैं ठीक से समझा नहीं ।"

"मैं पूछ रही थी कि तुम पर वहाँ बात-बात पर डाँट-डपट तो नहीं पड़ती ?"

"नहीं...हाँ, कभी-कभी उन्होंने अवश्य बहुत डाँटा है । जब मैं पहलेपहल एक रँगरूट की तरह वहाँ गया था तब मैनेजर मुझे

डाँटते हुए भली-बुरी बातें कहा करते थे। फोरमैन भी मुझे खरी-खोटी सुनाया करता था...''

''और तुम चुपचाप सह लिया करते थे ? पलटे में कुछ भी नहीं सुनाया करते थे ?'' गिरिजा के मुख पर सहसा एक अँधेरी छाया घिर आयी थी।

''मैं कैसे सुनाता। मुझे अपना मतलब निकालना था—काम सीखना था...''

''और अब ? अब कैसा व्यवहार है उन लोगों का तुम्हारे प्रति ?''

''अब कोई कुछ नहीं बोलता।''

''अब क्या मैनेजर तुमसे आदर से बोलते हैं ?''

''आदर से कैसे बोलेंगे ! मैं उनका नौकर जो हूँ ! नौकर से भी क्या कभी कोई आदर से बोलता है !'' गिरिजा की व्यावहारिक विषयों में अज्ञानता पर मंद-मंद मुस्कराते हुए किशन ने कहा।

गिरिजा कुछ देर तक कुछ अनमनी दृष्टि से उसकी ओर देखती रही। फिर बोली : ''पर समझदार लोग नौकर से भी आदर से बोलते हैं, किशन ! नौकर किसी से भीख तो माँगता नहीं। वह ईमानदारी से जो काम करता है, मेहनत करता है, उसी की मजूरी उसे मिलती है। उसका पेशा भी किसी से कुछ कम इज्जत का नहीं है......''

किशन उसकी बात पर बड़े ध्यान से विचार करता हुआ चुपचाप गंभीर दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा। एक नये दृष्टिकोण की सचाई जैसे उसके आगे प्रकट होने लगी हो। सहसा एक और बात उसे याद आयी, जिससे गिरिजा को परिचित कराने की आवश्यकता

वह महसूस करने लगा।

"जानती हो गिरिजा," उसने कहा, "जब शाम को अपना काम पूरा करके कंपोज़िटर लोग घर जाने के लिये प्रेस से बाहर निकलने लगते हैं तब उनकी नंगाझोरी ली जाती है।" कहते हुए न चाहने पर भी उसके मुख पर एक खिसियानी सी मुसकान झलक उठी।

पर गिरिजा के मुख की अँधेरी छाया गाढ़ से गाढ़तर हो आयी थी।

"ऐसा क्यों करते हैं वे लोग ?" उसने अत्यंत पीड़ित हो कर पूछा।

"यह देखने के लिये कि कहीं कोई कंपोजिटर अपनी जेब में या टेंट में टाइप छिपा कर तो नहीं ले जाता !"

"किस तरह का टाइप ?"

"सीसे के बने छोटे-छोटे टाइप होते हैं जिनमें अक्षर खुदे होते हैं। उन्हीं अक्षरों को जोड़ कर, जमा कर मशीन में छापा जाता है। तभी किताब तैयार होती है।"

"कंपोजिटर उस टाइप से क्या करेंगे, ऐसा वे लोग नहीं सोचते ? उन बेचारों के पास मशीन कहाँ, और किताब छापने की सामर्थ्य कहाँ ! यदि वे इतने ही संपन्न होते तो ऐसी जलील नौकरी ही क्यों करते।"

"नहीं, यह बात नहीं है। उन लोगों को यह शक होता है कि कंपोजिटर लोग टाइप चुरा कर किसी दूसरे प्रेस वाले के हाथ सस्ते दामों में बेंच सकते हैं। सीसा वजनदार होता है और थोड़े में उसका वजन बहुत अधिक हो जाता है......"

"पर उन गरीब बेचारों पर इतना अविश्वास वे लोग क्यों करते

हैं? एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का इतना सा भी विश्वास नहीं कर पाता, यह बात क्या तुम्हें अचरज-भरी नहीं लगती? मनुष्य मनुष्य का इतना बड़ा अपमान क्यों करना चाहता है? और विशेष कर उस मनुष्य का ही इस कदर अपमान क्यों किया जाता है जो गरीब हो, हर तरह से विपन्न हो, निस्सहाय हो या रूढ़िवादी समाज द्वारा निर्धारित की गयी कृत्रिम सीढ़ी में जिसका स्थान सब से नीचे हो? बड़े-बड़े प्रेसों में कंपोजिटरों के अलावा और कर्मचारी भी तो होते हैं, उनमें कुछ बड़े-बड़े पदाधिकारी भी होते हैं। उन सब की नंगाझोरी क्यों नहीं ली जाती? उनके जिम्मे भी तो काफी मूल्यवान चीजें रहती होंगी?"

मन के भीतर की गहराई में पिछले कुछ दिनों से दबे हुए कई विभिन्न सम्मिलित कारणों से गिरिजा का आक्रोश रूद्ध रोष से फूल कर बिना बाहर प्रकट हुए रह जाता था। आज किशन की बातें सुन कर उसके हृदय का सारा बाँध सौ-सौ खंडों में टूट पड़ा था और पूरे वेग से बाहर को उमड़ कर असंख्य धाराओं में फूट पड़ना चाहता था। उसकी बातों में उसके मर्म की जो वेदना बिखर पड़ी थी उसे किशन ठीक से समझने में असमर्थ रहा। गिरिजा ने उससे जो युग-युग से मानव के अंतर में गूँजते रहने वाला प्रश्न किया था कि क्यों ऐसा होता है, वह जानता था कि उसका समाधान उसके समान नितांत अपंडित और जीवन के महत्त्वपूर्ण सत्यों से अनभिज्ञ और अपरिचित व्यक्ति नहीं कर सकता। और गिरिजा भी उससे उस महान् प्रश्न के समाधान की प्रत्याशा कभी नहीं कर सकती, यह भी वह जानता था। तब क्यों आज गिरिजा ने इस तरह के गंभीर प्रश्न करके उसके समान साधारण कंपोजिटर की बुद्धि को इतना बड़ा

महत्त्व दिया ? सोच-सोच कर वह हैरान था।

पर वास्तविकता यह थी कि गिरिजा का वह प्रश्न किशन के प्रति उतना नहीं था जितना स्वयं अपने प्रति। किशन जैसे एक निमित्त मात्र था।

किशन को चुपचाप स्तंभित भाव से बैठा देख कर गिरिजा फिर बोली : "पर चिंता की कोई बात नहीं है, किशन। तुम्हें इस जलील नौकरी से बहुत जल्द मुक्ति मिल जायगी। मैं तुम्हें कंपोज़िटर नहीं रहने दूँगी। इस घोर अवमानना की स्थिति से मैं तुम्हें निश्चय ही उबारूँगी। तुम्हें इस योग्य बनाऊँगी कि तुम मानवता के इस निदारुण अपमान की पीड़ा को मेरी ही तरह अनुभव कर सको और उस अनुभव का लाभ अपनी ही परिस्थिति के दूसरे लोगों को दे सको।"

बात किशन की समझ में ठीक से कुछ भी नहीं आयी। और उसे यह पूछने का साहस ही नहीं हुआ कि वह किस उपाय से और किस रूप में उसे जल्दी ही उस स्थिति से उबारेगी। वह केवल तन्मय भाव से गिरिजा की तत्कालीन गहन गंभीर मुद्रा देखता रहा। उस तन्मयता में उसके मन के बहुत नीचे उस गुलबिया का चेहरा विरोधाभास के रूप में उभर रहा था जो कभी एक मैली और फटी सी धोती पहने और कभी एक सौ-सौ गंदगियों से भरा फ्राक पहने तनिक भी अवसर पाते ही उसके साथ खेलने चली आती थी। उसकी आँखों में कीच लगी रहती थी, नाक अक्सर बहती रहती थी। किशन सब समय उस पर रौब गाँठता रहता था। और वह बड़ी हार्दिकता से उसके उस रौब को स्वीकार किये रहती थी। और आज उसके आगे वही गुलबिया सिंहवाहिनी दुर्गा की तरह आश्चर्यजनक तेज और

प्रताप से चकाचौंध उत्पन्न कर रही थी।

कुछ समय तक सारे कमरे का वातावरण अत्यन्त गुरु-गंभीर बना रहा। गिरिजा भी अनमनी हो कर मौन भाव से कुछ सोचती रही और किशन भी। उसके बाद सहसा महावीर के दोनों बच्चे "जीजी आ गयी, जीजी आ गयी!" कह कर ताली बजाते हुए भीतर घुस आये और गिरिजा से लिपट गये। उनके कपड़े धूल से भरे थे और हाथ गंदे थे। क्षण-भर के लिये गिरिजा ने पूर्व संस्कार और पूर्व अभ्यासवश उनके गंदे हाथों से अपनी कीमती साड़ी को बचाने का प्रयत्न किया, पर तत्काल वह अपनी उस प्रवृत्ति पर स्वयं ही हँस पड़ी और उसने दोनों को प्रेम से अपनी गोद पर बिठा लिया। दोनों का मुँह चूम कर दोनों को गले से लगा कर, पुचकार-भरे शब्दों में उनसे स्नेहालाप करने लगी।

"अच्छा गिरिजा, इस समय मैं जाता हूँ, फिर मिलूँगा," कह कर किशन उठ खड़ा हुआ। संकोच के साथ उसने दोनों हाथ उसकी ओर जोड़े।

"जा रहे हो?" गिरिजा ने स्निग्ध मुसकान मुख पर झलकाते हुए कहा। "अच्छी बात है। मिलते रहना। अब मैं यहीं हूँ।"

किशन के चले जाने पर वह दोनों बच्चों को ले कर झमिया के कमरे में गयी। वह वहाँ नहीं थी। वहाँ से गिरिजा मालती के कमरे में गयी। वहाँ उसने देखा, झमिया झाड़ू लगा रही है। झाड़ू प्रायः लग चुका था। बटोरा हुआ कूड़ा झमिया ने एक रद्दी अखबारी कागज में उठा कर रखा। गिरिजा को दोनों बच्चों के साथ देख कर झमिया का चेहरा खिल उठा। बोली: "कब से ये दोनों मुझे यह पूछ कर परेशान किये रहते थे कि जीजी कब आयगी? आज देखते ही इन्होंने

तुम्हें घेर लिया है।"

"भौजी, हम जीजी के साथ ओस्तल जायेंगे।" सरजू की छोटी सी बहन ने कहा।

"हाँ मेरी रानी बिटिया, तुम जरूर जाओगी होस्टल; कालेज में पढ़ोगी, बड़ी बनोगी और फिर जीजी की ही तरह अपनी 'भौजी' को एकदम भूल जाओगी। अच्छा ?"

"हाँ," सहज गंभीर भाव से बच्ची बोली।

झमिया और गिरिजा दोनों खिलखिला कर हँस पड़ीं।

झमिया कूड़ा फेंकने बाहर गयी। उसके बाद अपने कमरे से बच्चों के गंदे कपड़े, दो-एक चादरें, मालती की एक धोती और एक मैला तौलिया उठा कर गुसलखाने में धोने के लिये ले गयी। यह सब काम करते हुए वह सहज-स्निग्ध भाव से मुस्कराती जाती थी। एक क्षण के लिये भी न किसी तरह की थकान का कोई चिह्न उसके मुख पर दिखायी देता था, न ऊब या खीझ का। थोड़ी देर बाद गिरिजा के कानों में गुसलखाने से कपड़ों के पछाड़े जाने की आवाज आने लगी। वह आवाज उसे अपनी माँ के कर्म-व्यस्त और सेवा-परायण जीवन की याद जैसे हथौड़े की चोट से दिला रही थी।

कुछ देर तक वह बाहर अनमने भाव से बच्चों का साथ देती रही। उसके बाद फिर अकेली अपने कमरे में चली गयी।

३०

गिरिजा दूसरे ही दिन होस्टल से अपना सारा सामान उठा कर ले आयी। उसके बाद दो-तीन दिन आराम करने के बाद वह नियमित रूप से स्टूडियो जाने लगी। वहाँ पहले उसने

उस कहानी का अध्ययन किया जिसके आधार पर नयी फिल्म का सिनेरियो तैयार हुआ था। उसके बाद उसने सिनेरियो देखा; उसके बहुत से स्थलों को बदलने के लिये उसने अपने सुझाव उपस्थित किये। शंकरलाल जी से उन स्थलों को ले कर उसकी गरमागरम बहस हुई। वह एक भी दृश्य ऐसा नहीं चाहती थी जिसमें किसी भी प्रकार की गंदगी या अस्वाभाविकता वर्तमान हो—फिर चाहे वह स्थल प्रधान नायिका के अभिनय से संबंधित हो या न हो। प्रधान नायिका द्वारा अभिनीत होने वाले स्थल अधिक से अधिक स्वाभाविक और शालीनता-पूर्ण हों, इस बात पर उसने पूरा जोर दिया। कहानी एक साधारण मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन की थी। पर बीच-बीच में कुछ ऐसे रोमांटिक दृश्य रखे गये थे जो अस्वाभाविक होने के अलावा गिरिजा को अशोभन भी लगे। वह चाहती थी कि सारी फिल्म में आदि से अंत तक प्रधान नायिका शालीनता की रक्षा करती हुई चले। उसे कहीं भी सस्ते ढंग के रोमानी दृश्यों का अभिनय न करना पड़े और न कहीं गम्भीर गौरव के प्रतिकूल वातावरण में उसे घसीटा जाय।

जिन-जिन स्थलों में उसे परिवर्तन की आवश्यकता महसूस हुई वहाँ उसने ऐसे सुन्दर, सुसंगत, युक्तिपूर्ण और कलात्मक सुझाव उपस्थित किये कि प्रारंभिक प्रतिरोध के बाद अंत में शंकरलाल जी को उन्हें स्वीकार कर ही लेना पड़ा।

प्रधान नायक एक ख्यातनामा फिल्म-कलाकार था। उसका नाम नीलकांत था। कई फिल्मों में गिरिजा उसका अभिनय देख चुकी थी। चित्रपट में उसे देख कर उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जो धारणा गिरिजा ने बना रखी थी वह प्रत्यक्ष और सजीव रूप में उसे

देखने पर मिट गयी। जिन-जिन फिल्मों में उसने अभिनय किया था उन्हें देख कर गिरिजा ने यह सोचा था कि वह घोर असांस्कृतिक, उजड्ड और मूर्ख होगा, और किसी भी सुसंस्कृत लड़की से किसी भी गंभीर विषय पर बातें करने की तमीज उसमें नहीं होगी। पर जब उससे उसका व्यक्तिगत परिचय हुआ तब पहले ही दिन उसने यह अनुभव किया कि नीलकांत चाहे और जो हो, निपट मूर्ख नहीं है। वह उसे घमंडी अवश्य लगा, पर उजड्ड और असंस्कृत नहीं। दूसरे अभिनेताओं की बातचीत और आचार-व्यवहार से जो बाजारूपन सब समय व्यक्त होता रहता था, नीलकांत के व्यवहार में उसका कोई भी चिह्न गिरिजा ने नहीं पाया, जिससे उसके शंकित मन को बहुत संतोष मिला। ऐसा लगता था कि नीलकांत भी पहले ही परिचय से गिरिजा के बाहरी रूप के भीतर छिपे व्यक्तित्व का भी थोड़ा-बहुत परिचय पा चुका है—पर अधिक नहीं। गिरिजा को लगा कि नीलकांत दूसरी अभिनेत्रियों की तरह उसे भी एक सजी-सजायी गुड़िया समझता है जिसमें मौलिक चिंतना का बिलकुल अभाव हो और जो केवल संचालक के सुझावों के अनुसार कल की पुतली की तरह अभिनय कर सकने की योग्यता रखती हो। पर जब गिरिजा ने सिनेरियो के सम्बन्ध में अपने मौलिक सुझाव रखे जो शालीनता और कलात्मकता की रक्षा करते हुए भी सहज और स्वाभाविक लगते थे, तब नीलकांत का मन उसके सम्बन्ध में बदला और उसके गर्व का हिमालय पहाड़ धीरे-धीरे पिघलने लगा। बाद में जब दो-एक बार कुछ गंभीर विषयों पर गिरिजा से उसकी बातें हुईं तब वह समझ गया कि अब की जिस अभिनेत्री से उसका सामयिक संबंध जुड़ा है वह कोई साधारण लड़की नहीं है। बी०ए०,एम०ए० पास करने वाली

बहुत सी शिक्षित लड़कियों से उसका परिचय था। पर उन सब में शिक्षा और संस्कृति की केवल ऊपरी कलई की चमक उसने देखी थी। पर गिरिजा के भीतर बहुत गहराई में सांस्कृतिक तत्त्वों का प्रवेश उसने पाया। उसमें मौलिक चिंतना उसने पायी, जिसका फैशनेबुल समाज की शिक्षिता लड़कियों में उसे निपट अभाव दिखायी दिया था। वह मौलिक चिंतना भी बड़ी तीखी और जीवन के मार्मिक अनुभवों के कारण चुटीले व्यंगों की चुभन लिये हुए थी। और नीलकांत ने देखा कि उसकी चारित्रिक दृढ़ता का भी कारण उसकी वह मौलिक चिंता-धारा ही थी, जो उसके प्रत्येक कर्तव्य और कर्म को उसके लिये विश्लेषित करके उसे सुनिश्चित सामाजिक व्यक्तिगत पृष्ठभूमि में उसके आगे रख देती थी। फल यह देखने में आता था कि वह किसी बड़े से बड़े प्रलोभन से अपने निर्धारित आचरण से डिग नहीं पाती थी। जब पहली बार नीलकांत और गिरिजा के सम्मिलित अभिनय का रिहर्सल हुआ तब नीलकांत ने देखा कि अभिनय में किसी भी समयानुकूल हाव-भाव और मुद्रा के प्रदर्शन में कोई कमी न आने देने पर भी रिहर्सल के बाद ही तत्काल गिरिजा ने अत्यन्त गंभीर और कड़ा रुख अख्तियार कर लिया था, ताकि नीलकांत कम से कम उससे दस गज के फासले पर रहे। अभिनय के बाद किसी भी प्रकार के अनुचित हास-परिहास को तनिक भी प्रश्रय देने के लिये वह कतई तैयार नहीं थी, यह बात समझने में नीलकांत को बहुत देर न लगी।

हेमकुमार को उस फिल्म में भी—जिसमें गिरिजा ने काम करना आरंभ कर दिया था—खल-नायक का ही पार्ट खेलने को बाध्य किया गया—यद्यपि उसने इस बार इस बात के लिये प्रयत्न किया था कि उसे प्रधान नायक की ही भूमिका में काम मिले। पर उसके खल-

नायकत्व के बावजूद नीलकांत उसे ईर्ष्या से देखने लगा था। उसने सोचा था कि एक साथ अभिनय करने से गिरिजा के निकट संपर्क में आने के कारण गिरिजा हेमकुमार की अपेक्षा उसकी ओर ही अधिक आकर्षित होगी, क्योंकि एक तो प्रधान नायक के रूप में हेमकुमार की अपेक्षा उसे अधिक महत्त्व मिल चुका था, दूसरे उसका पक्का विश्वास था कि हेमकुमार की अपेक्षा उसका व्यक्तित्व अधिक प्रभावशाली और आकर्षक है, और फिल्मी दुनिया में और साधारण जनता में उसकी ख्यति भी हेमकुमार से कई गुना अधिक है। पर उसे यह देख कर बड़ी भारी निराशा हुई कि रिहर्सल या शूटिंग होने तक गिरिजा प्रेम का बहुत ही सुन्दर अभिनय करने पर भी, उसकी समाप्ति पर उससे इस तरह दूर हट जाती थी जैसे कभी उससे क्षणिक परिचय भी न रहा हो, और सीधे हेमकुमार के पास चली जाती थी। सारे स्टूडियो में एकमात्र हेमकुमार ही ऐसा व्यक्ति था जिसके साथ वह शूटिंग से अवकाश के समय में उठती-बैठती और हँसती-बोलती थी। यह ठीक है कि हेमकुमार के साथ भी उसका हँसना-बोलना संयत ही रहता था, पर दूसरे किसी के साथ तो वह इतना भी नहीं हँसती-बोलती थी।

लोगों को आश्चर्य होता था कि यह कैसा विचित्र आचरण है—प्रधान नायक से 'बैर' और खलनायक से 'नाता'! गिरिजा अच्छी तरह समझती थी और जानती कि पीठ-पीछे लोग हेमकुमार को ले कर उसके संबंध में तरह-तरह की बातें करते रहते हैं। पर वह किसी के भी परोक्ष व्यंग की तनिक भी परवा न कर अवकाश के क्षणों में हेमकुमार का ही साथ पकड़े रहती थी। उसी के साथ अलग टेबिल पर चाय पीती और उसी के साथ टहलती थी।

शंकरलाल जी ने कई बार इस बात के लिये प्रयत्न किया कि वह सभी अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के साथ चाय पिये, पर वह भरसक टालती रहती।

हेमकुमार इतने दिनों के अनुभव से उसके स्वभाव से काफी परिचित हो चुका था। इसलिये वह इस संबंध में बराबर सचेष्ट रहता था कि उसकी एक भी बात या किसी भी व्यवहार से गिरिजा के भावनाशील मन पर तनिक भी आघात न पहुँचे। वह पूरी ईमानदारी और आंतरिकता से एक सच्चे मित्र के कर्तव्य को निभाता चला जा रहा था। और उस पर गिरिजा का विश्वास दिन पर दिन बढ़ता चला जा रहा था। फिल्मी दुनिया से अपने व्यावहारिक संबंध में जब भी कोई उलझन उसके आगे खड़ी होती, वह उसे सुलझाने के लिये हेमकुमार से ही सहायता लेती। उसके कारण वह अपने प्रत्येक व्यवहार के संबंध में निश्चिन्त थी।

पर भरसक बचे रहने पर भी सिनेमा संसार के विचित्र जीवों के संपर्क में उसे आना ही पड़ता। प्रधान नायिका की भूमिका में अवतरित होने पर वह उनसे एकदम अछूती बच कर नहीं रह सकती थी। अभिनेताओं में तरह-तरह की प्रवृत्तियों के व्यक्ति उसके देखने में आये। बौद्धिक क्षेत्र में उनमें से अधिक-संख्यक प्रायः शून्य थे। पर व्यवहार में प्रायः सभी ने कृत्रिम शालीनता का एक झीना आवरण अपना लिया था। विशेष कर गिरिजा के साथ उनमें से प्रत्येक व्यक्ति बड़ी ही शिष्टता और सौजन्य से पेश आने की चेष्टा करता था। यद्यपि कभी-कभी वह कृत्रिम शिष्टता गिरिजा को हास्यास्पद लगती थी, तथापि वह यह देख कर प्रसन्न थी कि उसके मुँह पर ही अशिष्ट बातें और असौजन्यपूर्ण व्यवहार

कोई नहीं करता । फिल्मी अभिनेताओं की चारित्रिक हीनता और अशिष्टता के संबंध में उसने तरह-तरह की बातें सुन रखी थीं, इसलिये अपने गंभीर व्यक्तित्व और चारित्रिक दृढ़ता पर बहुत भरोसा होने पर भी वह भीतर ही भीतर इस आशंका से डरी रहती थी कि कहीं कोई अपने उजड्ड स्वभाव के कारण उसे उसके मुँह के सामने ही अकारण अपमानित न कर बैठे । पर किसी ने ऐसा किया नहीं।

अधिकांश अभिनेत्रियाँ उसे बुद्धि और हृदय से एकदम खोखली लगीं। वे केवल सुन्दर सजी सजायी रबर की गुड़ियाँ थीं, जो कठ-पुतलियों की तरह निर्देशकों द्वारा खींची जानेवाली डोरियों के संकेत पर नाचती, बोलती और गाती थीं । वे रबर की रंग-बिरंगी गुड़ियाँ झूठे अहंकार की हवा से फुलायी गयी थीं, और अपनी भीतरी शून्यता के बावजूद इतरायी फिरती थीं। उनकी तुलना में अभिनेता कहीं अधिक सभ्य, शिष्ट और समझदार थे। इस कारण निकट रहने पर भी उस समाज से वह काफी दूर रहने का प्रयत्न करती रहती थी। दो-एक 'प्ले-बैक' गायिकाएँ अवश्य गिरिजा को अपने स्वभाव के अनुकूल लगीं और मिलने पर वह उनसे स्नेह और सौहार्द के साथ बातें करती थी । पर अभिनेत्रियों में उसे एक भी ऐसी नहीं मिली जिससे वह दो मिनट के लिये भी स्वेच्छा से और आंतरिक प्रसन्नता से बातें कर सके।

अभ्यास न होने से प्रारंभ में शूटिंग के बाद गिरिजा के सिर में दर्द हो जाया करता था। पर धीरे-धीरे अपनी इच्छाशक्ति से या अभ्यास से उसने सिर-दर्द को भगा दिया।

३१

फिल्म की 'शूटिंग' की प्रगति काफी अच्छी हो रही थी। पर शंकरलालजी को संतोष नहीं हो रहा था। उन्होंने पहली बार एक नयी अभिनेत्री से 'कंट्रैक्ट' किया था, इसलिये वह अपनी उस नयी फिल्म के संबंध में काफी सशंक हो रहे थे, और छोटी से छोटी बात के संबंध में बहुत सावधानी बरत रहे थे। उनके अपने दृष्टिकोण से जहाँ कहीं प्रधान निर्देशक से या गिरिजा के सुझाव से उनका मत नहीं मिलता था वहाँ वह बहुत चिंतित हो उठते, और चूँकि वह स्वयं अपने मत के संबंध में अनिश्चित रहते थे, इसलिये तर्क-वितर्क करने पर भी किसी निश्चित परिणाम पर न पहुँच सकने के कारण असंतुष्ट रहते थे।

गिरिजा प्रत्येक दृश्य के संबंध में प्रधान निर्देशक के आगे अपना सुझाव रखने में कभी न चूकती और इस बात के लिये भरसक प्रयत्न करती रहती कि उसका सुझाव स्वीकार कर लिया जाय। प्रत्येक दृष्टिकोण से तर्क करके अपनी युक्तियों को वह बड़ी कुशलता से उपस्थित करती। फल यह होता था कि बहुत सी बातों में प्रधान निर्देशक को उसके आगे झुकना ही पड़ता। संगीत-निर्देशक के आगे भी गिरिजा अपने सुझाव रखने से न चूकती थी। सब से पहले तो उसने प्रत्येक गीत के भाव और भाषा की दृष्टि से कई स्थानों में सुधार किये। प्रत्येक-गीत का भाव अवसर के अनुकूल हो और उसकी रुचि परिमार्जित हो, इस बात पर उसने केवल जोर ही नहीं दिया, बल्कि सुधार करके और करवाके छोड़ा। साथ ही भाषा भी भाव के अनुकूल हो, इस संबंध में उसने पूरी सचेष्टता से काम लिया। इसके

अतिरिक्त, यदि किसी गीत की तर्ज के संबंध में संगीत-निर्देशक से उसका मतभेद होता तो वह स्पष्ट शब्दों में बता देती थी और स्वयं एक नयी और अवसरानुकूल तर्ज का उद्भावन करके स्वयं गा कर सुनाती। पहले तो संगीत-निर्देशक अपने क्षेत्र में एक नयी अभिनेत्री को हस्तक्षेप करते देख कर बहुत असंतुष्ट हो उठा, पर बाद में जब गिरिजा ने अपनी बात पर अड़ कर तर्क और प्रत्यक्ष निदर्शन द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि उसका सुझाव किसी अनुभवहीन और नौसिखिया लड़की की दांभिकतापूर्ण खामखयाली नहीं, वरन् कला के सभी अंगों से परिचित और अपने विषय की विशेषज्ञ युवती का अनुभवसिद्ध मत है, तब उसके अधिकांश सुझाव उसने मान लिये।

अंत में, लंबी प्रतीक्षा के बाद, जब पूरी फिल्म की 'शूटिंग' समाप्त हो गयी, तब उसका प्रथम प्रदर्शन स्टूडियो के ही पर्दे पर सभी अभिनेताओं, अभिनेत्रियों, निर्माता, निर्देशक तथा दूसरे पदाधिकारियों और कर्मचारियों के आगे किया गया। जो अंश बहुमत से निकाले जाने के योग्य समझे गये उन्हें निकाल दिया गया। उसके बाद सेंसर बोर्ड द्वारा उसे पास कराया गया। और तब फिल्म-वितरकों में उसे वितरित किया गया। फिल्म का विज्ञापन बहुत पहले से कराया जा रहा था। पर दूसरी फिल्मों की अपेक्षा उसका विज्ञापन कुछ साधारण ही हुआ था, और तिस पर भूमिका में किसी भी पुरानी और प्रसिद्ध अभिनेत्री का नाम नहीं था। इसलिये वितरकों ने वह दिलचस्पी उसके लिये प्रकट नहीं की जैसी कि वे शंकरलाल जी की कंपनी द्वारा तैयार की गयी दूसरी फिल्मों के संबंध में दिखाया करते थे।

गिरिजा बड़ी उत्सुकता से, परोक्ष रूप से, यह जानने का प्रयत्न करती रहती थी कि फिल्म का कैसा स्वागत हो रहा है। दिल्ली,

कलकत्ता, लखनऊ और नागपुर इन चार स्थानों में एक ही दिन नयी फिल्म का उद्घाटन हुआ था। वितरकों ने उद्घाटन के पहले ही जो ठंडा भाव उसके प्रति प्रदर्शित किया, उससे शंकरलाल जी को बड़ी निराशा हुई थी और उनकी वह निराशा गिरिजा से छिपी न रही। सुन कर उसका भी उत्साह ठंडा पड़ गया और सारी आशा-भरी सुनहरी कल्पनाओं पर पानी-सा फिर गया।

पर उद्घाटन के तीन सप्ताह बाद जो समाचार मिले वे अत्यंत आशाप्रद थे। यह सूचना मिली कि चारों नगरों में शंकरलाल जी की कंपनी का वह नया चित्र इतना अधिक पसंद किया गया है कि जिन-जिन सिनेमा-घरों में वह दिखाया जाता है वे प्रतिदिन दर्शकों से भरे रहते हैं और सैकड़ों दर्शकों को टिकट न मिल सकने के कारण प्रति-दिन निराश लौट जाना पड़ रहा है। तीनों सप्ताहों में एक भी दिन ऐसा नहीं गया जब उस नयी फिल्म को प्रदर्शित करने वाले किसी भी सिनेमा-घर में एक भी सीट खाली पड़ी रह गयी हो। प्रतिदिन उन सिनेमा-घरों के फाटकों पर समय के पहले ही 'हाउस फुल' का कार्ड टँगा मिलता। और प्रतिदिन के तीनों 'शो' में यही हाल रहता था। शंकरलाल जी को यह सूचना भी मिली कि कलकत्ते में उनकी नयी फिल्म का सबसे अधिक स्वागत हुआ है और विरोधी संस्कार के बावजूद बँगला पत्रों में उसकी बड़ी प्रशंसाएँ छपी हैं। अभिनय, सेटिंग, गीत, कथानक, सभी दृष्टियों से आलोचकों ने उसे एक आदर्श फिल्म बताया है, और सभी पत्रों ने एक स्वर से गिरिजाकुमारी के निर्दोष अभिनय की प्रशंसा करते हुए शंकरलाल जी की फिल्म कंपनी को उस नयी प्रतिभा के आविष्कार के लिये बधाई दी है। हिंदी के पत्रों का स्वर भी काफी प्रशंसात्मक है, ऐसी सूचना मिली। हिंदी

पत्रों ने विशेष रूप से इस बात की प्रशंसा की थी कि इधर प्रायः सभी फिल्मों में जो गंदगी और अश्लीलता मिलती थी और नैतिक स्तर बुरी तरह गिरा हुआ पाया जाता था उसका उस विशेष फिल्म में एकदम अभाव है। उन पत्रों ने यह सिद्ध करना चाहा था कि नैतिक स्तर को ऊँचा रखते हुए भी रोचक और लोकप्रिय चित्र तैयार किये जा सकते हैं। गिरिजाकुमारी जैसी प्रतिभाशालिनी अभिनेत्री को खोज लाने के लिये हिंदी पत्रों ने भी कंपनी को बधाई दी थी।

इन सब सूचनाओं से शंकरलाल जी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। हेमकुमार ने गिरिजा को बताया कि गिरिजा की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए उनकी आँखों से प्रसन्नता के आँसू तक निकल आये थे, जिसकी कोई कल्पना वह शंकरलाल जी के समान पक्के व्यवसायी आदमी के संबंध में इसके पहले नहीं कर सकता था। हेमकुमार स्वयं बहुत प्रसन्न था। क्योंकि सच पूछा जाय तो जिस नयी अभिनेत्री की प्रशंसा से भारत के एक छोर से ले कर दूसरे छोर तक का सारा वातावरण गूँज रहा था उसका वास्तविक आविष्कारक वही था। वह गिरिजा का प्रशंसक पहले ही से था, पर उसने भी इतनी अधिक सफलता की आशा नहीं कर रखी थी। उसे क्या, कंपनी से संबंधित किसी भी व्यक्ति को नहीं थी। क्या प्रधान निर्देशक, क्या संगीत-निर्देशक और क्या कहानी-लेखक, सभी इस बात से बहुत असंतुष्ट थे कि गिरिजा अकारण उनके क्षेत्रों में हस्त-क्षेप कर रही है, और हठपूर्वक अपने मन के अनुसार सुधार और परिवर्तन करवा रही है। सभी आपस में और शंकरलाल जी से यह कह रहे थे कि यदि नया चित्र एकदम 'फ्लाप' निकला तो वे इसके लिये उत्तरदायी नहीं होंगे। हेमकुमार ने हर्ष-गद्गद भाव से

गिरिजा से कहा कि फिल्म की इस अपूर्व-कल्पित सफलता से उन सब लोगों के मुँह पर ऐसा तमाचा लगा है कि आगे से वे कभी एक शब्द भी उसकी किसी भी बात के विरोध में बोलने का साहस नहीं कर सकेंगे।

स्वयं गिरिजा के हर्ष की सीमा नहीं थी। पर अपने उस आनंद का तीन-चौथाई भाग वह भीतर ही भीतर पी गयी और केवल एक चौथाई भाग ही उसने बाहर प्रकट होने दिया। आनंद के क्षेत्र में भी संयम का बहुत बड़ा महत्त्व है यह महान् सत्य उसके आगे सहसा अपने-आप प्रकट हो गया। गर्व की सहज रूप से मन में फूलती हुई भावना को भी उसने अपने आश्चर्यजनक चारित्रिक बल से दबा लिया। अपने भावी कार्यक्रमों के संबंध में जो दीर्घकालीन गुप्त योजना उसने मन-ही-मन निर्धारित कर रखी थी उसके संबंध में वह प्रतिक्षण सजग रहती थी और अपनी सहज प्रज्ञा से यह समझ गयी थी कि उस योजना की परिपूर्ण सफलता के लिए यह नितांत आवश्यक है कि आकस्मिक सफलता-जनित हर्ष और गर्व की स्वाभाविक भावनाओं को भी दबा कर निश्चित योजना से निरंतर, बिना किसी जल्दबाजी के, आगे बढ़ते रहना होगा।

पर अपनी अम्माँ, चाचा, चाची और किशन के आगे वह अपने अंतर के हर्ष और आनन्द को प्रकट किये बिना न रह सकी। दुःख उसे केवल इस बात का था कि वह उन लोगों के आगे यह प्रमाणित नहीं कर पाती थी कि उसके उस आनन्द का कारण वास्तव में कितना बड़ा है। झमिया सहज मातृ-संस्कारवश केवल उसके आनन्द की अनुभूति को हृदयंगम कर पाती थी, उसके कारण को समझ पाने में वह एकदम असमर्थ थी। महावीर समझाये जाने पर किसी

हद तक उस कारण के महत्त्व से परिचित तो हो गया, पर अपने रूढ़िगत संस्कारों के कारण जो यह धड़का उसके मन में प्रारंभ ही से लगा हुआ था कि फिल्मी दुनिया में प्रवेश करने पर गिरिजा के चरित्र की सुरक्षा बहुत कठिन हो जायगी, वह उसकी महान् सफलता के समाचार से घटने के बजाय और बढ़ गया। उसके मन में यह विश्वास जम गया कि उस सफलता के कारण उसके लिये चारित्रिक संकट और अधिक बढ़ जायगा। पर अपनी इस धारणा को उसने गिरिजा के आगे प्रकट न होने दिया। केवल इतनी ही चेतावनी उसे दी कि अपनी इज्जत को बचा कर चलने का ध्यान वह बराबर रखे।

किशन भी ठीक से नहीं समझ पा रहा था कि फिल्म की सफलता का कितना बड़ा महत्त्व गिरिजा के लिये है। गिरिजा ने उसे सीधे ढंग से, सरल शब्दों में समझाने का प्रयत्न किया। वह कुछ-कुछ अपनी बुद्धि के अनुसार अवश्य समझ गया, पर अधिक नहीं। गिरिजा ने उसे बताया कि शीघ्र ही वह दूसरी फिल्म की शूटिंग के चक्कर में फँस जायगी, और उसे इस बात के लिये अवकाश नहीं मिलेगा कि अपनी योजनानुसार प्रतिदिन उसे कम से कम दो घंटा पढ़ा-लिखा सके, इसलिये वह उसके लिये एक योग्य शिक्षक नियुक्त करने जा रही है। प्रेस के काम से छुट्टी मिलने पर उसे शिक्षक के पास बैठ कर नियमित रूप से दो घंटे पढ़ना होगा। शिक्षक का वेतन वह स्वयं अपनी गाँठ से देगी, और शीघ्र ही उसने हेमकुमार की सहायता से एक एम० ए० पास शिक्षक सौ रुपया महीने पर किशन के लिये नियुक्त कर दिया। उसे यह देख कर प्रसन्नता हुई कि किशन पूरी लगन से हिन्दी और अँगरेजी दोनों भाषाओं में अपेक्षाकृत उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर जुट गया।

३२

नयी फिल्म की आश्चर्यजनक सफलता के समाचार प्रति सप्ताह मिलते जा रहे थे। पूरे आठ सप्ताह बीत चुके थे और किसी भी सिनेमा-घर में दर्शकों की भीड़ कुछ भी कम होने के कोई लक्षण प्रकट नहीं हो रहे थे। प्रतिदिन प्रति 'शो' में 'हाउस फुल' का कार्ड लग जाता था।

शीघ्र ही गिरिजा के पास कई फिल्म कंपनियों से 'कंट्रेक्ट' के लिये प्रलोभनीय प्रस्ताव आने लगे। प्रत्येक कंपनी लाख-डेढ़-लाख रुपया तक देने को तैयार थी। हेमकुमार ने यह राय दी कि सभी कंपनियों के प्रस्ताव स्वीकार कर लिये जायँ और प्रत्येक फिल्म की 'शूटिंग' के लिये समय बाँट दिया जाय। इस प्रकार वह एक साथ कई फिल्मों में काम कर सकेगी और काफी रुपया भी इकट्ठा मिल जायगा। इसके अतिरिक्त कई फिल्मों द्वारा एक साथ विज्ञापन होने से उसकी 'शोहरत' भी बहुत अधिक फैल जायगी। पर गिरिजा हेमकुमार की बात से सहमत न हुई। उसने स्पष्ट शब्दों में उसे बता दिया कि रुपया कमाना उसका प्रधान उद्देश्य कभी नहीं रहा। वह तो फिल्मी दुनिया के आगे आदर्श रखना चाहती है। इसलिये वह एक बार में केवल एक ही फिल्म में अवतरित होना चाहती है और वह एक फिल्म पूर्णतः सभी विषयों में अपने मन के अनुकूल तैयार हो, ऐसी उसकी इच्छा है। उसमें वह पूरी तरह से अपने को खपा देना चाहती है। और यह तभी संभव हो सकेगा जब उसकी कहानी भी वह स्वयं तैयार करे। हेमकुमार को इस बात पर अत्यंत दुःख और आश्चर्य हुआ कि वैभवशालिनी बनने का ऐसा अच्छा सुयोग पाने पर भी गिरिजा उस सुयोग को इस निर्ममता से ठुकरा रही है।

पर गिरिजा अपनी बात पर अड़ी रही ।

शंकरलाल जी ने उसे नयी फिल्म में अवतरित होने के लिये डेढ़ लाख रुपया देना प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। पर गिरिजा ने पहले अपनी पूरी शर्तें उनके आगे रख दीं। उसने बताया कि कहानी वह स्वयं तैयार करेगी और सिनेरियो तैयार करने से ले कर निर्देशन तक सभी विषयों में उसकी राय से काम होगा। उसकी इच्छा के विपरीत एक भी दृश्य की शूटिंग नहीं हो सकेगी । शंकरलाल जी ने उसकी सभी शर्तें स्वीकार कर लीं।

गिरिजा ने जल्दी ही एक कहानी तैयार कर ली । उसमें बंबई के फैशनेबुल समाज के कृत्रिम जीवन और सांस्कृतिक ढोंग का पर्दा-फाश किया गया था। ऐसे मार्मिक व्यंग-भरे दृश्यों और घटनाओं का चित्रण किया गया था जिनसे उदासीन से उदासीन व्यक्ति के प्राणों में एक नयी चेतना जगे बिना नहीं रह सकती थी। और उस आत्मतुष्ट समाज के विरोधाभास में बंबई के ही दीन-दरिद्रों, अनाथों, मरभुखों और श्रमिकों के घोर दुर्दशाग्रस्त और संघर्षमय जीवन की झाँकियाँ बड़ी ही कलात्मक संवेदना के साथ दिखायी गयी थीं। दोनों परस्पर-विरोधी तत्वों को एक सुन्दर कहानी के सूत्र में ऐसे कौशल से संबद्ध किया गया था कि कथा-रस में कहीं भी फीकापन नहीं आने पाया था, बल्कि उत्तरोत्तर दिलचस्पी बढ़ती ही जाती थी। नायक का चरित्र मोहनदास से बहुत मिलता-जुलता था। नायक प्रारंभिक अवस्था में अपने समाज की विकृतियों और ढोंगों के आल-जाल में बुरी तरह फँसा रहता है और बिना कुछ सोचे-विचारे, अपने परंपरागत जीवन की घिसी हुई लीक पर चला जाता है। उसे तोड़ने और अपने चारों ओर के बँधे हुए जीवन की धारा

को बदलने की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता, कोई कल्पना ही नहीं जगती। यह होते हुए भी उस सीमित जीवन की एकरसता से वह भीतर ही भीतर ऊबा हुआ सा रहता है। उसकी संपन्नता के कारण फैशनेबुल समाज की कई लड़कियाँ उसे घेरे रहती हैं। वह अभ्यासवश उनके साथ अपने को सुखी अनुभव करने का प्रयत्न करता रहता है, पर सुख की निर्विचित्रता से कोई प्राणशील अनुभूति उसके भीतर नहीं जग पाती, गतिशील जीवन की किसी तूफानी तरंग से उसके भीतर की निःस्पन्दता हिल नहीं उठती। दिन बीतते जाते हैं। सहसा किसी अज्ञात और अपरिचित क्षेत्र से एक ऐसी नारी उसके जीवन के प्रांगण में प्रवेश करती है जो अपने साथ कुछ नयी ही अनुभूतियाँ, नयी प्रेरणाएँ और नयी चेतना ला कर उसके एकरसमय जीवन को एक मूलतः नयी भाव-तरंग से तल से सतह तक हिलकोर देती है। वह उसके साथ घनिष्ठता स्थापित करने के लिये अत्यंत उत्सुक हो उठता है। उस नव-परिचित लड़की में फैशनेबुल समाज की कृत्रिमता का लेश भी नहीं है। उसके भीतर सब-कुछ नया, सब-कुछ ताजा और सब-कुछ मौलिक है। वह जैसे जीवन के मूल उत्स से सहसा उठ कर सीधे बंबई के कृत्रिम जीवन के बीच में किसी तूफानी झोंके से आ पड़ी है। वह लड़की भी अपनी अनुभवहीनता के कारण अपने अभ्यस्त जीवन से उकता कर, मोहवश फैशनेबुल समाज के कृत्रिम जीवन के प्रति आकर्षित हो जाती है और नायक के शिष्ट व्यवहार का बड़ा अच्छा प्रभाव उस पर पड़ता है। नायक को अपनी ओर आकर्षित होते देख कर उसके अहम् की तृप्ति होती है और वह भी उसकी ओर खिंच जाती है। धीरे-धीरे दोनों एक-दूसरे के निकट से निकटतर संपर्क में आते चले जाते हैं। इस बीच वे फैशनेबुल लड़-

कियाँ एक दुष्ट-प्रकृति व्यक्ति की सहायता से नायिका के विरुद्ध षड्यंत्र रचती हैं। खल-नायक एक जासूस की तरह लड़की के कुल और शील का पता लगाता है और फलस्वरूप सारे समाज के आगे यह उद्घाटित कर देता है कि वह लड़की समाज के निम्नतम स्तर से आयी है और उसके माँ-बाप साधारण श्रमिक हैं जो लोहा पीट कर या पत्थर तोड़ कर अपना गुजारा करते हैं। सब लोग मिल कर मौन षड्यंत्र द्वारा अपने समाज से लड़की को बहिष्कृत करने के प्रयत्न में जुट जाते हैं और नायक पर उसके विरुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने में कोई बात उठा नहीं रखते। नायक में अपने समाज के अनुरूप ही चारित्रिक दृढ़ता का निपट अभाव पाया जाता है। वह अपने समाज की सामूहिक निंदा का पात्र बन कर भी लड़की का साथ देने की शक्ति अपने भीतर नहीं पाता। फलतः वह भी धीरे-धीरे उससे कतरा कर अलग हो जाता है। लड़की—नायिका—प्रारंभ में कुछ दिनों तक अपने प्रति नायक की उदासीनता का कारण समझ ही नहीं पाती। बाद में धीरे-धीरे उसी समाज के किसी एक सहृदय व्यक्ति से उसे वास्तविकता का पता चलता है। उसे अकस्मात् ऐसा धक्का पहुँचता है कि वह उस प्रारंभिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप आत्मघात करने की बात सोचती है। पर पहला आवेग ठंडा पड़ जाने पर वह शांत हृदय से, यथार्थवादी दृष्टिकोण से सारी स्थिति पर विचार करती है। उसके बाद वह धीरे-धीरे अपने ही पराक्रम से अपने जीवन के विकास के प्रयत्नों में जुट जाती है। जिस सामाजिक स्तर से वह जीवन में आगे बढ़ी थी उस स्तर के प्रति अवज्ञा—बल्कि विद्वेष—का भाव उसके मन से हट जाता है और वह आजीवन उस स्तर के उपेक्षित प्राणियों के जीवन की परिस्थितियों को ऊँचा उठाने

और उन्हीं की सेवा में अपने जीवन को खपा देने का व्रत स्वीकार कर लेती है। और एक दिन ऐसा आता है जब आर्थिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से इस योग्य हो जाती है कि अपने व्रत के अनुसार अपनी योजना को कार्य रूप में परिणत कर सके। वह एक ऐसी शिक्षा-संस्था खोलती है जिसमें निम्नतम स्तर के दीन-हीन, असहाय और अशिक्षित लोग निःशुल्क शिक्षा पा सकें। उस शिक्षा का स्वरूप भी वह ऐसा निर्धारित करती है जो उस उपेक्षित जनता में ज्ञान-प्रचार के साथ-साथ आत्म-गौरव की भावना भी भर सके। धीरे-धीरे सारे देश में उसकी शिक्षा-संस्था एक आदर्श संस्था के रूप में ख्यात हो जाती है। और तब, वह नायिका, जो एक दिन फैशनेबुल समाज द्वारा उपेक्षित—बल्कि विस्मृत—हो चुकी थी, उसी समाज के बने हुए नेताओं और नेत्रियों द्वारा सम्मानित होने लगती है। और एक दिन वह भी आता है जब नायक उसकी ख्याति से मुग्ध हो कर उसके पास गिड़गिड़ाता हुआ आता है, और वह उसे खरी-खरी बातें सुना कर उसे तिरस्कृत कर के अपने और अपने समाज के प्रति प्रदर्शित किये गये तिरस्कार का बदला चुकाती है। नायक के पश्चात्ताप और ग्लानि का ठिकाना नहीं रहता। अंत में नायिका उसे क्षमा कर देती है।

यह था मोटे तौर पर उस कहानी का सार। गिरिजा ने उस कहानी का नाम रखा : 'सुबह के भूले।' इस बार उसने पिछली फिल्म से भी अधिक मनोयोग से संपूर्ण निर्देशन के सम्बन्ध में सावधानी बरती। प्रत्येक संवाद, प्रत्येक दृश्य की सेटिंग और प्रत्येक गीत की तर्ज, और सांकेतिक प्रतीक के रूप में बजने वाले प्रत्येक वाद्य-स्वर को नाटकीय प्रभाव की दृष्टि से पूर्णतः निर्दोष बनाने के प्रयास में

उसने कोई बात उठा न रखी। गीतों की नयी-नयी सम्मिलित और समन्वयात्मक तर्जों की उद्भावना उसने की। शास्त्रीय गीतों का मूल आधार ले कर इनमें विभिन्न प्रान्तों के विविध लोकगीतों और विदेशी गीतों का पुट इच्छानुसार दे कर उसने कई प्रयोग किये। सुयोग्य फिल्मी संगीत-विशेषज्ञों से भी वह परामर्श करती रही। पर अंत में वह अपने मन को पसंद आनेवाली तर्जों को ही रखती थी। प्रत्येक अभिनेता और प्रत्येक अभिनेत्री के भीतर वह बराबर यह भावना भरती रही कि वे कहानी के मूल भाव को—उसकी आत्मा को—अभिनय के पहले पूर्णतया हृदयंगम कर लें और तब उसी भावना की आंतरिकता से प्रेरित हो कर अभिनय करें। प्रधान नायक की भूमिका में उसने हेमकुमार को नियुक्त किया, क्योंकि उस कहानी के प्रधान नायक और खल-नायक में कोई विशेष अंतर नहीं था।

इस प्रकार फिल्म की परिपूर्ण सफलता के लिये उसने बाजी लगा दी। प्रत्येक बात में वह इस हद तक सचेष्ट और सावधान रहती थी कि कई बार एक-एक दृश्य की शूटिंग दुबारा करनी पड़ी। इस से कंपनी का खर्चा तो अवश्य बढ़ा, पर कुल मिला कर जो चीज बन कर अंत में सामने आयी वह वास्तव में क्या टेकनीक, क्या आदर्श और क्या लोकप्रियता—सभी दृष्टियों से अद्वितीय सिद्ध हुई। इस बार की सफलता के आगे पिछली फिल्म की सफलता अत्यंत नगण्य लगने लगी। देश-भर के फिल्मी पत्रों और फिल्म-प्रेमी जनता में एक मात्र उसी की चर्चा होने लगी। अपनी विजय, परिश्रम की सफलता और गौरव की वृद्धि से यद्यपि भीतर ही भीतर उसका हृदय फूल रहा था, तथापि उसने इस बार भी अपने आवेग को संयत रखा और अपने गर्व की भावना को मर्यादा के बाहर नहीं बढ़ने दिया।

३२

समय बीतता गया और गिरिजा अभिनेत्री, निर्मात्री और निर्देशिका—इन तीनों पदों को बड़ी योग्यता से सँभालती हुई नयी-नयी महत्त्वपूर्ण फिल्मों के निर्माण-कार्य में जुटी रही। और आश्चर्य की बात यह थी कि उसकी सफलता का क्रम बराबर बना रहा, बल्कि उत्तरोत्तर उसे अधिकाधिक सफलता मिलती चली गयी। हेमकुमार ने उसे सुझाया कि यदि वह एक साथ कई फिल्मों में काम करना उचित नहीं समझती तो कम से कम इतना तो अवश्य ही कर लिया जाय कि वह स्वयं अपनी एक स्वतंत्र कंपनी खोल ले। इस प्रकार उस पर किसी का रंचमात्र दबाव भी नहीं रहेगा और लाभ भी बहुत अधिक होगा। जब कंपनी की ख्याति और आर्थिक अभिवृद्धि का एकमात्र कारण वही है तब क्यों न वह अपनी उस योग्यता का पूरा लाभ उठावे! पहले तो गिरिजा राजी न हुई। नयी कंपनी खड़ा करना वह एक बहुत बड़े झंझट का काम मानती थी। पर बाद में हेमकुमार के निरंतर समझाते रहने पर उसने उसकी बात मान ली। हेमकुमार ने बताया कि जितना रुपया इस बीच उसके (गिरिजा के) पास जमा हो चुका है उतने के आधे से एक कंपनी खड़ी की जा सकती है। शंकरलाल जी ने जब देखा कि सोने की चिड़िया हाथ से जा रही है तब उन्होंने और कोई चारा न देख कर नयी कंपनी के आधे से अधिक शेयर खरीदने का प्रस्ताव रखा। गिरिजा चाहती थी कि यदि नयी कंपनी ही खोलनी है तो पुरानी कंपनी वालों से साझे का कारोबार खोलने से कोई लाभ न होगा और यदि शेयर बेचने ही हैं तो पेशेवर व्यापारियों को नहीं, बल्कि अभिनेताओं और अभिनेत्रियों

को बेचने चाहिये जिनके परिश्रम का लाभ उठा कर फिल्म व्यवसायी लोग मालालाल बन जाते हैं। उसने इसी के लिये प्रयत्न किया और उसे अच्छी सफलता मिल गयी। कई अभिनेता और अभिनेत्रियाँ फिल्म-व्यवसायी कंपनियों से तंग आ गये थे। गिरिजा ने काफी शेयर खरीदे और वह कंपनी की मैनेजिंग डाइरेक्टर भी बन गयी। उसके प्रबंध और संचालन में कंपनी जम जायगी, कंपनी के सभी हिस्सेदारों को यह विश्वास प्रारंभ ही से होने लगा। पहली फिल्म का नाम 'अखंड ज्योति' रखा गया। उसमें जड़-समाज के भीतर निहित उन उन्नत प्रवृत्तियों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया गया (और उन्हें विकास की ओर उन्मुख करने के सुझाव उपस्थित किये गये) जो समाज के निम्न स्तर के लोगों के भीतर निहित तो अवश्य हैं, पर जिन्हें सचेत रूप से सुसंगठित उपायों से आगे बढ़ाने का कोई प्रयत्न कभी उस समाज के कर्णधारों की ओर से नहीं होता। उनके जड़ और निःस्पन्द जीवन में सचेष्टता, गतिशीलता भरने और उनकी मूल रचनात्मक शक्तियों के बीजों को उपयुक्त मिट्टी में ला कर बिखेरने की आवश्यकता महसूस करते हुए वह फिल्म तैयार की गयी थी। पर फिल्म का निर्माण ऐसे कलात्मक ढंग से किया गया कि प्रचार की तनिक भी बू-बास फिल्म के किसी भी दृश्य या संवाद से नहीं महकती थी। फिल्म को हर प्रकार से रोचक और लोकप्रिय बनाने के कार्य में गिरिजा पूर्णतया संलग्न थी। वह अनुभव से जान चुकी थी कि अधिक से अधिक हृदयों में अपने उद्देश्य का महत्त्व आरोपित करने का सबसे अच्छा उपाय फिल्म की कहानी और कला में सहज स्वाभाविकता, विविधता और रोचकता लाना है। इसलिये इस उद्देश्य में कहीं तनिक भी ढीलापन नहीं आने दिया गया।

चूँकि फिल्म जन-जीवन से संबंधित थी, इसलिये गिरिजा ने उसके प्रधान नायक की भूमिका के लिये किशन को चुना। उससे अधिक उपयुक्त पात्र इस सम्बन्ध में कोई दूसरा नहीं हो सकता, यह धारणा गिरिजा के मन में बद्धमूल हो गयी थी। देहाती और शहराती जीवन के समन्वय से फिल्म की कहानी के प्रधान चरित-नायक के चरित्र का निर्माण हुआ था। किशन के चरित्र का मेल उससे बहुत बैठता था। कहानी किसी दूसरे व्यक्ति ने तैयार की थी, पर उसकी प्रेरणा-दात्री गिरिजा ही थी और किशन को ध्यान में रख कर ही उसने प्रधान चरित-नायक की अवतारणा की थी। किशन को अभिनय के योग्य बनाने के लिये वह प्रतिदिन लगातार कई घंटे उसे शिक्षा देती रही। किशन अब पहले वाला किशन नहीं रह गया था। हिंदी की शिक्षा वह पहले ही पा चुका था। पिछले कुछ वर्षों से शिक्षक की और गिरिजा की सहायता से अँगरेजी का ज्ञान भी उसने काफी बढ़ा लिया था। गिरिजा की सहायता से उसने केवल हिंदी और अँगरेजी भाषाओं का गहरा ज्ञान ही प्राप्त नहीं किया था, बल्कि गंभीर विषयों की पुस्तकें पढ़ कर और उनके सम्बन्ध में गिरिजा से अवकाश के क्षणों में विचार-विनिमय कर उसने ज़ीवन और जगत के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर गंभीर रूप से चिंतन करने का अभ्यास भी डाल लिया था।

सिनेमा जगत् में उसकी दिलचस्पी छुटपन ही से थी और विविध फिल्मों को देख कर उनके अध्ययन से वह उस क्षेत्र से सम्बन्धित विषयों का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर चुका था। इसलिये जमीन पहले ही से तैयार थी और अब गिरिजा ने देखा कि उसमें बीज बोने का समय आ गया है इसलिये उसने उसे प्रधान नायक बनाने

का साहसपूर्ण कदम उठाया था। कंपनी में सम्बन्धित दूसरे लोगों ने उसे दुस्साहस कहा था, पर गिरिजा ने किसी की आपत्ति पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह जानती थी कि वह क्या कदम उठा रही है और क्यों उठा रही है।

इस बात में सचाई अवश्य थी कि किशन ने चाहे कैसी ही उन्नति क्यों न कर ली हो, उसे किसी महत्त्वपूर्ण और क्रांतिकारी फिल्म का प्रधान नायक बनाने की बात गिरिजा को छोड़ कर दूसरा कोई व्यक्ति सोच नहीं सकता था। गिरिजा जानती थी कि उसने बहुत बड़े उत्तरदायित्व का भार अपने ऊपर लिया है और किशन को प्रधान नायक के रूप में खड़ा करके वह अपनी ख्याति और प्रतिष्ठा और कंपनी के भविष्य को दाँव पर रखने जा रही है। पर यह सब जानते हुए भी वह अपने निश्चय से तनिक भी न डगमगायी।

एक दिन उसने घर पर एकांत में किशन से कहा : "देखो किशन, इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि तुम मेरे और अपने उत्तरदायित्व को बड़ी गंभीरता से महसूस करो। तुम्हारे लिये यह काम बिलकुल नया है। मैं मानती हूँ कि इधर तुमने कुछ ही दिनों के भीतर मेरी सिखायी हुई बातों को काफी हद तक पकड़ लिया है और किसी साधारण फिल्म के प्रधान नायक की अपेक्षा तुम अच्छा अभिनय कर लोगे। पर तुम्हारा और मेरा आदर्श किसी साधारण फिल्म का अभिनेता नहीं हो सकता। तुम्हें फिल्मी दुनिया के अभिनय के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी आदर्श उपस्थित करना है। यह बात तुम्हें एक क्षण के लिये भी नहीं भूलनी होगी।"

किशन अपने पैंट की जेब में हाथ डाल कर बड़े गौर से उसकी बातें सुन रहा था। पैंट के ऊपर वह खुले गले का 'शर्ट' पहने था

और पाँव में भूरे रंग का पेशावरी सैंडल। उसके पोशाक-पहनावे में आमूल परिवर्तन आ जाने पर भी उसके मुख की अभिव्यक्ति में अभी तक वही सरल सहृदयता भरी थी और उसी सुन्दर किन्तु भोली सी आँखों में गिरिजा के प्रति वही भक्ति-भाव, वही आदर और वही संभ्रम भरा था जो दस साल पहले वर्तमान था। गिरिजा से यह बात छिपी नहीं थी और किशन का यह भाव उसे बहुत रुचिकर लगता था।

कुछ क्षणों तक चुपचाप, एकांत भाव से गिरिजा की ओर देखते रहने के बाद किशन धीरे से बोला : "मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, गिरिजा, कि मैं उत्तरदायित्व को समझता हूँ और अपनी ओर से किसी भी प्रयत्न में कोई कमी नहीं आने दूँगा। बाकी मेरी योग्यता कितनी है, यह तुमसे छिपा नहीं है।"

"पर अपनी योग्यता के प्रति तुम्हें इतना अविश्वास क्यों है? तुम क्या अपने को अभी तक वही कंपौजिटर किशन समझते हो जिसकी नंगाझोरी एक साधारण दरबान प्रतिदिन लिया करता था?" कहती हुई गिरिजा मीठे व्यंग के साथ मुस्करायी।

किशन के मुख पर लाज की एक हलकी-सी रंगीनी छा गयी। इतने दिन के निकट संपर्क और घनिष्ठ परिचय के बाद भी वह गिरिजा के आगे अक्सर लाज और संकोच से झुक जाता था। उसके स्वभाव की यह एक विचित्र कमजोरी थी, जिसका कारण वह स्वयं नहीं समझ पाता था।

लाज के उस झीने पर्दे को फाड़ने का पूरा प्रयत्न करते हुए किशन ने कहा : "नहीं गिरिजा, यह बात नहीं है। अपनी उस कुंठा पर मैं विजय पा चुका हूँ। और मेरी उस विजय का मूल कारण तुम्हीं हो।

तुम्हीं ने मुझे उस दयनीय मनोवृत्ति से ऊपर उठने के लिये प्रेरित किया—तुम्हीं ने उसके लिये बल दिया और तुम्हीं ने बुद्धि। मुझ जैसे अत्यंत दीन परिस्थितियों में पैदा हुए और हीन परिस्थितियों में पले हुए प्राणी को तुम्ही ने आत्म-गौरव का पाठ पढ़ाया और जीवन के विकास का पथ सुझाया; मन की और बुद्धि की शक्तियों को विकसित करने की पार्थिव सुविधाएँ दीं और आज भी देती चली जा रही हो। तुमने अपने किसी स्वार्थ के लिये ऐसा नहीं किया, यह तो स्पष्ट ही है। यह केवल तुम्हारे हृदय की उदारता और बुद्धि की विशालता के कारण ही संभव हुआ है। यही कारण है कि तुम्हारी महानता के आगे मैं अपने को नितान्त छोटा पाता हूँ, तुम्हारी परिपूर्णता के आगे मैं अपने को निपट अयोग्य पाता हूँ। नहीं तो मेरे आत्मविश्वास में आज तुम्हारी कृपा से कोई कमी नहीं रह गयी है...'' कहते हुए किशन आज पहली बार गिरिजा की ओर पूरी दृष्टि से देख रहा था, जिसमें संकोच और जड़ता का लेश भी नहीं था, बल्कि एक मार्मिक भावुकतापूर्ण गंभीरता छायी हुई थी।

गिरिजा ने आज पहली बार किशन का मूलतः बदला हुआ रूप देखा, जिसके लिये वह तैयार नहीं थी। उसका व्यंग और परिहास का मनोभाव भीतर ही भीतर कपूर की तरह न जाने कहाँ विलीन हो गया। वह कुछ देर तक परीक्षक की सी तीखी, अंतर्भेदी मौन दृष्टि से उनकी ओर देखती रही। उसके बाद उसकी ध्यानमग्न दृष्टि का तीखापन एक स्निग्ध-मधुर और साथ ही कुछ-कुछ करुण भाव में बदल गया। बड़े ही मीठे स्वर में उसने कहा : ''तुम इस तरह क्यों सोचते हो, किशन? तुम यह क्यों भूल जाते हो कि मेरे जीवन में ऊपर से चाहे कैसा ही बदलाव क्यों न आया हो, मैं अपने

अंतर के भी अंतर में वही गुलबिया हूँ, जिसे तुम छुटपन में कभी डाँटते थे, कभी फटकारते थे; कभी अच्छे-अच्छे किस्से सुनाते थे; कभी रेलगाड़ियों के टकराने की, पानी के जहाज के डूबने की और हवाई जहाजों के बादलों से भी ऊपर उड़ने की बातें बताया करते थे; कभी लड़ाई के किस्से और कभी फिल्मी दुनिया की दिलचस्प कहानियाँ दूसरों के मुँह सुन कर मुझे सुनाया करते थे। उस गुलबिया को तुम आज क्यों भूल गये हो? वह गुलबिया मरी नहीं, अभी तक जिन्दा है, किशन! यह बात मैं कुछ बनने के लिये या तुम्हें सांत्वना देने के लिये नहीं कह रही हूँ। यह मैं सच्ची बात सीधे ढंग से तुम्हें बता रही हूँ। यह ठीक है कि बीच में कुछ वर्षों के लिये गुलबिया जीवन की सीधी राह में चलते हुए भटक गयी थी; तरह-तरह के झूठे किंतु रंगीन प्रलोभनों ने उसे मोह लिया था, भरमा दिया था और गिरिजा के रूप में अपना काया-कल्प होते देख कर वह फूली नहीं समा रही थी। पर सुबह की भूली हुई वह गुलबिया जीवन के उलटे-सीधे रास्ते से हो कर शाम को फिर घर लौट आयी है, यह सूचना अभी तक तुम्हें नहीं मिली, यह आश्चर्य की बात है......"

किशन एकांत मनोयोग से देख रहा था कि गिरिजा की भावमग्न आँखों में एक विषाद-मधुर, किंतु स्निग्ध-सरस और सुकोमल वेदना उमड़ आयी थी। वह अपनी आत्मा की अतलगत बीज-शक्ति को उभाड़ कर गिरिजा के तह-पर-तह छाये हुए बाहरी आवरणों के भीतर झाँक कर जैसे युग-युग से खोयी हुई गुलबिया को फिर से खोज निकालने का प्रयत्न कर रहा था।

कुछ क्षणों की मौन-मग्नता के बाद अपने हृदय के इतने वर्षों के

"हो सकता है। तुम्हारी बात का विरोध मैं नहीं कर सकता। इसमें सचाई हो सकती है। पर इतना तो निश्चित ही है कि वह भटकने के बाद अब लौट रहा है। और एक दिन वह ठिकाने पहुँच ही जायगा। जो भी हो, आज मैं वहुत प्रसन्न हूँ। लगता है कि युगों बाद—बल्कि जीवन में पहली बार—मुझे सच्चे सुख की अनुभूति हुई है। ठीक कैसा लगता है यह मैं तुम्हें नहीं समझा पाऊँगा, गुलवि...गिरिजा..."

"गुलबिया ही कहो, तुम्हारे मुँह से वही संबोधन मीठा लगता है। क्यों हिचकिचाते हो? कहो एक बार जी खोल कर 'गुलबिया'! कहो!" आंतरिक आग्रह से गिरिजा बोली।

"गुलबिया!" सचमुच जी खोल कर, मुक्त कंठ से किशन ने कहा।

"किशन, तुम बहुत अच्छे हो! सचमुच वहुत ही अच्छे हो!" कह कर गिरिजा सहसा उठ खड़ी हुई और किशन की पीठ थपथपाने लगी, जैसे उसे शाबासी देना चाहती हो।

किशन चुपचाप उसी तरह खड़ा रहा। एक बिलकुल ही नयी और विशुद्ध आनन्दमयी अनुभूति से उसके अंतर का अणु-अणु सिहर रहा था।

"अब चलो;" गिरिजा ने सहज भाव से कहा। "बातों ही बातों में बहुत देर हो गयी। स्टूडियो में जा कर कल की 'शूटिंग' से संबंधित बातें आज ही तय कर लेनी हैं।"

दोनों कमरे से बाहर निकल आये।

३४

गिरिजा की अभिनय-कला और संचालन सम्बन्धी योग्यता के पूरे प्रमाण मिल चुकने पर भी किशन के प्रधान नायकत्व में फिल्म की सफलता पर दूसरे अभिनेताओं को, जो कंपनी के साझीदार थे, संदेह होने लगा। संभवतः इस संदेह के भीतर ईर्ष्या का भी कीड़ा किसी हद तक घुसा हुआ था, पर उसमें कुछ यथार्थवादी कारण भी निहित थे, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

जब प्रारंभिक 'शूटिंग' चल रही थी तब एक दिन हेमकुमार ने गिरिजा से कुछ निजी और व्यक्तिगत बातें करने के लिये एक घंटे का समय चाहा। पहले तो गिरिजा ने व्यस्तता के कारण एक घंटे का समय देने से साफ इनकार कर दिया, पर हेमकुमार के बहुत अधिक आग्रह करने पर उसने उसे समय दे दिया। यह तय हुआ कि हेमकुमार के डेरे पर ही दोनों संध्या को छः बजे मिलेंगे।

हेमकुमार ने माहिम में एक मकान के दुमंजिले पर एक पूरा फ्लैट अपने लिये किराये पर ले रखा था। वहाँ वह अपनी अम्माँ के साथ रहता था। गिरिजा एक बार पहले भी वहाँ जा चुकी थी और हेमकुमार की अम्माँ से, जिनकी आयु प्रायः पचास वर्ष की होगी, मिल चुकी थी। हेमकुमार की अम्माँ का स्नेहपरायण स्वभाव उसे बहुत पसंद आया था और जब वह जाने लगी थी तब उनके दोनों पाँवों को आंतरिक श्रद्धा से छू कर उसने उनका आशीर्वाद चाहा और पाया था।

उस दिन जब वह ठीक छः बजे हेमकुमार के यहाँ पहुँची तब सबसे पहले उसने अम्माँ से मिलना चाहा। पर मालूम हुआ कि

अम्माँ घर पर नहीं हैं, पड़ोस में किसी के यहाँ मिलने गयी हैं।

दोनों ड्राइंग रूम में बैठे। हेमकुमार के नौकर ने ट्रे में चाय ला कर मेज पर रख दी। गिरिजा ने अपने हाथ से चाय तैयार करके एक प्याला उसकी ओर बढ़ा दिया और दूसरा प्याला स्वयं ले लिया।

दो घूँट पीने तक कमरे में सन्नाटा छाया रहा। उसके बाद हेमकुमार ने कुछ खाँस कर धीरे से कहना शुरू किया: "मैं एक जरूरी बात की सूचना आपको देना चाहता था, कुमारी जी। बात यह है, आप जानती हैं, मैं किसी दूसरे भाव से आपसे कोई बात कभी नहीं कह सकता। आपके हित को ही पिछले कुछ वर्षों से मैं अपना हित मानता रहा हूँ। मुझे पूरी आशा है कि आप स्वयं अपने अनुभव से मेरी इस बात को अतिशयोक्ति नहीं मानेंगी। यद्यपि इस तरह की बात मुझे स्वयं अपने मुँह से नहीं कहनी चाहिये थी—और आज तक मैंने कभी कुछ कहा भी नहीं—आज एक कारण आ पड़ा है। आपके संबंध में दूसरे लोगों में जब भी कोई चर्चा चलती है, मैं प्रत्येक बात पर आपका ही पक्ष ले कर चलता हूँ। कभी तर्क द्वारा मुझे अपनी बात प्रमाणित करनी पड़ती है, कभी बिना तर्क के ही लोग मान जाते हैं। पर पिछले कुछ दिनों से एक-दो नहीं, प्रायः सभी लोग एक बात को ले कर आपका तीव्र विरोध कर रहे हैं। मेरे आगे उनके उस विरोध का रूप संभवतः और अधिक तीव्र हो जाता होगा। आपके आगे वे लोग इस संबंध में खुल कर कुछ कह नहीं पाते। बात यह है कि किशन को आपने जो प्रधान नायक की भूमिका दी है उसका औचित्य किसी के आगे स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। जैसा कि मैं बता चुका हूँ, दूसरे लोग तो आपस में इसका

तीव्र विरोध करते ही हैं, पर जो लोग विरोध नहीं करना चाहते उनकी समझ में भी आपके इस चुनाव का कोई कारण समझ में नहीं आ रहा है...''

''उन 'विरोध न करने वालों' में से क्या किसी एक का नाम लेने की कृपा आप करेंगे ?'' चाय के प्याले को नीचे रखते हुए गिरिजा ने कहा।

गिरिजा के मुख का गंभीर भाव देख कर हेमकुमार सहम गया। पर आज वह साफ बात कहने के लिये जैसे दृढ़प्रतिज्ञ था। स्वयं उसके मुख का भाव गिरिजा से भी अधिक गंभीर हो आया और साथ ही एक हलकी सी लालिमा उसके चेहरे पर दौड़ गयी।

''उदाहरण के लिये, आप मुझे ही ले लीजिये,'' उसने आधी दृष्टि से गिरिजा की ओर देखते हुए कहा। ''मैं आप से आंतरिक क्षमा चाहते हुए वह प्रकट कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मैं स्वयं यह समझ नहीं पाता हूँ कि किशन को किस विशेषता के कारण आपने 'अखंड ज्योति' का प्रधान नायक चुना है। इतना तो स्पष्ट है कि उसके लिये आपके अंतर में एक कोमल स्थान है, पर केवल इसी एक कारण से एक महत्त्वपूर्ण फिल्म के प्रधान नायक के पद पर उसे प्रतिष्ठित करना—माफ कीजिएगा—बात मेरी समझ में कुछ आयी नहीं।''

गिरिजा कुछ देर तक उसी गंभीर भाव से और साथ ही एक परीक्षक की सी दृष्टि से हेमकुमार की ओर देखती रही। जैसे उसके अंतर की असली बात जानना चाहती हो। उसके बाद एक लंबी साँस ले कर धीरे से, जमे हुए शब्दों में, बोली : ''देखिये हेमकुमार जी, दूसरों के दृष्टिकोण के संबंध में मैं कुछ नहीं कहना चाहती और

न कुछ परवा ही करती हूँ। पर चूँकि स्वयं आपके मन में मेरे चुनाव के संबंध में संदेह उत्पन्न हुआ है, इसलिये सारी बात का स्पष्टीकरण कर देना मेरे लिये आवश्यक हो गया है। मुझे प्रसन्नता है कि इस संबंध में कम से कम एक बात तो आपके आगे स्पष्ट हो चुकी है। वह यह कि किशन के लिये मेरे अंतर में एक बहुत कोमल स्थान है। पर यह भी सच है कि केवल इसी एक कारण से मैं उसे कभी प्रधान नायक न बनाती। किशन के अत्यंत निकट संपर्क में रहने के कारण मैं जानती हूँ कि उसके भीतर अभिनय-कला के बीज बहुत पहले से वर्तमान हैं। केवल उनके विकास और प्रकाश का अवसर उसे आज तक नहीं मिला था। मैं पिछले कुछ महीनों से उसके भीतर निहित उन्हीं बीजों के विकास के प्रयत्नों में पूरी शक्ति से जुटी रही हूँ, यह बात आपसे छिपी नहीं है। अब केवल इतनी ही सूचना मुझे आपको देनी है कि उसकी अंतर्निहित शक्तियों का जो विकास इधर हुआ है वह आश्चर्यजनक रूप से अपूर्व है। स्वयं मुझे इतनी आशा नहीं थी। मैंने जो चुनाव किया है उसका अंतिम परिणाम देखे बिना ही जो लोग आलोचनाएँ कर रहे हैं उन धन्यात्माओं से अभी मुझे कुछ कहना नहीं है। समय अपने-आप बता देगा...''

गिरिजा का एक-एक शब्द एक-एक गोली की तरह हेमकुमार की छाती पर लग रहा था। पर वह बड़ी वीरता से उन सब गोलियों का आघात सह गया। अपने मुरझाये हुए मुख पर एक कृत्रिम मुसकान की चमक लाने का प्रयास करते हुए वह बोला : ''आपकी बात सुन कर इस संबंध में मुझे और कुछ नहीं कहना है, कुमारी जी। मेरा सारा संदेह जाता रहा, सारे विरोधी तर्क समाप्त हो चुके।

अपने संदेह के लिये मैं आपसे आंतरिक क्षमा चाहता हूँ...पर... पर...केवल एक और निवेदन मुझे आपसे करना है..."

गिरिजा कुछ बोली नहीं, केवल प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखती रही।

"बात यह है, कुमारी जी", तनिक खाँस कर, उँगली से मेज पर कुछ अज्ञात चिह्न बनाने का प्रयत्न करते हुए, गिरिजा की ओर पूरी दृष्टि से देखने का साहस न करते हुए, हेमकुमार बोला : कि आप जानती हैं—मैं प्रारंभ ही से आपके महान गुणों का प्रशंसक और आपकी सेवा का अभिलाषी रहा हूँ..." कहते हुए उसके मुँह पर लाली दौड़ गयी थी। मेज पर उसकी उँगली और अधिक तेजी से चलने लगी। वह कहता चला गया : "मैं बराबर अपने मन में यह आशा बाँधे रहा हूँ कि एक दिन आप अवश्य ही मेरी आंतरिक सेवा को स्वीकार करेंगी—यद्यपि प्रतिदिन सोचते रहने पर भी इस संबंध में अपने मन का भाव आपके आगे स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करने का साहस मुझे आज तक नहीं हुआ। पर अब मन की बात को मन ही में दबाये रखना मेरे लिये संभव नहीं हो रहा है। इसलिये आज यह निवेदन करने की धृष्टता कर रहा हूँ कि क्या आप इस तुच्छ सेवक को अपना जीवन-संगी बनाना स्वीकार करेंगी?" अंतिम वाक्य हेमकुमार बहुत जल्दी-जल्दी, रटे हुए पाठ की तरह कह गया।

गिरिजा विस्मित दृष्टि से हेमकुमार का मुँह ताकती रह गयी। किस बात से क्या बात आ पड़ी! जब हेमकुमार ने आज शाम के लिये समय माँगा था तब उसकी कल्पना में किसी भी छिद्र से, धुँधली से धुँधली छाया के रूप में भी, इस बात की संभावना प्रवेश नहीं कर पायी थी कि हेमकुमार इस तरह का प्रस्ताव उसके

आगे रख सकता है। क्षण-भर के लिये उसे लगा जैसे उस एकांत कमरे में उसके लिये कोई अप्रत्याशित खतरा पैदा हो गया है। पर तत्काल उसने इस पशु-संस्कारोचित आतंक और आशंका की भावना से अपने को सँभाल लिया और सँभलते ही उसने हेमकुमार के लज्जा से संकुचित और अज्ञात विषाद से म्लान मुख की ओर फिर एक बार गौर से देखा। और तब उसके मन पर यह निश्चित विश्वास जम गया कि उसकी घबराहट के लिये कोई भी कारण नहीं है।

"देखिये हेमकुमार जी," परम धैर्य और पूरे आत्मविश्वास के साथ उसने कहा, "आपने मेरे जीवन के घोर संकट-काल में मेरा साथ दे कर मेरे ऊपर जो कृपा की, आपके उस ऋण को मैं इस जीवन में नहीं चुका सकूँगी। मैं जानती हूँ कि जब से आपसे मेरा परिचय हुआ आप बराबर मेरी हिताकांक्षा से प्रेरित हो कर मुझे ऐसी सलाह देते रहे जिसमें मैं खतरों से बचती हुई प्रगति के पथ पर पाँव रख कर आगे बढ़ती रही। इन कारणों से मैं प्रारंभ ही से आपको अपने सगे भाई की तरह मानती आयी हूँ। मुझे आज जो ख्याति प्राप्त हुई है, मेरी आर्थिक दशा में जो सुधार हुआ है और, इन दोनों से बढ़ कर, अपने जीवन का जो सुस्पष्ट लक्ष्य मेरे सामने आया है और उस लक्ष्य की ओर बढ़ने का जो सही रास्ता मुझे दिखायी दिया है, यह सब केवल आप ही के स्नेह और सदाशयता के कारण संभव हुआ है। आपसे खलनायक के रूप में मुझे परिचित कराया गया था और निकट संपर्क में आने पर आपको एक महान मनुष्य के रूप में मैंने जाना—उस श्रेणी के मनुष्य के रूप में जो आज धरातल से बड़ी तेजी से गायब होती चली जा रही है। आपके प्रति श्रद्धा की जो भावना इतने दिनों से मेरे मन में बराबर

बनी रही है—और निश्चय ही भविष्य में भी बनी रहेगी—उसका ठीक-ठीक वर्णन मैं इस समय आपके आगे नहीं कर सकती। इसीलिये मैं कहती हूँ कि मेरी सेवा करने की बात कह कर आपने मेरे साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है। सेवा तो मुझे आपकी करनी चाहिये। आप मेरे गुरुतुल्य पूजनीय हैं और मैं सचमुच, मन-ही-मन सदा आपकी पूजा करती हूँ। आप मेरे जीवन के साथी बराबर बने रहें, इससे बड़े गौरव की बात मेरे लिये और क्या हो सकती है! पर...आपका इंगित—जहाँ तक मेरा अनुमान है—कुछ दूसरी ही ओर है। इसलिये मैं एक निवेदन आज आपसे अंतिम बार कर दूँ, ताकि बाद में कोई गलतफहमी आपके मन में बनी न रहे। वह यह कि मैं प्रचलित अर्थ में अपने 'जीवन-संगी' को बहुत पहले चुन चुकी हूँ—आपसे परिचय होने से भी बहुत पहले—बल्कि जीवन की वास्तविकता से परिचित होने से भी पूर्व। यह ठीक है कि बीच में मेरे जीवन की परिस्थितियाँ बदल जाने से मैं कुछ वर्षों के लिये भटक गयी थी और तब अपने उस जीवन-संगी के संबंध में गंभीरता-पूर्वक विचार करने का अवकाश ही मुझे नहीं मिलता था। पर अब फिर मेरी आँखें खुल गयी हैं और मेरे विचार निश्चित हो चुके हैं। इसलिये उस विशेष अर्थ में मेरे जीवन-संगी बनने की बात आप सदा के लिये अपने मन से निकाल लें, मेरा यह एकांत अनुरोध आपसे है..."

हेमकुमार का चेहरा सहसा ऐसा फीका पड़ गया, जैसे उसमें रक्त की एक बूँद भी शेष न हो। फिर भी, उस एकदम जड़ और मृत अवस्था में भी, उसने प्रायः रोने की-सी मुद्रा बना कर भर्रायी हुई आवाज में कहा: "मुझे इस बात के लिये दुःख है,

गिरिजाकुमारी जी, कि इतने दिनों तक मैं मूर्खतावश कुछ दूसरी ही धारणा मन में बनाये रहा और सहज विश्वास के साथ ऐसी आशा मन में बाँधे रहा जो आज मेरी चरम मूर्खता सिद्ध होने जा रही है। मैं आशा करता हूँ, आप इसके लिये मुझे क्षमा करेंगी—मैंने व्यर्थ ही आपका बहुमूल्य समय नष्ट किया और आपका जी दुखाया...''

और, हतबुद्धि गिरिजा ने देखा कि ऐसा कहते हुए हेमकुमार की आँखों से टप-टप करके दो बूँद आँसू गिर गये।

वह उचक कर उठ खड़ी हुई और अपनी कीमती रेशमी साड़ी के पल्ले से उसके आँसू पोंछती हुई स्नेह-विकल स्वर में बोली: ''छी-छी, आप इतने समझदार होने पर भी बच्चों की तरह आँसू बहाते हैं! परिस्थिति की यथार्थता पर गंभीरता से विचार करके शांत हो जाइये, हेमकुमार जी। मैं बराबर आपको इस प्रकार की थोथी भावुकता के ऊपर समझती रही हूँ। और आज भी, आपके इन आँसुओं के बावजूद, मैं यही मानती हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि इस क्षणिक आवेश के टल जाने के बाद आपका फिर वही गंभीर व्यक्तित्व उभर आयेगा।''

हेमकुमार स्वयं ही अपने आँसुओं से लज्जित हो रहा था, ऐसा लगता था। पर चाहने पर भी उन्हें नहीं रोक पाता था। उस आवेश से मुक्त होने में उसे कुछ समय लगा। जब आँसुओं का तार टूटा तब गिरिजा फिर अपनी जगह पर जा कर बैठ गयी। उस अप्रत्याशित परिस्थिति के लिये तैयार हो कर वह नहीं आयी थी, इसलिये हेमकुमार को सांत्वना देने पर भी वह स्वयं सकोच से सिमटी जा रही थी।

'टी-पाट' में अभी काफ़ी चाय शेष थी। परिस्थिति की

अशोभनता को टालने के उद्देश्य से गिरिजा ने चाय का ताजा प्याला तैयार करके हेमकुमार की ओर बढ़ाया और एक प्याला स्वयं अपने लिये भी तैयार किया।

"पी लीजिये, चाय ठंडी हो रही है," स्नेह-भरे आग्रह के स्वर में गिरिजा बोली।

रूमाल से आँसुओं के अवशिष्ट चिह्नों को पोंछने के बाद हेम-कुमार ने धीरे से प्याला अपनी ओर बढ़ाया और गिरिजा की ओर न देख कर भर्रायी हुई आवाज में धीरे से बोला : "माफ कीजियेगा, वह एक ऐसा अजीब सा 'फिट' मुझे आ गया था, जो मेरे बस का नहीं था। इसका कारण शायद यही था कि बहुत दिनों से मन में पाला हुआ स्वप्न—बल्कि जमी हुई आशा—सहसा टूट गयी। पर अब मैं शांत हूँ। आपसे कोई शिकायत मुझे नहीं है। मैं आपको किसी भी बात के लिये उलाहना देने का अधिकारी भी नहीं हूँ। भाई-बहन के जिस स्नेह और सौहार्द की बात आपने कही है उससे मुझे संतुष्ट रहना चाहिये, यह बात भी मैं मानता हूँ। फिर भी मन को बोध नहीं होता। इसका कारण शायद यह है कि मेरा जीवन बहुत दुखी रहा है। चार वर्ष पहले तक मैं इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहा। दो रोटियों का भी कोई ठिकाना मैं कहीं नहीं लगा पाया। दर-दर से दुतकारा जाता रहा हूँ। माँ का स्नेह पाने पर भी माँ से दूर रह कर वर्षों रोजी की खोज में भटकता रहा हूँ। इन सब कारणों से अपने को आश्रयहीन, अनाथ और असहाय समझने की एक आदत सी मुझे पड़ गयी है। सिनेमा संसार में प्रवेश करने पर जब पेट की समस्या हल करने का उपाय किसी तरह कर पाया तब स्वभावतः मेरे मन में स्थिर हो कर सुखी गृहस्थ-जीवन बिताने की

आकांक्षा जग उठी। और मन की ऐसी स्थिति में मेरा परिचय आपसे हुआ। मेरे मन का तार पहले ही परिचय से आपसे ऐसा बँध गया कि बिना आपके मन का भाव जाने ही मुझे लगा कि वह तार जीवन में कभी टूट ही नहीं सकता। यह मेरी मूर्खता थी, यह मैं आज मानता हूँ। पर मूर्खता हो चाहे कुछ हो, मेरे लिए उसका बड़ा महत्त्व था। और आज जब अप्रत्याशित रूप से वह काल्पनिक तार—जो मेरे लिये वास्तविक था—टूट गया, तब उसकी जो प्रतिक्रिया हुई वह स्वाभाविक ही थी। इसके लिये मैं फिर एक बार आपसे माफी चाहता हूँ और आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस तरह की मेरी यह पहली ही मूर्खता थी और जीवन में फिर कभी इसके जगने की कोई संभावना नहीं है। साथ ही मुझे यह भी विश्वास है कि आपके समझाने से धीरे-धीरे मेरे मन को बोध हो जायगा।"

धीरे-धीरे उसकी प्रारम्भिक झेंप दूर हो गयी थी और वह सहज भाव से गिरिजा की ओर देखने लगा था।

"मुझे यह जान कर हार्दिक दुःख हुआ कि मैं न चाहने पर भी आपके मन के कोमल भाव को चोट पहुँचाने का कारण बनी हूँ," गिरिजा ने सहज स्नेह-सने स्वर में कहा, "मैं आपको पहले ही बता चुकी हूँ कि आपके प्रति मेरे मन में केवल स्नेह ही नहीं, श्रद्धा भी है। पर इस भावना को भाई-बहन के संबंध के सिवा और किसी भी दूसरे संबंध से मैं सुरक्षित नहीं रख पाऊँगी, यह भी निश्चित है। मुझे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपके मन को भी अब धीरे-धीरे मेरी बात के औचित्य के संबंध में बोध होने लगा है। आपको सुखी गृहस्थ जीवन बिताने के और भी बहुत से अवसर मिलेंगे, हेमकुमार जी। इसलिये मेरी प्रार्थना है कि इस

सम्बन्ध में आप अभी से अधीर न हों। अच्छा, अब समय हो चुका। इस समय मैं चलती हूँ और आशा करती हूँ कि कल जब मिलूँगी तो भाई को बहन के प्रति स्नेहाशीर्वाद के साथ मुस्कराता हुआ पाऊँगी।" कह कर गिरिजा सहसा उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़ कर बाहर चली गयी। उसने जानबूझ कर यह नहीं पूछा कि "आप भी क्या इस समय स्टूडियो चलना पसन्द करेंगे?" हेमकुमार के लिये आज कुछ समय तक अकेले, एकांत में रहने में ही भलाई है, यह सोच कर वह उसे छोड़ कर चली गई। बाहर उसकी कार खड़ी थी। उसपर चढ़ कर वह सीधे स्टूडियो चली गयी।

३५

जिस दिन गिरिजा ने किशन को यह विश्वास दिलाया कि गुलबिया अभी खोयी नहीं है, लंबे चक्करों में भटकने के बाद फिर लौट आयी है, उस दिन से उसके भीतर एक तूफानी झोंके के फल-स्वरूप ऐसी उथल-पुथल मचने लगी कि दो-तीन दिन तक तो उसके वेग को सँभाल सकना उसके लिये कठिन हो गया। गुलबिया की स्नेहस्मृति की सूक्ष्मधारा उसके भीतर अंतःसलिला की तरह बचपन से ले कर आज तक कभी ज्ञात और कभी अज्ञात रूप से निरंतर समान गति से बहती चली आती थी। जब से गुलबिया खो गयी और गिरिजा सामने आयी तभी से उस स्नेह की व्यक्त धारा दब कर अव्यक्त रूप धारण कर चुकी थी। गिरिजा से वह बराबर सहमता रहा, पर अपने भीतर की गुलबिया को उसने कभी एक क्षण के लिए भी अपने से अलग नहीं होने दिया। उसे वह कभी दुलराता, कभी फटकारता, कभी हँसाता, कभी रुलाता, कभी देश-विदेश की सैर

कराता, कभी बीहड़ वनों में उसके साथ स्वयं भी भटकता, कभी उसको ले कर काव्य लोक में विचरण करता और कभी जीवन की कठोर यथार्थता के बीच उसी के साथ पसीना बहाता। पर गिरिजा को देख कर उसके मन में कभी इस तरह की कल्पना नहीं जग पाती थी। उससे वह बराबर दबा रहता और दूर ही से उसके प्रति आदर और संभ्रम का भाव रखता था। कंपोजिटर की स्थिति से जब वह गिरिजा के ही प्रयत्नों से आगे बढ़ा और अधिक शिक्षित और सुसंस्कृत बन कर 'बाबू' वर्ग की स्थिति में आ पहुँचा, तब भी गिरिजा के आगे सिर ऊँचा करने और उससे समान स्तर पर बातें करने का साहस उसे तनिक भी नहीं हुआ। ऐसा गंभीर संभ्रमपूर्ण, ऐसा ऊँचा था गिरिजा का व्यक्तित्व उसके लिए! इसलिये जब उसी महान् व्यक्तित्व-शालिनी गिरिजा ने उसे यह विश्वास दिलाया कि वह अब भी वही गुलबिया है जिस पर वह रौब गाँठा करता था, तब स्वभावतः सारी दुनिया का रंग ही उसकी आँखों में मूलतः बदल गया। जीवन और जगत् के संबंध में उसके दृष्टिकोण में ही मूलगत अंतर आ गया। आज वह सचमुच अपने को प्रधान नायकत्व के लिये उपयुक्त पात्र समझने लगा। कल तक उसके मन में बराबर यह आशंका बनी रहती थी कि जिस फिल्म की प्रधान नायिका गिरिजा हो उसके प्रधान नायक की भूमिका में वह परिपूर्ण आत्म-विश्वास के साथ काम नहीं कर सकेगा। आज वह आशंका जाती रही, क्योंकि अब उसके मन में यह विश्वास जम गया था कि प्रधान नायिका गिरिजा नहीं बल्कि गुलबिया है। गुलबिया के लिये वह सब दिन प्रधान नायक ही बना रहा। इसलिये अब वह बड़ी आसानी से, पूरे अधिकार और आत्म-विश्वास के साथ प्रधान नायक का 'पार्ट' अदा कर सकेगा।

उस दिन तीसरे पहर अपने कमरे में लेटे-लेटे किशन इसी तरह की बातें सोच रहा था। पर सोचते ही उसके मन में सहसा दूसरे ही क्षण एक नया संदेह उत्पन्न हुआ। कहीं ऐसा तो नहीं है कि गिरिजा ने उसके मन में केवल अभिनय के संबंध में आत्म-विश्वास जगाने के उद्देश्य से ऐसी धारणा जगा दी हो, और वास्तविकता को जानबूझ कर छिपा कर उसे कुछ समय के लिये भ्रम में रखना चाहा हो? यह बहुत संभव है कि केवल फिल्म की सफलता ही उसका मूल उद्देश्य है और वह उसे हर तरह से, प्रत्येक दृष्टिकोण से सफल बनाने के लिये सभी प्रकार के उपायों और युक्तियों को काम में लाना चाहती है—फिर चाहे वे उपाय और युक्तियाँ झूठ पर आधारित हों या सचाई पर, चाहे वे दूसरे के जीवन पर कैसा ही प्रभाव क्यों न छोड़ जावें और अपनी प्रतिक्रिया से दूसरे के जीवन को बना डालें या सदा के लिये बिगाड़ डालें। गिरिजा एक जन्मजात अभिनेत्री है और उसके लिये यह सब संभव है!

सोचते-सोचते, उस मूलतः बदली हुई विचार-तरंग के प्रभाव से किशन का सारा मनोभाव चौपट हो गया। घनघोर अवसाद के दौरे ने उसके मन को छा लिया। उसने सोचा कि यदि सचमुच गिरिजा ने केवल फिल्म की सफलता की दृष्टि से उसे धोखे में रखना चाहा हो तो इससे बड़ा अपघात उसके साथ दूसरा नहीं हो सकता। इससे तो यह अच्छा होता कि वह बराबर कंपोजिटर ही बना रहता, क्योंकि तब उस स्थिति में गिरिजा की समकक्षता में आने की कोई कल्पना ही उसके मन में न जगती। समकक्षता की बात तो उसने कंपोजिटर की स्थिति से ऊपर उठ जाने के बाद भी नहीं सोची थी, पर गिरिजा ने जब एक बार बलपूर्वक उसे इस दृष्टि से सोचने के

लिये प्रेरित कर दिया था तब उसमें व्यतिक्रम होने की कल्पना ही आतंकजनक थी।

उसके मन में यह इच्छा जगने लगी कि वह अपने को उसी अनाथ और असहाय अवस्था में सोचे जब वह दिन-भर चौका-बर्तन या मजूरी के दूसरे कामों में अपने पिता जग्गू का हाथ बटाने से इस बात के लिये अवकाश ही नहीं पाता था कि कुछ लिख-पढ़ सके। तब पढ़ने की तीव्र इच्छा होने पर भी वह जीवन की विवशता के कारण मन मार कर रह जाता था। बड़ी मुश्किल से रात में कभी एक-आध घंटा उसके लिये निकाल लेता था। रात में बहुत देर में उसे काम से फ़ुर्सत मिल पाती थी। दिन-भर की शारीरिक थकावट के बाद रात में कभी ग्यारह और कभी बारह बजे जब वह पढ़ने बैठता तो जल्दी ही आँखें झपने लगतीं और शिथिल शरीर उसके मन का साथ देने से साफ़ इनकार कर देता। बाद में जब वह गिरिजा के ही प्रयत्नों से स्कूल में भरती हो गया तब स्कूल में थोड़ी-बहुत जो पढ़ाई हो जाती उसके अतिरिक्त घर पर वह कुछ भी न सीख पाता, यद्यपि अधिकाधिक पढ़ने और सीखने की लालसा प्रतिक्षण उसके मन में बनी रहती। क्योंकि स्कूल जाने के पहले और स्कूल से लौटने के बाद उसे क्या घर और क्या बाहर चौका-बर्तन करने या उसी तरह के दूसरे धंधों में व्यस्त रहना पड़ता। उस बेफ़ुर्सती की स्थिति में भी उसने अपनी लगन से किसी तरह इतनी शिक्षा पा ली कि कंपोजिटरी सीख सका और उतने ही को ज्ञान की चरम सीमा मान कर वह संतोष कर लेना चाहता था। पर यथासंभव अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने की अपनी किसी अज्ञात प्रवृत्ति पर चाहने पर भी वह विजय प्राप्त न कर सका और एक प्रेस में नौकरी मिलने पर वह उन पुस्तकों के द्वारा कुछ

न कुछ सीखता रहता जिन्हें उसे कंपोज करना पड़ता। इस बीच जग्गू की मृत्यु हो गयी। जग्गू अपने इकलौते लड़के को प्राणों से भी अधिक चाहने पर भी कभी एक दिन के लिये भी उससे प्यार से नहीं बोला था। वह अपने घमंडी और रूखे स्वभाव से लाचार था। लड़के के किसी हद तक शिक्षित होने का तनिक भी महत्त्व मानने को वह तैयार नहीं था। उसे अपने बाहुबल पर गर्व था और केवल अपने हाथ-पाँव के बल पर जीवन की कठिन यात्रा को तय करने, तड़के सुबह से ले कर आधी रात तक मेहनत-मजदूरी करके दो रोटी कमाने को ही वह सब से बड़ा पराक्रम मानता था। जवानी में वह पहलवानी में नाम कमा चुका था। उसे तब अधिक प्रसन्नता होती जब उसका बेटा मानसिक विकास से अधिक अपने शारीरिक विकास की ओर ध्यान देता और पहलवानी करता। फिर भी यह सोच कर वह किशन की पढ़ाई-लिखाई का विरोध नहीं करता था कि जमाना बिलकुल बदल गया है और दुनिया की सभी बातें उलटे क्रम से चलने लगी हैं। सारे संसार की मूर्खता पर उसे तरस आता था। स्वयं महावीर को—जिसकी नौकरी करके वह दो रोटी की जुगत कर पाता था—वह दया की दृष्टि से देखता था। महावीर के इस दुर्भाग्य पर उसे तरस आता था कि मिट्टी खोद कर, हल चला कर, शारीरिक परिश्रम करके जीविका निर्वाह करने वाले कुल में पैदा हो कर भी वह बाबुओं की तरह सब पर शासन चला कर बैठे-बैठे रुपया कमा रहा है और आराम-तलब बन कर अपनी जिन्दगी बरबाद कर रहा है। वह महावीर के मुँह पर स्पष्ट शब्दों में यह बात कह देता था और जीवन में श्रम के महत्त्व पर और पसीने की कमाई खाने के आदर्श पर अक्सर अच्छा खासा लेक्चर उसे दे दिया करता। महावीर ने कभी उसकी

बात का बुरा न माना, बल्कि बराबर वह उसकी इज्जत ही करता रहा। केवल महावीर ही नहीं, अपने निकट संपर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों को जग्गू समय-असमय इसी तरह के लेक्चर पिलाया करता था और संसार की सारी सुख-सुविधाओं और ज्ञान-विज्ञान की तुच्छता प्रमाणित करके एकमात्र श्रम को ही जीवन का मूल आदर्श घोषित किया करता था। किशन अक्सर अपने पिता की इस हठधर्मी और एकांगीय विश्वास से खीझ जाया करता था। फिर भी उसकी ईमानदारी, सैद्धांतिक दृढ़ता और चारित्रिक बल की प्रशंसा वह मन-ही-मन किया करता था, और प्रकट में कभी-कभी उसके प्रति उपेक्षा का भाव जताने पर भी उसके किसी भी आदेश की अवज्ञा वह नहीं करता था—फिर चाहे उसके पालन में कैसा ही मानसिक कष्ट उसे क्यों न झेलना पड़ता। बाप-बेटे के बीच कभी मुक्त रूप से स्नेह-भरी बातें नहीं होती थीं। बल्कि अनिवार्य रूप से आवश्यक बातों को छोड़ कर कोई बातें ही नहीं होती थीं। किसी तीसरे आदमी को ऐसा लगता था जैसे दोनों एक दूसरे से मुँह चुरा रहे हों। जग्गू को जब उससे कोई बात कहनी होती तो प्रायः परोक्ष रूप से ही कहता और किशन का उत्तर प्रायः ही केवल हाँ या ना तक सीमित रहता। अपने हठी, घमंडी और रूखे स्वभाव वाले पिता के प्रति उसके मन के भी मन में असीम श्रद्धा और आदर का भाव वर्तमान था। इसलिये जिस दिन जग्गू की मृत्यु शूल-वेदना के कारण हुई उस दिन उसके मन के चारों ओर गहरे अंधकार की मोटी परत जम गयी। लगता था कि वह घना अंधकार न कभी फटेगा न छूटेगा। उसी तरह अपने गाढ़े काले रंग से आजीवन उसकी अनाथावस्था को छाया रहेगा। अपनी माँ की कोई याद ही उसे नहीं थी। जब

वह एक साल का रहा होगा तभी वह मर चुकी थी। वह केवल अपने पिता को जानता था और पिता के कारण महावीर के परिवार को—और महावीर के परिवार में भी विशेष रूप से गुलबिया को। जग्गू की मृत्यु हो गयी और गुलबिया तो पहले ही गिरिजा बन कर उससे अलग हो चुकी थी। इसलिये उसे लगा कि विराट विश्व में उसके लिये न कोई सहारा रह गया, और न कोई दिलचस्पी।

पर सूने अँधेरे की वे काली घड़ियाँ भी धीरे-धीरे बीत चलीं और उसके एकाकी मन के भीतर, न जाने जिस अज्ञात कोने से, कोई रहस्यमयी प्रवृत्ति उसे एकाकी जीवन के पथ पर आगे बढ़े चले जाने के लिये उसकाती रही।

३६

जग्गू की मृत्यु के बात झमिया ने किशन को अपने पास रख लिया। उस अनाथ लड़के को वह अपने ही बेटे की तरह मान कर उस पर स्नेह बरसाती रही और इस प्रकार गिरिजा की व्यस्तता-जनित अनचाही अवज्ञा और निकटता के अभाव की पूर्ति करती रही। झमिया को छोड़ कर उस घर में और किसी भी दूसरे व्यक्ति को उसमें कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी—यद्यपि किसी को कोई विद्वेष भी उससे नहीं था। महावीर कभी तो डेयरी का प्रबंध करने और हिसाब-किताब देखने में व्यस्त रहता, कभी दो-तीन हिंदी संवादपत्रों को पहले पृष्ठ के पहले अक्षर से ले कर अंतिम पृष्ठ के अंतिम अक्षर तक पढ़ते रहने में तल्लीन रहता और कभी उन पत्रों में पढ़े हुए समाचारों को डेयरी में काम करने वाले श्रमिकों को उनके अवकाश के क्षणों में सुना कर तृप्ति का अनुभव करता। न किशन की प्रतिदिन की गति-

विधि पर ध्यान देने की फुर्सत उसे रहती न घर से संबंधित प्रतिदिन की छोटी-छोटी बातों पर। यह सब भार झमिया के उपर ही था। घर में झाड़ू लगाने, सबके बिस्तर झाड़ कर ठीक करने, बच्चों के व दूसरों के प्रतिदिन के व्यवहार के कपड़ों को धोने, बच्चों की देख-भाल करने तथा और भी दूसरे छोटे-मोटे किन्तु अनिवार्य रूप से आवश्यक कामों को सँभालने का कुल भार उसने अपने ऊपर स्वेच्छा से ले रखा था। किन्तु इतने सब कामों में व्यस्त रहने पर भी किशन पर अपने अंतर का सारा स्नेह उँड़ेलने में कोई कसर वह नहीं रखती थी। किशन देखता था कि उस घर में उससे भी अधिक यदि कोई प्राणी एकाकीपन का भार ढोये चला जा रहा है तो वह झमिया है। उसकी कोख की संतान—गिरिजा—उससे बहुत दूर होती चली जा रही थी। वह होस्टल में रहने लगी थी और घरवालों से केवल मासिक खर्चा वसूल करने के अतिरिक्त और कोई संबंध वह नहीं रखती थी और स्वयं न जाने उच्चवर्ग के किन व्यक्तियों के संसर्ग में किस माया-मरीचिका में भटक रही थी। महावीर अवश्य बीच-बीच में क्षणिक अवकाश पा कर आंतरिक स्नेह और श्रद्धा से दो-चार बातें झमिया से कर जाया करता था और किशन अपनी आंतरिक सहानुभूति के तार से यह अनुभव करता था कि झमिया देवर के केवल उतने ही स्नेहालाप को जीवन की नीरस यात्रा का संबल बना कर बिना किसी के प्रति किसी शिकायत के सब समय प्रसन्न रहने का प्रयत्न करती रहती थी। वह स्वयं उसे प्यार से 'अम्माँ' कह कर अपने छोटे से हृदय का सारा स्नेह उसके हृदय में उँडेलने में कोई कमी न करता पर साथ ही यह भी अनुभव करता था कि उसके हृदय का सारा स्नेह-रस उस विशाल हृदय के लिये

तलछट बनने के योग्य भी पूरा नहीं पड़ता—यद्यपि उतने से सच्चे स्नेह के लिये भी परिपूर्ण और आंतरिक कृतज्ञता झमिया के मुख के पुलकाकुल भाव से प्रकट होती रहती थी।

प्रेस में कंपोजिटरी करके किशन जितना भी कमाता था वह सब महीने के अंत में झमिया के हाथ में रख देता था। झमिया यद्यपि स्नेहवश उसे स्वीकार कर लेती, तथापि उसमें से कौड़ी-कौड़ी केवल किशन के लिये ही सुरक्षित रखती थी। वह बार-बार स्नेहाधिकार से उसे सुझाती रहती कि उन रुपयों को वह अपनी व्यक्तिगत सुविधाओं के लिये खर्च क्यों नहीं करता और कंजूसी करके क्यों अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को भी तिलांजलि दिये रहता है। वह उसके रुपयों से कभी उसके लिये नये कपड़े सिलवा देती थी कभी नया जूता खरीदने के लिये उसे विवश करती। इस तरह अपने द्वारा स्वयं चुनी हुई अम्माँ की स्नेह-छाया में किशन के जीवन के नीरस दिन बीत रहे थे। बाहर अम्माँ (झमिया) और अंतर में गुलबिया—इन दोनों के आधार से वह जीवन की गाड़ी को किसी तरह ढकेले लिये जा रहा था। बीच-बीच में अपने भावी जीवन के संबंध में एक अस्पष्ट, धुँधला-सा आशा-बिन्दु उसके आगे क्षण-भर के लिये झलक जाता था। उससे भी उसे अपनी जीवन-गाड़ी को आगे ढकेलने में काफी सहायता मिलती थी।

उसके बाद एक दिन गिरिजा होस्टल त्याग कर घर चली आयीं और तब किशन ने उसका बदला हुआ रूप देखा। अपनी उपेक्षिता अम्माँ के प्रति गिरिजा का नये रूप में उमड़ता हुआ स्नेह और किशन के प्रति भी नये रूप में उमड़ती हुई समवेदना से परिचित होने पर किशन के मन का एकाकीपन का बोध बहुत-कुछ हलका हो

गया। उसके कंपोजिटर की स्थिति के संबंध में जो विरोधी और विद्रोहात्मक भाव गिरिजा के मन में उत्पन्न हुआ था और एक मानव-प्राणी के आत्म-सम्मान को कुचला जाते देख कर जो गहरी सहानुभूति उसके मन में जगी थी उससे किशन बहुत प्रभावित हुआ था। उसके बाद गिरिजा फिल्मी दुनिया के चक्करों में इस कदर व्यस्त हो गयी कि किशन को और अपनी अम्माँ को जैसे फिर भूल ही गयी। पर जब गिरिजा ने उसके लिये एक योग्य शिक्षक नियुक्त किया और स्वयं भी बीच-बीच में समय मिलने पर उसे सिखाने-पढ़ाने लगी तब किशन को एक नया बल मिला। अपने मन की बरसों की साध को पूरा करने की सुविधा उसे जीवन में प्रथम बार मिली। वह अंतर की सारी शक्ति बटोर कर एकाग्र मनोभाव से अध्ययन में जुट गया। प्रतिदिन कम से कम सोलह घंटे वह अध्ययन में बिताता था। उसके शिक्षक को उसकी आश्चर्यजनक प्रगति देख कर चकित रह जाना पड़ा। केवल छः महीनों के भीतर ही उसने अँगरेजी का इतना अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया कि वह अँगरेजी भाषा के अपेक्षाकृत ऊँचे दर्जे के साहित्य में दिलचस्पी लेने लगा। गिरिजा भी उसकी प्रगति देख कर मन-ही-मन अत्यंत पुलकित हो रही थी। गिरिजा से अब भी उसकी अधिक बातें नहीं हो पाती थीं। गिरिजा अपनी फिल्म योजनाओं—फिल्म के निर्माण—में इतना व्यस्त रहती थी कि चाहने पर भी किशन से मिलने और बातें करने के लिए अधिक समय नहीं निकाल पाती थी। जो थोड़ा-बहुत समय कभी-कभी निकाल लेती थी वह किशन के अध्ययन की प्रगति देखने, उसे अध्ययन के संबंध में कुछ नयी सूझ-बूझ देने, कुछ 'नोट्स' लिखाने और कुछ बताने में ही बीत जाता था। इसके अलावा और किसी तरह की

कोई बात करने का अवकाश ही उसे नहीं मिल पाता था। और, बातें भी वह उससे किस विषय पर करती ? अपनी फिल्मी योजनाओं के सम्बन्ध में फिल्मी दुनिया के बाहर के किसी सहृदय और समझदार व्यक्ति के आगे बातें करने की इच्छा गिरिजा के मन में अवश्य रहती होगी, पर किशन अपने सम्बन्ध में जानता था कि वह सहृदय भले ही हो, किन्तु अभी वह उस हद तक समझदार नहीं था, जिस हद तक गिरिजा चाहती थी। इसलिए वह इस सम्बन्ध में गिरिजा को कोई दोष नहीं देना चाहता था। बल्कि अपनी अयोग्यता के अनुभव से अध्ययन में अधिकाधिक लगन से जुट पड़ने की प्रवृत्ति उसमें बढ़ती जाती थी, जिससे वह गिरिजा के साथ समान बौद्धिक स्तर में बातें करने योग्य बन सके। हालाँकि इस तरह उसके एकाकीपन का भार कुछ भी हलका न होता।

किशन इस बात पर भी गौर करता जाता था कि गिरिजा उससे दो बातें करने का अवकाश तो फिर भी पा जाती थी—फिर चाहे वे बातें उसकी शिक्षा और अध्ययन के संबंध में ही क्यों न हों—पर अपनी अम्माँ से उतनी भी बातें करने का अवकाश उसे नहीं रहता था। वह जब भी घर आती, नित्य अम्माँ को या तो कमरों में झाड़ लगाते हुए पाती, या कपड़े धोते हुए देखती या मालती के बच्चों की देख-भाल में एक दाई की तरह जुटी हुई पाती। वह यह भी देखती कि उसकी अम्माँ का चेहरा दिन पर दिन मुरझाता चला जा रहा है और उसकी काम करने की शक्ति भी दिन पर दिन क्षीण पड़ती चली जा रही है। फिर भी उसके मुख पर एक सहज स्नेहपूर्ण मुसकान सब समय जैसे छायी ही रहती थी। गिरिजा ने कई बार अपनी अम्माँ के आगे यह प्रस्ताव रखा कि चूँकि अब उसमें पहले

की-सी शक्ति नहीं रह गयी है, इसलिये वह इस तरह के कामों के लिये किसी एक व्यक्ति को मासिक वेतन पर नियुक्त कर ले। पर झमिया बराबर हँस कर उसकी बात को टाल देती थी। और जब गिरिजा ने अपने चाचा से इस बात के लिये अम्माँ पर जोर डालने के लिये कहा और महावीर ने गिरिजा की बात को दुहराते हुए झमिया से आग्रह किया कि वह कोई भी शारीरिक श्रम का काम न करके आराम किया करे और उन सब कामों के लिये वह कोई नौकर या नौकरानी रख देगा, तब झमिया ने सस्नेह—किंतु दृढ़ता से—उसके उस प्रस्ताव का विरोध किया था। उसने कहा था कि जीवन-भर जब वह इस तरह के कामों की आदी रही है तब आज अपने उस अभ्यस्त जीवन को छोड़ कर, नौकर या नौकरानी रख कर अपने जीवन को भार-स्वरूप बनाने के लिये किसी प्रकार भी तैयार नहीं है। आग्रह करते-करते अंत में गिरिजा और महावीर दोनों हार गये।

किशन झमिया को संभवतः गिरिजा से भी अधिक अपनी सगी अम्माँ के रूप में मानता और चाहता था। इसलिये अपने आंतरिक स्नेह की समवेदना के माध्यम से यह जानने में उसे देर न लगी कि झमिया की शक्ति जो दिन पर दिन क्षीण होती जा रही है उसका कारण शारीरिक श्रम नहीं है, बल्कि कुछ और ही है। अपनी जिस एकमात्र संतान में अपने आत्म-रूप का अनुभव करके, जिसकी उन्नति को आत्म-उन्नति मान कर, जिसकी प्रगति की सुविधा और स्वतंत्रता में कोई भी कमी उसने भरसक कभी नहीं आने दी, वह जीवन के पथ पर उससे इतनी दूर चली गयी थी कि दोनों के लाख चाहने पर भी अब निकटता आ ही नहीं पाती थी। गिरिजा स्वयं भी माँ के मन के इस भाव को महसूस न करती हो, ऐसी बात नहीं थी। पर

अनुभव करने पर भी वह अपने को उसके अंतर के एकदम निकट बाँधने में निपट असमर्थ पाती थी। इसलिये माँ के प्रति उसकी ममता ने केवल मार्मिक करुणा का रूप ले लिया था। उसे पूरा स्नेह दे पाने के बजाय वह केवल उसके प्रति दया का अनुभव करके रह जाती थी।

३७

झमिया के जीवन का इतिहास किशन ने कुछ अपने बप्पा के मुँह से और कुछ दूसरों से सुना था। जितना-कुछ उसने सुना था और जितना वह स्वयं बचपन से ही उस परिवार के निकट संपर्क में आने से जानता था, उन सब बातों को मिला कर आज जब वह अपनी विकसित बुद्धि और अनुभव-प्राप्त समझ से उन पर विचार करता था तब उसे लगता था कि वह सरल-हृदय, स्नेहशीला नारी अपने चिर-दुःखी जीवन का भार एकाकी, निःशब्द रूप से ढोती चली आ रही है। बचपन में एक गरीब-घर में अत्यंत कष्टप्रद जीवन बिताने के बाद जब एक दिन उसका विवाह हुआ तब उसने एक ऐसे परिवार के बीच में अपने को पाया जहाँ के लोग घोर संकीर्ण स्वार्थ-मय जीवन बिताने के आदी थे और उस संकीर्ण घेरे के बाहर के किसी भी प्राणी को—चाहे वह बहू बन कर ही घर में क्यों न प्रवेश करे—आंतरिक स्नेह देना जिन्होंने सीखा ही नहीं था। अपनी निष्ठुर-प्रकृति सास और स्वार्थी ससुर से स्नेह पाना तो दूर की बात, उनसे कभी झूठे मुँह भी अपने लिये एक मीठा शब्द सुनने के लिये वह अंत तक तरसती रह गयी थी। यह बात स्वयं उसने एक दिन जग्गू से कही थी। जग्गू को वह बराबर अपने पिता के समान मानती थी। उसका पति संभवतः अपने माँ-बाप की तरह नितांत निर्दयी और

स्वार्थी नहीं था, पर अपनी नव-विवाहित पत्नी से स्नेह-प्रेम भरी बातें करके, उसके दुःख को बटा कर वह अपनी पारिवारिक परंपरा को तोड़ना नहीं चाहता था। वह जानता था कि झमिया के प्रति बड़ा अत्याचार हो रहा है, उससे क्या खेत में और क्या घर में अधिक से अधिक काम लिया जाता है। तड़के सुबह से ले कर रात में बहुत देर तक उसे बैल की तरह जुते रहना पड़ता है, और जुते रहने योग्य शारीरिक शक्ति को कायम रखने के लिये खुराक उसे नहीं दी जाती। पर यह सब जानते हुए भी वह अपने माँ-बाप की अमानुषिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का साहस कभी चोरी-छिपे भी नहीं कर पाता था। बल्कि उसमें कुछ भी व्यतिक्रम होते देख कर वह उलटे झमिया पर ही बिगड़ता था। झमिया को कभी भर-पेट भोजन नहीं मिलता था। एक दिन दिन-भर के परिश्रम के बाद बहुत थक कर जब वह भूख से अत्यंत व्याकुल हो उठी तब भंडार-गृह से कुछ अमावट निकाल कर अँधेरे में अलग एक कोने में बैठ कर वह चोरी-छिपे खाने लगी। उसके पति ने उसे देख लिया और पूछा कि वह क्या खा रही है। उसने धीरे से उसे सारी बात सच-सच बता दी। उसके पति ने उसे इस बुरी तरह से डाँटना आरंभ कर दिया कि उसका वह रूप देख कर झमिया आतंकित हो उठी। उसके पति ने कहा : "मुझे आज पता लगा कि तू चोर भी है, इसीलिये अम्माँ तुझसे सब चीजें छिपा कर रखती है। हमारे घर में इस तरह की चोर बहू की कभी निभ नहीं सकती, यह जान लेना!" वह क्रोध में इस तरह चिल्लाने लगा कि उसकी सास ने सुन लिया। वह वहीं चली आयी। पति शायद बात को दबाना चाहने पर भी न दबा सका। तब तो प्रलय-कांड मच गया, और जो मार झमिया पर पड़ी उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती

है। उसका वर्णन जग्गू के आगे जब झमिया कर रही थी तब संयोग से किशन भी उस समय वहाँ खड़ा था। तब वह तेरह-चौदह बरस का रहा होगा। उस स्थिति की पूरी विकरालता का अनुभव करने योग्य उम्र उसकी न होने पर भी सुन कर स्वयं उसके भी रोंगटे खड़े हो आये थे।

विवाह होने के कुछ ही बरस बाद झमिया विधवा हो गयी। उसके पति को एक दिन अचानक तेज बुखार आया, उसके बाद डबल न्यूमोनिया हो गया। गाँव के एक वैद्य का इलाज हुआ। पर कोई लाभ न हो सका। सन्निपात-ग्रस्त होने के बाद एक दिन अपनी पहले से ही असहाय पत्नी और छोटी सी बच्ची को अनाथ छोड़ कर वह चल बसा। उसकी मृत्यु के बाद उसके सास-ससुर का अत्याचार दुगना बढ़ गया। सास प्रायः प्रतिदिन, दिन में कई बार उसे गालियाँ देती हुई यह प्रचारित करती रहती थी कि "यह कुलच्छनी राँड़, यह डायन् मेरे बेटे को खा गयी।" अपने वैधव्य की मार्मिक पीड़ा को सहन करने योग्य साहस और शक्ति अपने भीतर बटोरने का अवसर और अवकाश तो मिलना दूर रहा, सास के इस प्रकार के मर्म-वचनों का अतिरिक्त प्रहार उस पर निरंतर होता चला गया। इस तरह प्रायः दो वर्ष और बीत गये। पता नहीं, वह उस परिस्थिति में दो वर्ष भी कैसे बिता गयी। उसके बाद एक दिन वह ससुराल का अत्याचार अधिक सहन न कर सकने के कारण रिश्ते की किसी एक मौसी के यहाँ चली गयी। माँ के स्नेह का एक शतांश भी यदि उसे वहाँ मिल जाता तो वह पूर्णतः संतुष्ट रहती। पर 'मौसी' के व्यवहार में सास के व्यवहार से कुछ भी अंतर उसने नहीं पाया।

ऐसी परिस्थिति में बैजनाथ उसे मिला। बैजनाथ उसी गाँव के पास का ही रहने वाला था और झमिया उसे पहले भी कई बार देख चुकी थी। उसे पहले से ही इस बात का पता था कि उसने बंबई जा कर दूध का कारोबार खोल लिया है। झमिया स्वभाव से ही बहुत संकोची थी और अपने-आप वह कभी बैजनाथ से बोलने तक का साहस न करती। पर बैजनाथ ने जब बार-बार उसे एकांत में घेरना आरंभ किया तब उसे एक दिन संकोच त्याग कर उससे कहना पड़ा कि "अगर तुम में कुछ भी दया है तो मुझे इस तरह न घेरा करो।" पर बैजनाथ उस बार इस बात का निश्चय करके बंबई से घर गया हुआ था कि अपनी गिरस्ती बनाने का पक्का प्रबंध करके ही बंबई लौटेगा। वह झमिया की 'मौसी' का दूर का संबंधी लगता था। इसलिये उसने उसकी 'मौसी' और 'मौसी' से हेलमेल बढ़ाना आरंभ कर दिया। उसे पता लग गया था कि झमिया अपनी ससुराल में बहुत ही दुःखी जीवन बिताती रही है और 'मौसी' के यहाँ भी उसका वही हाल है। उन लोगों की जाति में एक पति के मर जाने पर दूसरे पति से विवाह कर लेने की प्रथा प्रचलित थी। उसी गाँव की कई विधवा स्त्रियाँ दूसरा विवाह कर चुकी थीं। पर झमिया के सचेत मन में विधवा हो जाने के बाद इस तरह की कोई कल्पना ही संभवतः नहीं जगी थी। यदि इस तरह की बात उसके मन में रही होती तो वह विधवा होते ही ससुराल छोड़ कर चली गयी होती, विशेष कर उस हालत में जब उसे दिन-रात सास-ससुर के अमानवीय व्यवहार को चुपचाप सहन करना पड़ रहा था। पर बैजनाथ ने जब उसे घर और बाहर अकेले घेरना आरंभ कर दिया तब प्रारंभ में उसके इस तरह के व्यवहार

से खीझ उठने पर भी, उसके मन के अतल में दबी हुई सुप्त आकांक्षा—स्नेह-रहित कठोर, नीरस और तिक्त वातावरण के लौह-बंधन से मुक्त होने की आकांक्षा—धीरे-धीरे जगने लगी। और सच पूछा जाय तो जिस तरह के वातावरण में वह रहती थी उसके प्रति विद्रोह की भावना का जड़ से जड़ और निर्जीव से निर्जीव प्राणों में भी जग उठना पूर्णतः स्वाभाविक था। वह झमिया ही थी जो इतने दिनों तक सब-कुछ सहती हुई भी अपने को संयत रखे रही। बैजनाथ को देख कर संभवतः उसे धीरे-धीरे यह भी लगने लगा होगा कि वह आदमी कुछ बुरा नहीं है, और उसके मना करने पर भी उसे वह जो घेर रहा है वह केवल इसलिये कि वह उसे हृदय से चाहने लगा है और साथ ही उसकी दयनीय परिस्थितियों से परिचित हो कर उसके उद्धार के लिये भी जैसे प्रण किये बैठा है। इस प्रकार कई सम्मिलित कारणों के एकत्रित होने से एक दिन वह बात संभव हुई जिसकी कल्पना उसके कुछ ही समय पूर्व तक झमिया ने स्वप्न में भी कभी नहीं की थी। अर्थात् वह एक दिन बैजनाथ के साथ भाग कर, अपनी छोटी बच्ची—गुलबिया—को साथ ले कर बंबई चली आयी। वहाँ पंडित जी ने एक दिन मंत्र पढ़ कर संक्षिप्त रूप से, किंतु पूर्णतः वैदिक विधि से, दोनों का विवाह कर दिया।

अपनी नयी और अपूर्व-कल्पित परिस्थिति में वह ठीक से अपने को व्यवस्थित करने भी न पायी थी कि भाग्य ने उसे फिर धोखा दिया और बैजनाथ भी एक दिन चल बसा। किशन सोचने लगा कि यदि महावीर चाचा न होते तो उस निस्सहाय, अबला, अनाथ और दो बार विधवा हुई नारी की क्या दशा उस निपट परदेस में हुई होती! उसके गरीब मायके में वर्षों से कोई नहीं रह गया था और पुरानी

ससुराल में या 'मौसी' के पास जाने का रास्ता अब अपने से पर-पुरुष के साथ भगी हुई नारी के लिये सदा के लिये बंद हो गया था। पर भाग्य ने उसके जीवन में केवल एक ही बात के संबंध में उसका साथ दिया। महावीर चाचा के रूप में एक अत्यंत सहृदय और चरित्रवान व्यक्ति का सहारा उसे मिल गया था। किशन से यह बात छिपी नहीं रह गयी थी कि महावीर भमिया को प्रारंभ ही से हृदय से चाहता रहा है और साथ ही उसके प्रति स्नेह के साथ ही आंतरिक श्रद्धा की भी भावना उसके मन में प्रारंभ ही से रही है। यह निश्चित था कि यदि बैजनाथ के पहले ही महावीर से उसका परिचय हो गया होता तो वह महावीर के चाहने पर उससे वैवाहिक संबंध स्थापित करके अपने को धन्य मानती। पर बैजनाथ की मृत्यु के बाद फिर एक बार विवाह करके वह अपने को सस्ता नहीं बनाना चाहती थी। पहले पति की मृत्यु के बाद फिर एक बार विवाह करके वह यों भी अपने को गिरा हुआ समझने लगी थी—यद्यपि उसने ऐसा करके अपने समाज में प्रचलित प्रथा के विपरीत आचरण नहीं किया था। पर अब तो उसका स्वभाव से ही पवित्रतावादी मन किसी भी प्रलोभन से उसे तीसरे विवाह के लिये प्रेरित नहीं कर सकता था। वह महावीर की इच्छा से भली भाँति परिचित थी। महावीर केवल उसी से विवाह करना चाहता था, नहीं तो आजीवन अविवाहित रह जाने की बात सोच रहा था। भमिया स्वयं भी महावीर से स्नेह करती थी। पर अपने स्नेह को अपने अंतर में ही दबा कर उसने महावीर के लिये एक दूसरी लड़की खोज कर उसको विवाह के लिये विवश करके ही छोड़ा। किशन जानता था कि दोनों एक दूसरे के प्रति अपने पवित्र प्रेम को अपने अतल की गहराई में, बरफ से ढके

ज्वालामुखी के भीतर की आग की तरह छिपा कर, पूजा की सी भावना से उसे गोपन रूप से सुरक्षित रखे हुए हैं। और इस बात के लिये किशन समय-समय पर दोनों को मन-ही-मन आंतरिक श्रद्धा से प्रणाम किया करता था।

महावीर चाचा के हृदय की उस उदार सहृदयता को भी किशन कभी नहीं भुला पाता था कि गिरिजा से न तो कोई खून का संबंध होने और न किसी प्रकार का सामाजिक नाता होने पर भी उसे छुटपन ही से अपनी सगी बेटी से भी अधिक मान कर उन्होंने पाल-पोस कर बड़ा किया था, और जिस ऊँचे सामाजिक स्तर को आज वह पहुँची हुई थी उसका श्रेय उन्हीं को था। यदि गिरिजा को केवल बैजनाथ के ही आश्रय में रहना पड़ता तो वह उस गुलबिया की स्थिति से अधिक प्रगति न कर पाती जिसकी आँखों में बराबर कीच लगी रहती थी, जिसकी नाक सब समय बहती रहती थी और जिसके मुँह पर मक्खियाँ बैठी रहती थीं। वह ऊँची शिक्षा पाने की सुविधा कभी न पाती और संभवतः आजीवन चौका-बर्तन और चूल्हा-चक्की के कामों से कभी किसी दूसरे काम के लिये अवकाश ही न पाती। महावीर चाचा ने स्नेहवश उसके किसी भी आग्रह--बल्कि दुराग्रह—को कभी न टाला।

और केवल गिरिजा को ही नहीं, स्वयं किशन को भी उन्होंने अत्यंत हीन परिस्थितियों से अपेक्षाकृत ऊँचा उठाने के प्रयत्नों में कभी कोई बात उठा न रखी। उसके बप्पा पर दबाव डाल कर उन्होंने उसे बलपूर्वक स्कूल भेजा। वह उनका कौन लगता था! उनके एक साधारण नौकर—एक वेतनभोगी मजदूर—का लड़का था वह। यदि उसका बप्पा किसी दूसरे व्यक्ति के यहाँ नौकरी करता

होता तो क्या कभी उसे इस प्रकार की सुविधा प्राप्त हो सकती थी? और केवल सुविधा ही नहीं, उस परिवार में उसने सब का आंतरिक स्नेह भी पाया था। यह केवल उसके उदार-हृदय चाचा और स्नेह-शीला अम्माँ—झमिया—के कारण ही संभव हुआ था।

इस तरह किशन की विचारधारा कहाँ से कहाँ भटकती हुई, उसके अपने छुटपन की दयनीय अवस्था का चित्र खींचने के बाद उस परिवार के सभी व्यक्तियों के जीवन का विश्लेषण करती हुई आगे बढ़ती चली गयी। अंत में फिर वह वहीं पहुँच गया जहाँ से आगे बढ़ा था। वह गिरिजा के संबंध में सोचने लगा। वह सोचने लगा कि उसकी गिरिजा उसी उदार परिवार में पली हुई लड़की है। तब वह क्यों अपनी अम्माँ और अपने चाचा की तरह ही सहृदय और उदार न होगी! यदि वह उदार न होती तो उसे इस बात की चिन्ता ही क्यों होती कि वह एक कंपोजिटर की स्थिति में अपमानित जीवन बिता रहा है। और उस स्थिति से उसे ऊपर उठाने का सिरदर्द ही वह अपने लिये क्यों मोल लेती! आज वह जिस सामाजिक स्थिति तक पहुँच चुकी है उसमें उसके लिए एक से एक बढ़ कर स्थिति वाले पुरुषों के निकट संपर्क में आने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। समाज के बड़े से बड़े गण्य-मान्य व्यक्ति उसकी कृपा-दृष्टि पा कर अपने को धन्य समझते हैं। ऐसी स्थिति में भी वह जो अपने बचपन के साथी किशन को नहीं भूली, यह क्या उसकी उदारता नहीं है! यदि गिरिजा उसे बिलकुल भूल गयी होती तो भी उसे शिकायत का कोई अधिकार नहीं था। पर भूलने की बात तो दूर रही, वह तो कहती है कि "मैं अभी तक वही गुलबिया हूँ!..." यदि यह मान भी लिया जाय कि अभी वह

ऐसा केवल उसमें प्रधान नायक के रूप में आत्मविश्वास का भाव जगाने के लिये कह रही है, और बाद में उसका रुख बदल जाने की संभावना है, तो भी यह क्या कुछ कम है कि उसने, कुछ ही समय के लिये ही सही, इतना गौरव उसे दिया है? नहीं, वह भविष्य की किसी अप्रिय संभावना की चिन्ता में उसके प्रति कभी अकृतज्ञ नहीं बनेगा! ऐसा सोचते हुए किशन ने अपने भटकते हुए मन को बहुत बड़ा प्रबोध दे दिया।

रह-रह कर फिर-फिर गिरिजा के उस मीठे स्वर की याद उसके कानों में झनकार भरने लगी जब उसने कहा था : "तुम इस बात को क्यों भूल जाते हो कि मैं अभी तक वही गुलबिया हूँ!"

वही गुलबिया—उसने सोचा—जिस पर वह बचपन में सब समय अपना रौब जमाये रहता था! पर क्या केवल उसके रौब जमाये रहने के कारण ही गुलबिया उसे इतना मानती थी? वह क्या बचपन में इतनी सीधी और भोली थी? क्या वह तब भी स्वयं अपनी धाक उस पर जमाने का प्रयत्न नहीं करती थी? उसकी प्रकृति की जिस स्वतंत्रता को देख कर आज फिल्मी संसार चकित है, क्या उसके चिह्न बचपन से ही उसके स्वभाव में वर्तमान नहीं थे? सहसा उसे उस दिन की बहुत पुरानी याद आयी जब छुटपन में वह और गुलबिया दोनों मिल कर मिट्टी का मंदिर बना रहे थे और शिव जी बड़े कि हनुमान जी, दशरथ बड़े कि राम, इन प्रश्नों को ले कर दोनों में गरमागरम बहस हो गयी थी और यहाँ तक नौबत पहुँच गयी थी कि गुलबिया ने गुस्से में मंदिर तोड़ दिया था और बड़ी तेजी के साथ कहा था : "यह किशन बहुत दुष्ट है; मैं आज से इससे कभी नहीं बोलूँगी, कभी इसका मुँह नहीं देखूँगी!" और फिर दूसरे ही दिन

वह उससे बोलने के लिये छटपट करने लगी थी !

प्रारंभिक जीवन की उस घटना की याद आने से किशन का खिन्न मन हर्ष से इस तरह गद्गद हो उठा कि उसकी आँखों से पुलक के आँसू उमड़ आये।

सहसा किसी ने बाहर से दरवाजा खटखटाया। "कौन है?" यह पूछने पर गिरिजा की आवाज सुनायी दी : "मैं हूँ, खोलो!"

किशन हड़बड़ाता हुआ उठ बैठा और उसने दरवाजा खोल दिया।

३८

किशन को एक छोटा सा कमरा अलग से मिल गया था। गिरिजा कई दिनों से किसी मकान में एक अच्छा और बड़ा सा फ्लैट किराये पर लेने का विचार कर रही थी, जहाँ सभी लोग जा कर रहने वाले थे। पर अभी तक यह संभव न हो पाया था। प्रायः एक वर्ष पूर्व महावीर ने एक छोटा सा 'शेड' अलग बनवा दिया था, जो गोदाम के रूप में व्यवहृत होता था। 'शेड' को दो भागों में विभक्त कर दिया गया था। एक भाग में लोहा-लक्कड़, काठ-कबाड़, चूना, बजरी, सीमेंट आदि चीजें रखी हुई थीं और दूसरा भाग खाली पड़ा था। महावीर ने वह हिस्सा किशन को दे दिया था।

गिरिजा ने भीतर प्रवेश करते ही पूछा : "कमरे में पड़े-पड़े क्या कर रहे थे? मैं स्टूडियो में तुम्हारा इंतजार कर रही थी।"

"आज तो 'शूटिंग' होने की कोई बात नहीं थी!" किशन ने कहा।

"शूटिंग तो नहीं थी, पर कल होने वाली शूटिंग से संबंधित

कुछ जरूरी बातों पर आपस में परामर्श करना था।" कह कर गिरिजा पास ही पड़ी एक टूटी बाँह वाली कुर्सी पर बैठ गयी। किशन खाट पर ही बैठा रहा।

"मेरी तबीअत आज कुछ ठीक नहीं थी, इसलिये तनिक लेट गया था।

"क्यों, क्या बात हो गयी थी?" कुछ चिंतित भाव से गिरिजा ने पूछा।

"यों ही। कोई खास बात नहीं है। आज मन, जाने क्यों, सुबह से कुछ उखड़ा-उखड़ा सा है। एक अजीब सी उदासी का अनुभव कर रहा हूँ।"

गिरिजा कुछ देर तक उसकी ओर चुपचाप देखती रही, जैसे उसके मुख के भाव से उसकी उदासी का कारण जानने का प्रयत्न कर रही हो। उसके बाद आँखों को कुछ नीचा करके आधी दृष्टि से उसकी ओर देखती हुई बोली: "कल शाम को हेमकुमार जी ने मुझे एक आवश्यक बात कहने के लिये अपने यहाँ बुलाया था।"

किशन एकांत भाव से उसकी ओर देखता हुआ मौन रहा। हेमकुमार ने एक आवश्यक बात कहने के लिये गिरिजा को अपने यहाँ बुलाया, उसकी सूचना उसे देने का अर्थ क्या हो सकता है, यह वह कुछ समझ नहीं पाता था। यदि बात विशेष रूप से गोपनीय न होती तो हेमकुमार उसे अपने यहाँ क्यों बुलाता, स्टूडियो में ही उसे अलग ले जा कर बातें कर सकता था, यह स्पष्ट था। तब उस गोपनीय बात की चर्चा उसके आगे वह क्या सोच कर चला रही है? यह जानने के लिये वह विस्मित और उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा।

"उन्होंने मुझे क्या बात कहने के लिये बुलाया था, जानते हो?" एक दबी हुई, अव्यक्त और रहस्यपूर्ण मुसकान गिरिजा की आँखों के कोनों में खेल रही थी। किशन की पैनी दृष्टि से वह छिपी न रही।

"मैं क्या सर्वज्ञ और अंतर्यामी हूँ, जो दूसरे के मन की सभी बातें बिना सुने ही जान लूँ!" किशन के अंतर में दबी हुई ईर्ष्या सहसा कुछ तीखेपन के साथ फूट पड़ी।

गिरिजा को स्पष्ट ही उसकी उस प्रतिक्रिया से सुख प्राप्त हो रहा था।

"अंतर्यामी न सही, पर तुम दूसरों के प्रति सहानुभूतिशील तो हो!" दुष्टतापूर्ण मुसकान को सुस्पष्ट रूप से अपनी आँखों में झलकाती हुई गिरिजा बोली। "सच्ची सहानुभूति मनुष्य को दूसरों के मनोभाव से परिचित करा देती है। यह एक साधारण मनोवैज्ञानिक तथ्य है।"

"होगा! तब शायद मैं सहानुभूतिशील नहीं हूँ।"

"अच्छा तब सुनो। हेमकुमारजी ने मुझे बताया कि बहुत दिनों से उनके मन में यह इच्छा रही है—पर कहने का साहस उन्हें कभी नहीं हुआ कि—मैं उन्हें अपने जीवन का साथी बना लूँ..."

"'जीवन का साथी' से उनका आशय क्या है?" अत्यंत गंभीर और प्रश्न-सूचक दृष्टि से गिरिजा की ओर देखते हुए किशन बोला।

"क्या इतना भी नहीं समझते? क्या सचमुच तुम अभी तक इस हद तक भोले हो?" गिरिजा की आँखों में फिर वही दुष्टता भरी मुसकान नाच उठी।

उस मुसकान से कट कर किशन ने कुछ तीखे—और रूखे—

स्वर में कहा : "बहुत भोला—अर्थात् निपट मूर्ख—तो मैं नहीं हूँ, पर फिर भी उनका आशय कुछ और अधिक स्पष्ट रूप से जानने की इच्छा अवश्य रखता हूँ।"

" 'जीवन का साथी' बनने से उनका आशय साफ ही यह था कि हम दोनों—अर्थात् वह और मैं—वैवाहिक बंधन में बँध जावें।"

किशन के चेहरे का रंग एकदम उड़ गया था। "ओह, समझा!" उसने नीचे की ओर मुँह करके धीरे से मरियल स्वर में कहा।

"मैं इस विषय में तुम्हारी राय जानना चाहती हूँ", कटे पर नमक छिड़कती हुई गिरिजा बोली।

"मैं कौन होता हूँ इस विषय में राय देने वाला!" प्रायः रोने के स्वर में किशन ने गिरिजा की ओर बिना देखे कहा।

"तुम सब कुछ होते हो!" इस बार गिरिजा के स्वर में गंभीरता और दृढ़ता थी।

किशन ने उसके उस स्वर से जैसे चौंक कर, ऊपर की ओर मुँह करके, पूरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। उसने देखा, केवल स्वर में ही नहीं, गिरिजा के मुख पर भी वास्तव में एक गंभीर छाया घिर आयी है।

क्षण भर के लिये दोनों मौन भाव से, एक गंभीर रहस्यमयी दृष्टि से एक दूसरे की ओर देखते रहे, जैसे दोनों के आगे सहसा किसी अज्ञात, रहस्यमय कारण से अपने अंतरतम तारों के अविच्छिन्न संबंध का भेद खुल गया हो। दूसरे ही क्षण किशन सँभल गया और सहज-शांत, किंतु गंभीर, स्वर में बोला : "तुम इस संबंध में मेरी राय जानने के लिये क्यों उत्सुक हो, गिरिजा, मैं

सचमुच समझ नहीं पाता। मेरी राय का क्या महत्त्व इस विषय में हो सकता है ? तुम कोई नादान बच्ची नहीं हो, और हेमकुमार जी से तुम्हारे कैसे संबंध हैं, यह तुम स्वभावतः मुझसे अधिक जानती हो। ऐसी हालत में मैं कैसे कुछ कहने का अधिकार रखता हूँ !"

"तुम्हें अपने अधिकार का पता अभी तक नहीं है, इसके लिये मैं दोषी नहीं हूँ", गिरिजा ने उसी गंभीरता से कहा। "पर इतना तुम मेरे कहने पर मान लो कि इस विषय में तुम्हारी राय का बहुत बड़ा महत्त्व है। मेरी बात सुन कर तुम्हारे मन में जो प्रतिक्रिया हुई उसे तनिक भी न छिपा कर, निधड़क हो कर मुझे साफ-साफ बताओ। प्रश्न इतना गंभीर है कि यदि तुम इस संबंध में अपने मन की एक भी बात तनिक भी छिपाओगे तो उसका बड़ा घातक प्रभाव हम दोनों के जीवन पर पड़ सकता है—यह चेतावनी तुम्हें दे देना मैं आवश्यक समझती हूँ..."

"तो तुम सचमुच मेरे मन की सही-सही बात जानना चाहती हो, गिरिजा ? अच्छी बात है। मैं भी आज सभी बातें साफ-साफ बता कर अपने मन का बहुत दिनों का भार हलका कर लूँ, फिर चाहे उसका परिणाम तुम्हारे या मेरे लिये कैसा ही अनिष्टकर क्यों न हो। जीवन का साथी बनने की जो बात हेमकुमार जी ने कल तुमसे कही है, वही इच्छा आज से नहीं, बरसों पहले से—छुटपन से ही—ज्ञात या अज्ञात रूप से, सब समय, जीवन के प्रत्येक क्षण में, मेरे मन के बहुत भीतर वर्तमान रही है। पर कभी उसे तुम्हारे आगे प्रकट करने का साहस हेमकुमार जी की ही तरह मुझे भी नहीं हुआ, और न शायद कभी होता—यदि आज तुम इस तरह अप्रत्याशित रूप से बलपूर्वक मेरे मर्म के तारों को न छूतीं।

गिरिजा की आँखों में गंभीरता के बदले धीरे-धीरे एक स्निग्ध, सजल, रस-विह्वल, मंद-मधुर मुसकान चारों ओर के स्तब्ध अंधकार के बाद अरुणोदय की नयी फूटती हुई रेखा की तरह खिल उठी। उस मुसकान का प्रकाश किशन के अंतर की इतने दिनों की शंका और संदेह के अंधकार को पर्दा-दर-पर्दा चीरता हुआ अपनी मोह-नाशिनी किरणें फैलाने लगा।

"जानते हो किशन, मैंने हेमकुमार जी को क्या उत्तर दिया?" अपनी वाणी में बच्चों की सी सहज सरलता घोलती हुई गिरिजा बोली। "मैंने उनसे कहा कि मैं बहुत पहले ही अपना जीवन-साथी चुन चुकी हूँ, अब उसमें कोई बदलाव नहीं हो सकता—"

"क्या मैं जान सकता हूँ, तुम्हारा वह पहले ही से चुना हुआ साथी कौन है?" सब कुछ जानते हुए भी शंकित हृदय से किशन ने पूछा।

"अपने अंतर से पूछो", गिरिजा का संक्षिप्त उत्तर था।

"सच गिरिजा? तब क्या अब मैं निश्चित रूप से यह समझ लूँ कि इस संबंध में अब शंका और संदेह के लिये कोई गुंजाइश नहीं रही?"

"अब भी यदि शंका करोगे तो तुम्हारे मन के इस पाप को ब्रह्मा भी शायद ही धो सके", शांत किंतु दृढ़ स्वर में गिरिजा ने उत्तर दिया।

"बस, अब सारा संदेह सदा के लिये धुल चुका; इस संबंध में अधिक कुछ न बोलो। केवल एक बात और पूछना चाहता हूँ। तुमने हम दोनों के अंतर के इस चिर-संबंध की सार्वजनिक घोषणा के लिये कौन सा शुभ दिन सोचा है?"

''अखंड ज्योति' की शूटिंग की समाप्ति के बाद जिस दिन फिल्म का उद्घाटन होगा !''

''तब ठीक है,'' आँखों में पुलकित भाव झलकाते हुए किशन बोला। ''मैं अधीर होते हुए भी तब तक प्राणपण से धीरज बाँधे रहूँगा।''

''पर एक काम हम लोगों को अभी कर लेना होगा'', सहज गंभीरता से गिरिजा ने कहा। ''हम दोनों अभी चल कर अम्माँ, चाचा और चाची को प्रणाम कर आवें और जिस नये संबंध में हम दोनों बँधने जा रहे हैं उसके लिये उनका आशीर्वाद प्राप्त कर लें।''

''चलो!'' बच्चों के से उल्लास के साथ किशन तत्काल बोल उठा। वह अपने मन के अनुकूल प्रस्ताव से अपने हर्ष को दबा सकने में अपने को नितांत असमर्थ पा रहा था।

३६

दोनों उठ कर बाहर चले आये। टिन का दरवाजा बाहर से बंद करके किशन ने साँकल चढ़ा दी। जब वे लोग एक नयी उमंग की ताजी अनुभूति से तरंगित होते हुए झमिया के कमरे में पहुँचे तब झमिया पलँग पर लेटी हुई थी। उसके मुख पर दुर्बलता के चिह्न स्पष्ट झलकते हुए भी उसकी आँखें सहज स्निग्ध प्रसन्नता से चमक रही थीं। पास ही महावीर अत्यंत गंभीर मुद्रा में खड़ा था।

''आओ बिटिया, आओ! आओ किशन, बैठो!'' झमिया ने अत्यंत क्षीण किंतु आंतरिक हर्ष-भरे स्वर में कहा।

''अम्माँ, हम दोनों तुम्हारा आशीर्वाद पाने आये हैं!'' कह कर गिरिजा ने परिपूर्ण श्रद्धा से उसके दोनों पाँव छूए और किशन ने

भी तत्काल उसका अनुसरण किया।

"तुम दोनों हजार बरिस सुख से जीओ! और आसिरवाद तो मैं तुम दोनों को रोज ही देती हूँ। क्या मुँह से कहने से ही आसिरवाद माना जाता है! पगली कहीं की! असली चीज तो मन की ही भावना है!" वह बहुत धीरे-धीरे कुछ रुक-रुक कर, क्षीण किंतु सहज स्नेह और प्रसन्नता-भरे स्वर में बोल रही थी।

"नहीं अम्माँ, आज खास बात है," मुँह कुछ नीचा करके, तनिक संकोच-भरी मीठी मुस्कान के साथ गिरिजा ने कहा।

"क्या खास बात है, रानी बिटिया मेरी? बताओ न, सकुचा क्यों रही हो?" उल्लास-भरी उत्सुकता से झमिया ने कहा।

"आज हम दोनों ने जीवन-भर के लिये एक नये संबंध में जुड़ जाने का निश्चय किया है," अपने बाएँ हाथ के अँगूठे के लाल रंग में रँगे हुए नाखून को दाएँ हाथ के अँगूठे के नाखून से खुरचती हुई गिरिजा धीरे से बोली।

"सच? सच कहती हो बिटिया?" कहती हुई झमिया आनंद से उचक कर उठ बैठी। "क्यों किशन, क्या बिटिया सच कह रही है?" उसकी धँसी हुई आँखों में उल्लास जैसे समाता नहीं था।

"हाँ अम्माँ," किशन तनिक संकोच-भरी मुसकान के साथ बोला।

"तब आओ, दोनों मेरे एकदम पास चले आओ, दूर क्यों खड़े हो!"

दोनों धीरे से उसके निकट चले गये। एक हाथ को एक के सिर पर और दूसरे हाथ को दूसरे के सिर पर रखती हुई, उसके बाद दोनों के गालों और ठुड्डियों को परम स्नेह से सहलाती हुई झमिया बोली:

"आज मेरे मन की इतने दिनों की साध पूरी हुई। मैं कहने से डरती थी, पर मेरे मन में बराबर यही इच्छा बनी थी कि तुम दोनों का गठ-जोड़ा हो जाय। मैं नित मन ही मन विनती करती कि 'भगवान, बिटिया को सुमति दो! वह जाने कहाँ भटकी चली जा रही है। उसे फिर से घर की ओर मोड़ो और ऐसा उपाय करो जिससे मैं किशन को और उसको, दोनों को साथ-साथ सुख से जिंदगी बिताते हुए देखूँ।' आज भगवान ने मेरी पुकार सुन ली। अब मैं निश्चिन्त हो कर मर सकूँगी..." कहती हुई वह अपनी हँसती हुई आँखों से पानी बरसाने लगी।

"भौजी, तुम लेट जाओ। तुम हाँफ रही हो। इस तरह तकलीफ बढ़ जायगी," पीछे से महावीर ने भारी आवाज में कहा।

महावीर की आवाज सुनते ही गिरिजा को जैसे भूली हुई बात याद आयी। किशन की ओर आँखों से इशारा करती हुई वह महावीर की ओर बढ़ी और झुक कर उसके पाँव छूती हुई बोली: "चाचा, तुम भी हम दोनों को आशीर्वाद दो!"

"जीती रहो बेटी, जिओ बेटा!" महावीर ने गंभीर भाव से कहा। इसके आगे वह कुछ नहीं बोला।

पीछे लौट कर गिरिजा ने देखा, मालती दोनों बच्चों के साथ खड़ी है। "चाची हम दोन ...ा आशीर्वाद दो!" कह कर उसने मालती को भी प्रणाम किया और उसके बाद किशन ने भी मालती के पाँव छूए।

मालती बिना कुछ बोले चुपचाप खड़ी रही। "तुम कुछ बोलती क्यों नहीं चाची, आशीर्वाद क्यों नहीं देती हो? चुपचाप क्यों खड़ी हो?" प्रायः बच्चों की तरह मचलती हुई गिरिजा बोली। फिर चाचा

की ओर मुँह करके बोली : "चाचा, तुम भी इस तरह गंभीर क्यों खड़े हो ?"

"जीजी का क्या हाल है, तुमने पूछा तक नहीं, गिरिजा," पीछे से मालती ने धीरे से, अत्यंत गंभीर भाव से कहा।

"क्या बात है, अम्माँ ?" गिरिजा ने चिंतित भाव से झमिया की ओर देख कर पूछा।

"कुछ नहीं बिटिया, मैं आज बहुत सुखी हूँ। आज तुमने ऐसी अच्छी खबर सुनायी कि मेरा बहुत दिनों से सूना-सूना मन एकदम भर गया है। अब मुझे किसी बात की कोई तकलीफ न रही। तुम दोनों लाख बरिस जिओ, बिटि..." वह प्रायः हाँफती हुई बोल रही थी। अंतिम वाक्य पूरा होते न होते उसे खाँसी का दौरा आया। मालती दौड़ कर धीरे से उसकी पीठ सहलाने लगी। खाँसते-खाँसते सहसा उसने मुँह से खून उगल दिया। कपड़ों के साथ चादर भी खराब हो गयी। महावीर ने झट से, आगे बढ़ कर, उसके सिर के पीछे हाथ रख कर धीरे से उसे तकिये के सहारे लिटा दिया।

"मैं तभी से कह रहा था, भौजी, कि तुम्हें आराम की जरूरत है। उठने से और बहुत बोलने से जोर पड़ गया है जिससे फिर दुबारा मुँह से खून निकल आया है।"

गिरिजा घबरा उठी। "यह क्या हो गया, अम्माँ ? चाचा, यह सब क्या बात है ? क्या इसके पहले भी मुँह से खून निकला था ?" प्रायः रोनी सी आवाज में गिरिजा ने कहा।

"हाँ, आज एक बार पहले भी इस तरह हो चुका है", महावीर ने अत्यंत उदास भाव से धीरे से कहा। "मैं अभी डाक्टर बुलाने ही जा रहा था कि तुम लोग पहुँच गये।"

किशन भी स्तब्ध खड़ा था। 'डाक्टर' शब्द की भनक कान में पड़ने पर वह कुछ चेता और बोला : "मैं अभी डाक्टर को बुला लाता हूँ," कह कर वह जाने लगा।

"ठहरो", कह कर सहसा गिरिजा ने उसे टोका। "किस डाक्टर को बुलाओगे? किसी साधारण डाक्टर को बुलाने से काम न चलेगा। किसी विशेषज्ञ को बुलाना होगा। बाहर मेरी 'कार' खड़ी है। ड्राइवर वहीं होगा, उसे बुला लाओ। मैं उसे समझा दूँगी।" उसकी आँखें भीगी हुई थीं और आवाज भारी थी।

मालती भीतर जा कर एक नयी चादर और एक ताजी धुली हुई सफेद साड़ी ले आयी। गिरिजा की सहायता से झमिया को धीरे से उठा कर खून में रँगी हुई चादर उसने हटा ली और उसके स्थान पर नयी चादर बिछा दी। तनिक पर्दा करके उसकी धोती भी बदल डाली। एक दूसरी धुली चादर ले कर उसने झमिया के ऊपर धीरे से डाल दी। तकिये को ठीक से लगा कर उस पर धीरे से उसने झमिया का सिर इस तरह रख दिया जिससे उसे आराम मिल सके।

किशन ड्राइवर को बुला लाया। गिरिजा ने एक नामी और क्षय रोग के विशेषज्ञ डाक्टर का पता उसे बता दिया और कह दिया कि जितनी फीस पर भी आवे बुला लाना होगा और यदि देर करे तो दुगनी फीस तक देना मंजूर करके जल्दी लिवा लाना।

ड्राइवर चला गया। झमिया कुछ देर तक हाँफती और कराहती रही। उसके बाद बहुत ही धीमी आवाज में, रुक-रुक कर बोली : "क्यों बे-मतलब डाक्टर को बुलाया, बिटिया? आखिर डाक्टर क्या करेगा! उसकी दवाइयाँ मुझसे खायी नहीं जायेंगी। मैं यों ही अच्छी हो जाऊँगी। तनिक-सी खाँसी आयी, तनिक-सा खून

निकल गया, इतने ही से तुम लोग इस तरह घबरा उठे! मेरी कुछ चिंता न करो। मेरा ऐसा भाग कहाँ कि तुम सब लोगों को सुखी देख कर, सबके सामने मर सकूँ!"

"तुम आराम करो, इतना न बोलो भौजी!" भर्रायी हुई आवाज में महावीर बोला। "तुम्हारे पाँवों पड़ कर प्रार्थना करता हूँ। मेरी इतनी सी बात मान लो, नहीं तो तकलीफ बढ़ जायगी।" और उसने सचमुच झमिया के दोनों पाँवों को छू कर उन पर अपना माथा टेक दिया।

"अरे, यह क्या कर रहे हो देवर! अच्छा, अब से मैं कुछ नहीं बोलूँगी।" कहती हुई उतने कष्ट में भी झमिया स्नेहपूर्वक मुस्करा उठी।

उसके ऐसा कहने पर भी महावीर कुछ क्षणों तक उसके पाँवों पर माथा टेके ही रहा। वह इस तरह निश्चल और ध्यानमग्न सा हो रहा था जैसे उसका सारा जीवन् उन दो पाँवों के आधार पर ही टिका हो, उसका सारा अस्तित्व उन्हीं पर आधारित हो।

"अब उठो देवर," उसी तरह स्निग्ध भाव से मुस्कराती हुई झमिया बोली। "मैं वचन देती हूँ, अब चुप रहूँगी।"

महावीर ने धीरे से—जैसे अनिच्छा से—अपना सिर उठाया। झमिया ने—सभी ने—देखा, उसकी दोनों आँखों से दो-दो बूँद आँसू नीचे को ढरक रहे थे।

सफाई से अपने कुर्ते के आस्तीन से उन्हें पोंछ कर महावीर एक किनारे पर जा कर खड़ा हो गया।

"देवर, तुम रोने लगे! छी-छी! तुम अभी तक बिलकुल बच्चे हो! और, मुझे हुआ क्या है, जो इस तरह घबरा उठे हो?

मैं बिलकुल अच्छी हूँ। तुम तनिक भी फिकिर न करो। देखते नहीं, मैं आज कितनी खुश हूँ...''

''भौजी, तुम फिर बोलने लगीं!'' महावीर ने गला साफ कर के कहा।

''यह लो, मैं फिर भूल गयी। निगोड़ी आदत जो पड़ी हुई है बहुत बोलने की! फिर-फिर भूल जाती हूँ कि देवर को मैंने न बोलने का वचन दे रखा है। लो भैया, अब दोनों कान पकड़े, अब न बोलूँगी।'' कह कर उसने सचमुच अपने दोनों कान पकड़ लिये, और फिर तत्काल ''खिल्ल!'' करके अपने परिहास पर स्वयं हँस पड़ी।

सब लोग चित्रवत् खड़े उसकी ओर देख रहे थे। मालती के दोनों बच्चे भी चुपचाप पलँग के पास खड़े एकटक उसकी ओर देख रहे थे। आज वे जैसे अपनी ताई को पहचान ही नहीं रहे थे—एक ही दिन में उसका चेहरा इतना बदल गया था। और दिन जब भी ताई लेटी होती तब वे दोनों उसके सिर पर चढ़ कर बैठ जाते। आज अपनी सहज पशु-बुद्धि से वे सहम कर खाट के डंडे के आगे बढ़ने का साहस नहीं कर रहे थे। झमिया ने दोनों के सिर पर और गालों पर हाथ फेर कर दोनों को प्यार किया। वे गंभीर दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए उस प्यार को जैसे किसी तरह सहन करते रहे।

डाक्टर का इंतजार करते हुए सब को काफी समय बीता हुआ लग रहा था। सभी मौन भाव से खड़े-खड़े कभी झमिया की ओर देखते थे, कभी दरवाजे की ओर।

अंत में बड़े इंतजार के बाद 'कार' के दरवाजे पर रुकने की

आवाज सुनायी दी। थोड़ी देर में ड्राइवर डाक्टर को साथ ले कर भीतर चला आया। डाक्टर पारसी लगता था। महावीर ने उसे पहले झमिया की बीमारी का सारा इतिहास मौखिक रूप से बताया। उसने कहा कि पिछले तीन महीनों से भौजी दिन पर दिन कमजोर होती हुई सी लगती थीं। पर चूँकि वह घर का सभी काम नियमित रूप से करती जाती थीं और सब समय हँसती बोलती रहती थीं, इसलिये किसी को यह शक नहीं हुआ कि उन्हें कोई रोग लग गया है। ऐसा सोचा गया कि मौसम के बदलाव के कारण उनमें साधारण दुर्बलता आ गयी होगी। तीन चार दिनों से कमजोरी कुछ बढ़ी हुई-सी लगती थी, पर तब भी वह अपने रोग को छिपाने में इस कदर सफल रहीं कि किसी के भी मन में कोई आशंका उत्पन्न नहीं हुई। आज सहसा जब वह गुसलखाने में कपड़े धो कर उठीं तब बाहर निकलते ही उन्हें खून की कै हुई। कै होने के बाद से ही उन्हें ऐसी कमजोरी मालूम हुई कि वह चुपचाप पलँग पर लेट गयीं—नहीं तो असमय लेटने की आदत उनकी कभी नहीं रही। उसके बाद अभी कुछ ही समय पहले और एक बार खून की कै हुई।

डाक्टर ने बड़े ध्यान से सारा हाल सुना और फिर उसके बाद थर्मामीटर से झमिया का ताप लिया। उसके बाद अपनी सँड़सीनुमाँ नली के दोनों सिरों को अपने दोनों कानों में लगा कर उसके शरीर की परीक्षा करने लगा। उसके बाद कुछ दूसरी परीक्षाएँ लीं। फिर कुछ प्रश्न किये। अंत में उसने अँगरेजी में अपनी राय दी। उसने कहा कि बीमारी साफ ही फेफड़े से संबंधित क्षय-रोग है। व्यक्तिगत रूप से उसे इस सम्बन्ध में तनिक भी सन्देह नहीं है, पर यदि वे चाहें तो 'एक्स-रे' द्वारा चित्र लिवा कर अपना सन्देह मिटा लें।

गिरिजा ने कहा कि उन लोगों को डाक्टर की बात पर पूरा विश्वास है, 'एक्स-रे' लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। अब वह केवल यह बताने की कृपा करें कि उस बीमारी का इलाज किस ढंग से हो।

डाक्टर ने कहा कि उसकी राय में रोगिणी को तुरन्त पंचगनी के सेनेटोरियम में भेज दिया जाना चाहिये, उससे अच्छा इलाज उस बीमारी का दूसरी किसी जगह नहीं हो सकता। और यदि वहाँ भेजने की सुविधा न हो तो उसे एक विशेष स्थानीय अस्पताल में (जिसका कुछ भला सा नाम डाक्टर ने बताया) अविलंब भरती करवा देना चाहिये। कुछ भी देर करने से रोग नियंत्रण के बाहर चला जायगा, ऐसी आशंका है।

गिरिजा ने उसे धन्यवाद देते हुए कहा कि वे लोग इस संबंध में आपस में सलाह कर के जो निश्चय करेंगे उसकी सूचना शीघ्र ही डाक्टर को दे देंगे। इस बीच तत्काल ही जो दवाएँ आवश्यक हों उन्हें लिख दिया जाय। डाक्टर के कहने पर किशन एक कागज ले आया। डाक्टर ने उस पर एक लंबा-चौड़ा प्रेसक्रिपशन लिख दिया। कागज दे कर, फीस ले कर वह विदा हुआ। गिरिजा ने अपने ड्राइवर को दवा ले आने के लिये कह दिया।

४०

डाक्टर के चले जाने पर झमिया ने महावीर और गिरिजा की ओर देखते हुए कहा : "क्या फिसिर-फिसिर बोल रहा था तुम लोगों का डाक्टर? क्या बीमारी बताता है?"

गिरिजा और महावीर एक दूसरे का मुँह देखने लगे। महावीर अँगरेजी नहीं जानता था। डाक्टर ने जो-कुछ कहा था उसमें से वह

केवल चार ही शब्द समझ पाया था, जिनमें रोग का नाम, पंचगनी और स्थानीय अस्पताल का नाम—ये शामिल थे।

पर झमिया से उसने कहा : "डाक्टर कहता था कि रोग साधारण है और हवा बदली करने से वह जल्दी ही अच्छा हो जायगा।"

"क्यों बिटिया ?" महावीर के अँगरेजी ज्ञान पर उचित ही संदेह कर के झमिया ने गिरिजा से पूछा।

"हाँ, अम्माँ, यही बात कही डाक्टर ने।"

"तुम लोग असली बात मुझसे छिपा रहे हो। मैं सब जानती हूँ। यह बीमारी मैं पहले भी देख चुकी हूँ। मेरी बहन इसी बीमारी से मरी थी। यह छय है। देहात में यह जिसे हो जाता है वह फिर बचता नहीं। पर मैं मरने से तनिक नहीं डरती।"

"नहीं अम्माँ, यह बात नहीं है", अपने आँसुओं को बरबस पीती हुई गिरिजा बोली। "आजकल बड़े-बड़े घातक रोगों के लिए अचूक दवाएँ निकल गयी हैं। और फिर...तुम्हारा रोग तो बहुत साधारण है..."

"मैं यह नहीं पूछती बिटिया, मैं सिरिफ इतना ही जानना चाहती हूँ कि डाक्टर ने इलाज के बारे में क्या कहा।"

"डाक्टर का यह कहना है कि पंचगनी जा कर हवा बदली करने से बीमारी बहुत जल्द अच्छी हो जायगी।"

"और अगर पंचगनी न जाऊँ तो ?"

"तो बहुत तकलीफ उठानी पड़ेगी।"

"तो ठीक है, मैं सब तकलीफ सह लूँगी, पर पंचगनी या और कहीं नहीं जाऊँगी, यह तुम लोग जान लो। देवर को छोड़ कर,

बहन से, बाल-बच्चों से, तुम सब लोगों से अलग हो कर मैं कहीं नहीं जाऊँगी। बंबई आने पर इसी घर में मैंने पाँव रखा था, मरना होगा तो इसी में मरूँगी। पंचगनी जा कर जीने में मुझे कोई सुख नहीं है।"

"हम सब लोग भी तुम्हारे साथ वहाँ जायेंगे, भौजी", मुरझाई हुई आवाज में महावीर ने कहा।

"नहीं देवर, कोई जरूरत नहीं है, इतनी तकलीफ उठाने की। मैं यहाँ आराम से हूँ, मुझे आराम से रहने दो। जो-कुछ दवा-दारू यहाँ हो सकती हो कर लो, जिससे तुम लोगों को तसल्ली हो जाय। मैं अपनी तरफ से तो कोई दवा भी नहीं खाना चाहती।"

"पर यह कैसे हो सकता है, अम्माँ?" अत्यंत निराश हो कर गिरिजा ने कहा। "पंचगनी तुम्हें जाना ही होगा। वहाँ तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा, बल्कि हर तरह से आराम रहेगा..."

"न, न, बिटिया, न! मुझसे कहीं जाने को न कहो। और जो कुछ भी तुम कहोगी मैं मानने के लिये तैयार हूँ, पर इस घर को, इस कमरे को और इस खाट को छोड़ कर कहीं जाने को न कहो..."

"भौजी, तुम्हारे ही आराम के लिए ऐसा कहा जा रहा है," महावीर ने भर्राई हुई आवाज में कहा।

"तुम भी मुझे अपने पास से निकालने के लिए इन लोगों का साथ देने लगे, देवर? कम से कम तुम तो ऐसा न कहो!" उसके क्षीण स्वर में एक मार्मिक कातरता छिपी थी।

महावीर आवेश न रोक सकने के कारण मुँह फेर कर खड़ा हो गया और कुर्ते के आस्तीन से गीली आँखें पोंछने लगा।

अंत में सब लोग जब कह-सुन कर हार मान गये तब यही तय हुआ कि झमिया कहीं नहीं जायगी, घर ही पर रहेगी और डाक्टर एक बार रोज आ कर स्थिति जान जाया करेगा। सूचित किये जाने पर डाक्टर ने कहा कि कम से कम दो नर्सें नियुक्त कर ली जायँ जो बारी-बारी से दिन और रात रोगिणी के साथ रह कर उसकी परि-चर्या करती रहें। जब झमिया को डाक्टर के इस झुकाव से परिचित कराया गया तब उसने पूरी शक्ति से उसका विरोध किया।

उसने कहा : "मैं अब इस उमिर में किसी को अपना बदन नहीं छूने दूँगी। मुझे नर्स-वर्स की जरूरत ही क्या है। मैं अपने-आप अपनी टहल कर लिया करूँगी..."

"कोई ईसाई मिस नहीं, भले घर की हिंदू नर्सें तुम्हारे लिये रखी जायेंगी, अम्माँ," गिरिजा ने समझाते हुए कहा। "तुम्हारी जैसी हालत है उसमें इस तरह का हठ करना उचित नहीं है।"

"ईसाई या हिंदू की बात नहीं है। ईसाई क्या आदमी नहीं हैं? भगवान सब का एक ही है, बिटिया। वह पापी-पुण्यात्मा, नीच-ऊँच, सब की नाव पार लगाने वाला है। मुझ जैसी अभागिनी और पापिनी की लाज उसने न रखी होती तो आज मेरा—और तेरा भी—कौन ठिकाना था! कोई ईसाइनी क्या मुझ से बढ़ कर पापिन हो सकती है! इसलिये मैंने उस मतलब से नहीं कहा था। पर मैं किसी से भी अपनी टहल कराना नहीं चाहती। जिन्दगी-भर अपनी टहल आप करती रही हूँ, अब आखिरी वक्त दूसरों को कष्ट दूँ, यह कैसे हो सकता है! यह मेरे किये न होगा, बिटिया।"

गिरिजा और महावीर दोनों बहुत परेशान थे झमिया के इस अनुचित हठ से। उसे मनाने और समझाने का कोई उपाय वे नहीं सोच

पाते थे। उसे समझाने में हर तरह असफल रहने पर वे लोग लाचारी की हालत में चुप रहे। डाक्टर ने झमिया को अधिक हिलने डुलने से मना कर रखा था, और भरसक लेटे ही लेटे पूर्ण विश्राम करने की सलाह दे रखी थी। पर झमिया प्राकृतिक आवश्यकताओं के लिये स्वयं ही उठ कर धीरे-धीरे गुसलखाने जाती, स्वयं ही हाथ-मुँह धोती और स्वयं ही कपड़े बदलती थी। किसी की भी सहायता लेना वह भरसक पसंद नहीं करती थी।

कुछ दिनों तक उसमें इतना शारीरिक बल शेष रहा कि वह इच्छा-शक्ति के पूर्ण प्रयोग से किसी तरह अपने-आप उठती बैठती रही। पर दवाओं के बावजूद उसमें तनिक भी शक्ति नहीं बढ़ी। कुछ ही दिन बाद यह स्थिति आ गयी कि इच्छा-शक्ति ने भी जैसे जवाब दे दिया। वह अपने-आप उठने-बैठने में अपने को असमर्थ मालूम करने लगी। तब महावीर और गिरिजा ने उससे सम्मिलित रूप से यह आग्रह किया कि वह नर्सों की सेवा स्वीकार करने के लिये राजी हो जाय।

"तुम लोग यही चाहते हो तो बुलाओ, मैं अब नहीं रोकूँगी। जब बीमारी ने ही मुझे लाचार कर दिया तब मैं कहाँ तक रोकूँ। आप भी तकलीफ पाऊँ और तुम लोगों को भी तकलीफ दूँ, यह ठीक नहीं।"

उसी दिन गिरिजा ने दो नर्सें अच्छे वेतन पर नियुक्त कर लीं—एक दिन की परिचर्या के लिये, दूसरी रात के लिये। यह तय हुआ कि प्रति सप्ताह दोनों की 'ड्यूटी' बदलती रहेगी।

नर्सों की नियुक्ति के बाद से झमिया के स्वास्थ्य में कुछ-कुछ सुधार दिखायी देने लगा। डाक्टर ने भी परीक्षा करके कहा कि

पहले से रोगिणी की दशा कुछ अच्छी है। अनुभवी नर्सों की परिचर्या में रोगिणी का सारा कार्यक्रम नियमित रूप से चलने लगा। समय पर हाथ-मुँह धोना, समय पर डाक्टरी हिदायत के अनुसार भोजन करना, समय पर दवा लेना, सभी काम निश्चित योजना के अनुसार निश्चित समय पर होने लगे।

धीरे-धीरे घर वालों को उसकी बीमारी की आदत सी पड़ गयी। गिरिजा और किशन फिर से फिल्म की 'शूटिंग' के चक्कर में व्यस्त रहने लगे। दोनों दिन में एक या दो बार झमिया के पास आ कर कुशल पूछ जाते। कभी डाक्टर मिल जाता तो गिरिजा उससे हाल जान लेती, नहीं तो नर्सों से पूछती और बीच-बीच में अपनी अम्माँ से भी पूछ लेती कि वह कैसा अनुभव कर रही है। झमिया अपनी भयानक दुर्बलता के बावजूद सब समय हँसती रहती और बराबर यही उत्तर देती कि उसे कोई कष्ट नहीं है और वह बहुत प्रसन्न है।

४१

इस प्रकार झमिया अपनी बीमारी को प्रायः तीन महीना बड़ी शांति से ठेल ले गयी। इस अर्से में 'अखंड ज्योति' की 'शूटिंग' बड़ी तेज रफ्तार से चलती रही और एक दिन 'शूटिंग' समाप्त हो गयी। फिल्म का उद्घाटन होने पर उसका जो स्वागत हुआ उसकी आशा गिरिजा ने नहीं की थी। यद्यपि वह प्रारंभ से ही इस फिल्म की सफलता के लिये पूरी लगन से जुट पड़ी थी, तथापि उसकी प्रगति में कई अड़चनें उसके आगे उपस्थित होती चली गयी थीं। शंकरलाल जी के ही स्टूडियो में शूटिंग हुई थी। उसी को गिरिजा ने

किराये पर माँगा था। अपना अलग स्टूडियो खड़ा करने और नयी मशीनरी मँगाने योग्य रुपया अभी उसकी नयी कंपनी के पास नहीं था। पर शंकरलाल जी चूँकि गिरिजा के अलग हो जाने के कारण बहुत असंतुष्ट थे, इसलिये उन्होंने और उनके दल से संबंधित व्यक्तियों ने सहयोग देने के बजाय बराबर परोक्ष रूप से विघ्न ही डाला। आधी 'शूटिंग' के बाद हेमकुमार भी उदासीन हो गया और उसने न कोई सुझाव दिया न सक्रिय सहायता की। झमिया की बीमारी के बाद गिरिजा स्वयं भी पूरी लगन से, आंतरिक उत्साह से जुट नहीं पायी थी। एक नये अभिनेता (किशन) को प्रधान नायक के रूप में खड़ा करके उसने जो खतरा मोल लिया था वह अलग था। इन सब कारणों से इस बार उसे फिल्म की सफलता में बहुत संदेह था।

इसलिये उसके आश्चर्य और हर्ष का ठिकाना न रहा जब चारों ओर से उसके पास बधाइयों के तार पहुँचने लगे। कई वितरक व्यक्तिगत रूप से उसे बधाइयाँ देने स्वयं बंबई पहुँच गये। सर्वत्र 'अखंड ज्योति' की अभूतपूर्व सफलता की ही चर्चा सुनने और पढ़ने में आने लगी। पूर्णतः अकेले अपने ही प्रयास से तैयार की गयी फिल्म की अपने से संबंधित सभी पिछली फिल्मों की अपेक्षा कई गुना अधिक सफलता से उसे लगा कि उसका माथा फिर जायगा।

उस दिन वह सुबह जल्दी ही नहा-धो कर तैयार हो गयी और कपड़े बदल कर किशन के यहाँ चली गयी। किशन किसी फ्रांसीसी दार्शनिक की पुस्तक पढ़ने में तल्लीन था। गिरिजा को देख कर उसके मुख का अध्ययन-जनित गंभीर भाव स्निग्ध मुसकान में बदल गया। पुस्तक को उलट कर उसने पास ही एक छोटी-सी मेज पर रख दिया।

"क्या खबर है?" उसने गिरिजा के मुख पर निखरे हुए उस

दिन के विशेष सौन्दर्य की ओर गौर करते हुए कहा।

"सब ठीक ही है। मैं आज तुम्हें बधाई देने आयी हूँ।"

"किस बात के लिये?" आश्चर्य से किशन ने पूछा।

"फिल्म की अप्रत्याशित सफलता के लिये," एक विना बाँहों वाली कुर्सी को खींच कर उस पर बैठते हुए गिरिजा ने कहा।

किशन भी पलँग पर ठीक से जम कर बैठ गया। "पर मुझे विशेष रूप से बधाई देने का कारण क्या है? उसकी क्या आवश्यकता तुमने समझी?" विस्मित और कुतूहल-मिश्रित भाव से किशन ने कहा।

"इसलिये कि तुम्हीं उस फिल्म के प्रधान नायक हो और प्रधान नायक पर आधी से अधिक सफलता निर्भर करती है।"

"और प्रधान नायिका, प्रधान निर्देशिका और प्रधान संचालिका को क्या उस सफलता का कोई श्रेय नहीं है?" किशन के मुख पर शरारत-भरी मुसकान थी।

"है क्यों नहीं", कुछ झेंप कर गिरिजा बोली। "पर विवाह में बधाई वर ही को दी जाती है, यद्यपि सारा काम दूसरे लोग निभाते हैं। प्रधान नायक वर से कुछ कम नहीं होता!"

"और वधू को बधाई देना क्या मना है?" किशन की मुसकान में दुष्टता की मात्रा बढ़ती चली जा रही थी। उसे अच्छे विनोद का अनुभव हो रहा था।

"वधू को भी बधाई दी जाती है, पर..."

"न, न, पर-वर की इसमें कोई बात नहीं है। मैं वधू को वर की ओर से बधाई देता हूँ!" इस बार किशन की दुष्टता विजय की सीमा तक पहुँच चुकी थी।

"वधू धन्यवाद देती है", झेंप को सहज रूप में परिणत करने का प्रयत्न करती हुई गिरिजा बोली—यद्यपि वह अभी एक-चौथाई दृष्टि को किशन से चुराये हुए थी।

"तब आज सचमुच वर की बहुत बड़ी विजय सिद्ध हुई। अब केवल वर की एकमात्र जिज्ञासा शेष रह गयी है।" किशन की आँखों में उल्लास चमक रहा था।

"वह क्या?"

"वह यह कि वर और वधू की इस पारस्पारिक स्वीकृति को सामाजिक रूप कब दिया जायगा? वह शुभ दिन कब आयेगा?"

"दुत, तुम बड़े दुष्ट हो!"

"सचमुच गिरिजा," सहसा कुछ गंभीर हो कर किशन बोला, "मैं बहुत दिनों से सोच रहा हूँ कि वह दिन अब जल्दी ही आ जाना चाहिये। अब अधिक धैर्य मेरे लिये कष्टकर सिद्ध हो रहा है।"

"जल्दी ही हो जायगा—इसी महीने के भीतर। तनिक धीरज और रखो।" गिरिजा की मुसकान इस बार सहज स्नेह से भरी हुई थी। अब की वह पूरी दृष्टि से, बिना लेशमात्र संकोच के, किशन की ओर देख रही थी।

कुछ देर तक दोनों एक अपूर्व आनंदानुभूति के साथ मौन भाव से एक-दूसरे की ओर देखते रहे। उसके बाद गिरिजा सहसा फिर बोली: "अब चलो, तनिक अम्माँ का हाल जान लें। आज मैं अभी तक उसके पास नहीं जा पायी हूँ और तुम भी नहीं गये।"

"चलो," कह कर किशन बनियाइन के ऊपर एक कुर्ता डाल कर तैयार हो गया और फिर दोनों घर से बाहर निकल कर झमिया की कुशल जानने के लिये निकल पड़े।

४२

जब दोनों झमिया के कमरे में पहुँचे तब नर्स बहुत चिंतित दिखायी दी। महावीर और मालती भी एक कोने में अत्यंत गंभीर भाव से चुपचाप खड़े थे। सामने आने पर किशन और गिरिजा ने देखा कि झमिया कोटरों में धँसी हुई अपनी चमकती हुई आँखों से महावीर की ओर देखती हुई सहज-स्निग्ध भाव से मंद-मंद मुसका रही है।

"आज मैं बहुत अच्छी हो गयी हूँ, देवर", वह अत्यंत क्षीण स्वर में, बड़े कष्ट से कह रही थी। "आज मुझे कहीं...किसी तरह का...कोई कष्ट नहीं हो रहा है। ऐसा आराम...मैंने अपनी जिन्दगी में...कभी नहीं पाया..."

फिर गिरिजा और किशन को देख कर, बिना तनिक भी शिकायत के स्वर में, उसी तरह मंद-मंद मुसकाती हुई बोली: "तुम दोनों...आ गये? बहुत...अच्छा किया। मैं सुबह से...तुम्हीं दोनों की बाट...जोह रही थी। सोचा था कि...शंभू से कह कर...तुम्हें बुला लूँगी, पर फिर...भूल ही गयी। हिः हिः हिः!" कह कर वह बहुत ही खोखली हँसी हँसी। कुछ रुक कर फिर धीरे से बोली: "ऐसा मीठा-मीठा सा...आराम मालूम...करने लगी कि सब कुछ... भूल कर...बस सो जाने और...मीठे-मीठे सपने देखने को...जी करता था। शायद मैं सो भी गयी...और कुछ अच्छे से सपने...भी देखने लगी। वैसे...शायद...आँखें खुली थीं। ठीक कुछ कह नहीं सकती ...पर सब समय...लगता था कि...कुछ भूल गयी हूँ। क्या भूल गयी हूँ...यह कुछ याद ही न...आता था। तुम दोनों को...देख कर

याद आया...मैं तुम लोगों को ही बुलाना चाहती थी। बड़ी खुशी हुई...तुम सबको देख कर। अब फिर लगता है...मैं सो जाऊँगी... और अच्छे-अच्छे सपने...देखूँगी..."

वह स्पष्ट ही अत्यंत कष्ट से बोल रही थी, पर मुसकान एक क्षण के लिये भी उसकी खोखली आँखों से, पोले गालों से और सूखे होंठों से न छूटी। किंतु वह मुसकान कैसी आतंकजनक थी!

"अब न बोलो भौजी, तुम्हें कष्ट हो रहा है। अब तुम आराम करो..." आँखों से टपाटप आँसू गिराते हुए महावीर बोला।

"अब...आराम ही...है देवर...सचमुच...बहुत आराम है... तुम्हारा भला हो...आसिरवाद देती हूँ...मुझसे...उमिर में...बड़े... हो, पर...रिश्ते में...मैं ही बड़ी हूँ...हिः हिः...क्यों? है न?... तुम...सुख...से रहोगे...ये दोनों...गुलबि...गिरिजा...निगोड़ी याद ...ही मेरी...ऐसी है...नाम ही...भूल...जाती हूँ...और किशन... ये दोनों...तुम्हारे...प्यारे...बच्चे हैं...ये तुम्हारी...टहल...करेंगे ...सुख से...रखेंगे...और (मालती की ओर देख कर) बहन... यह भी बड़ी ही भली...तुम्हारी...सच्ची सेवा...करने वाली...लछमी बहू...है। बहन...तुम्हें भी...आसिरवाद देती हूँ...गिरिजा...किशन ...तुमको भी...और उन छोटे...प्यारे...बच्चों को भी...और देवर, ...तुम..." अंतिम शब्द उसने फुसफुसा कर कहा।

उसका दम फूलता जा रहा था और बोलने के साथ ही साँस भी रुक-रुक कर चलने लगी थी। वह चाहने पर भी बोल नहीं पाती थी। केवल महावीर की ओर देखती हुई होंठों को हिलाती हुई जैसे कुछ कह रही थी, पर केवल होंठों का हिलना ही दिखायी दिया और आवाज न निकल सकी।

नर्स ने अत्यन्त घबराहट के साथ धीरे से महावीर से और गिरिजा से कहा : "वह सिंक' कर रही हैं। अपने हिन्दू धर्म के अनुसार अंतिम समय जो कुछ करना उचित समझो कर लो..."

सहसा महावीर के और गिरिजा के होश जैसे ठिकाने लगे। उन लोगों ने अभी तक इस बात की कल्पना भी नहीं की थी कि झमिया अंतिम साँस ले रही है। वे सोच रहे थे कि वह सचमुच आराम का अनुभव कर रही है और अब थकावट के कारण सो जाना चाहती है। उन्हें यह पता नहीं था कि झमिया फेफड़े के क्षयरोग की मरीज रही है, और इस विशेष रोग का रोगी अंतिम समय तक पूरे होश-हवास में रहता है, और अक्सर मरने के ठीक पहले अपने को भला चंगा अनुभव करता है।

वास्तविकता सामने आते ही गिरिजा "अम्माँ!" कह कर रो पड़ी और घुटने टेक कर, उसके सिर के पास अपना सिर रख कर सिसकने लगी। महावीर भी दहाड़ मार कर "भौजी-ी-ी!" कह कर रो पड़ा और उसके दोनों पाँवों को चादर सहित अपनी बाँहों से जकड़ कर पागलों की तरह खोयी-खोयी सी आँखों से उसकी ओर ताकता रह गया। झमिया भी एकटक उसकी ओर देखती हुई ऊर्द्धश्वास भरने लगी। गिरिजा के सिर की ओर उसने केवल अपना हाथ बढ़ा दिया था, पर देख वह महावीर की ओर ही रही थी। महावीर से फिर कुछ कहने को उसके होंठ हिलने लगे और हँसती हुई आँखों से दो बूँद आँसू टपकाती हुई वह केवल उसकी ओर देखती ही रह गयी। इस बीच मालती भीतर जा कर एक टुकड़ा सोना और कुछ तुलसी के पत्ते—झमिया के ही हाथों लगाये हुए पेड़ से—ले आयी और आँसू पोंछते हुए उसने उन दोनों चीजों को झमिया के मुँह में धीरे से

डाल दिया। पर झमिया तब भी केवल महावीर की ओर ही देख रही थी और महावीर भी उसके दोनों पाँवों को पकड़े हुए भीगी आँखों से स्तब्ध, चित्रवत् उसी की ओर देख रहा था, जैसे उसके होठों—और अंतरतम मन की भी—भाषा वह सुन और समझ रहा हो।

इतने में शंभू ने सूचना दी कि वह डाक्टर साहब को बुला लाया है। मालूम हुआ कि नर्स ने नाजुक हालत देख कर शंभू को टैक्सी से डाक्टर को तुरंत बुला लाने के लिये भेज दिया था—गिरिजा और किशन के पहुँचने के कुछ ही समय पहले।

डाक्टर बड़ी तेज चाल से भीतर आया। भीतर आ कर उसने झमिया को अंतिम साँसें भरते देख कर बहुत ही धीमे स्वर में कहा: "मुझे दुःख है, मैं इन्हें नहीं बचा सका। पर इसमें मेरा दोष नहीं था, आप लोग जानते हैं।" और यह कह कर वह बिना फीस लिये ही उलटे पाँव, उसी तेज चाल से लौट गया।

कुछ देर तक झमिया गिरिजा के सिर पर हाथ रखे हुए महावीर को उसी तरह हँसती-रोती आँखों से एकटक देखती रही। फिर अंत में एक हिचकी सी उसे आयी, उसकी नाक से सफेद झाग की तरह कुछ निकला, और फिर उसने सदा के लिए आँखें बंद करके गिरिजा की ओर गर्दन लटका दी।

उपसंहार

एक वर्ष बाद। शींव से कुछ दूर, माटुंगा की एक साफ-सुथरी और अपेक्षाकृत शांत और एकांत सड़क पर एक नये मकान के फाटक के बाहर कई कारें खड़ी हैं। फाटक के बाएँ खंभे से जुड़े हुए संगमर्मर के एक पत्थर पर बड़े-बड़े अक्षरों में खुदा हुआ है? 'मातृ-मन्दिर'। ऊपर मेहराब पर एक लाल कपड़े पर रूई के अक्षरों में लिखा हुआ है: 'स्वागतम्'। भीतर कंपाउंड में एक लाउड-स्पीकर 'सुबह के भूले' और 'अखंड ज्योति' के गीतों के रेकर्ड बारी-बारी से बजा रहा है। 'लान' में कई न-बहुत-छोटी-न-बहुत-बड़ी मेजें बड़े करीने से सजा कर लगायी गयी हैं, जिन पर चाँदी की तरह झलझलाते हुए झालरदार कपड़े बिछे हैं। निमंत्रित नर-नारियों के आने-जाने का क्रम जारी है। केवल एक-चौथाई मेजें खाली पड़ी हैं, शेष सब निमंत्रित व्यक्तियों से घिरी हुई हैं। आगत अतिथियों के सम्मिलित हास्यालाप से सारा वातावरण एक मधुर किंतु अस्पष्ट गुंजन से मुखरित हो उठा है।

सहसा चारों ओर से मीठे स्वर में तालियाँ बज उठती हैं। तालियाँ बजने का कारण स्पष्ट ही वर-वधू का आगमन लगता है। दोनों सादी किन्तु सुघड़ पोशाक पहने हुए, मंद-मंद, स्निग्ध-मधुर मुसकान मुख पर झलकाते हुए, सब की ओर प्रेमपूर्वक हाथ जोड़ते हुए आते हैं, और बीच में विशेष रूप से सुसज्जित एक मेज पर धीरे से बैठ जाते हैं।

आज गिरिजा और किशन के विवाह का शुभ-दिन है। किशन हलके सुनहरे रेशम का बुशशर्ट और उसी रंग का पैंट पहने है।

गिरिजा मदुरा की बनी हुई एक कत्थई रंग की मद्रासी साड़ी पहने है। आज ही उन लोगों ने नये घर में प्रवेश किया है, जिसे गिरिजा ने अपनी विशेष योजनानुसार, सादगी और सुविधा का ध्यान रखते हुए, तैयार करवाया है। और आज ही उन दोनों का विवाह भी हुआ है। और सबसे विशेष बात यह है कि आज ही झमिया का श्राद्ध-दिवस भी है। गिरिजा ने दोनों शुभ-कार्यों के लिये इस दिन को विशेष रूप से चुना है। महावीर ने पंडित जी से पूछा था और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में बताया था कि माता के श्राद्ध के दिन लड़की का विवाह नहीं हो सकता, पर गिरिजा इस संबंध में किसी की कोई भी आपत्ति सुनने को तैयार नहीं थी। वह पिछले कई महीनों से इस विशेष दिन की प्रतीक्षा कर रही थी। अपनी अम्माँ की पुण्य-स्मृति के प्रथम दिवस को अपने जीवन की विशेष महत्वपूर्ण घटना के साथ संबद्ध करने के लिये वह अत्यन्त उत्सुक थी। बाद में महावीर को भी उसकी बात जँच गयी थी। उसने सोचा कि भौजी के श्राद्ध-दिवस से अधिक मंगलकारी अवसर दूसरा कौन हो सकता है!

महावीर भी खद्दर का कुर्ता, खद्दर की धोती और उसी कपड़े की किश्तीनुमाँ टोपी पहने, सभी अतिथियों को प्रेमपूर्वक हाथ जोड़ता हुआ गिरिजा और किशन वाली मेज पर बैठ गया। उसी की बगल में मालती अपने दोनों बच्चों के साथ बैठ गयी। मालती शुभ-दिन जान कर हलके गुलाबी रंग के बनारसी रेशम की जरीदार और सलमे-सितारेवाली साड़ी पहने थी और दोनों बच्चे भी नये और रंगीन कपड़े पहने थे।

अतिथियों में सभी सफेद-पोश नर-नारी ही नहीं थे, बल्कि महावीर की डेयरी में काम करने वाले सभी नौकर और गिरिजा के

स्टूडियो में काम करने वाले सभी मजूर अपनी पत्नियों और बाल-बच्चों के साथ उपस्थित थे। वे सभी, संभ्रांत अतिथियों के बीच में, सुसज्जित मेजों को घेर कर बैठे थे। 'संभ्रांत अतिथियों' में शंकरलाल जी, हेमकुमार और फिल्म क्षेत्र के प्रायः सभी विशिष्ट व्यक्तियों के अतिरिक्त मोहनदास, चंद्रमोहन, महेन्द्र, शांता, मीना और लीला भी थे। सभी मेजों पर विविध व्यंजन पहले ही से सजा कर रखे हुए थे और चाय की सामग्री भी। किसी एक होटल के वर्दीदार नौकर प्रत्येक मेज पर चीनी के बर्तनों में गरम-गरम चाय ला कर रख जाते थे।

वर और वधू के आरम्भ करने पर सभी अतिथि भी व्यंजनों के साथ 'न्याय करने' पर जुट गये।

चाय पी चुकने के बाद जब अतिथि एक-एक करने उठने लगे तब गिरिजा भी उठी और उसने किशन को भी अपने साथ चलने के लिये संकेत किया। जिन अतिथियों से किशन का परिचय नहीं था उन सब के पास उसे ले जा कर गिरिजा ने उसका परिचय कराया। शांता ने हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की, पर दूसरे अतिथियों की मुसकान में निहित झेंप और खीझ का भाव गिरिजा से छिपा न रहा।

उसके बाद गिरिजा ने किशन से संकेत द्वारा भीतर चलने के लिये कहा। मकान के भीतर प्रवेश करके वह एक विशेष कमरे में उसे ले गयी। कमरे बीच में एक छोटी सी गोल मेज के ऊपर एक तश्तरी में पान सजा कर रखे हुए थे। गिरिजा ने तश्तरी उठा कर किशन के आगे बढ़ायी और कहा: "लो खाओ!" उसकी आँखों में शरारत भरी थी।

"यह क्या! मैं पान कभी नहीं खाता। तुम जानती हो। तब

आज यह आग्रह क्यों?" किशन ने अच्छे विनोद का अनुभव करते हुए कहा।

"आज खाना पड़ेगा। विवाह के बाद के नये जीवन को पूरे कर्तव्य-बोध से निभाने का बीड़ा आज तुम्हें उठाना ही होगा! लो, इसमें तुम्हारी नाँह-नूँह आज नहीं चलेगी!"

"अच्छा लाओ!" कह कर विनोद (और प्रेम) से मुसकराते हुए किशन ने एक बीड़ा उठा कर मुँह में डाला। बीड़ा काफी बड़ा था और किशन से ठीक से खाते नहीं बनता था। बार-बार उसका नुकीला सिरा उसके तलुवे से अटक जाता, जिससे गुदगुदी का अनुभव उसे होता था। वह बार-बार उसे जीभ से ऊपर खींच कर ठीक से चबाने का प्रयत्न करता था, पर कहीं न कहीं गड़-बड़ा जाता था। अपने असफल प्रयत्न पर उसे सहसा हँसी आगयी, जिसके फलस्वरूप पीक का एक बड़ा सा छींटा उसके बुशशर्ट पर पड़ गया और वह रँग गया।

"वाह वर महाशय! आप तो पूरे स्वाँग ही बन गये! देखो, इस तरह खाते हैं," कह कर गिरिजा ने बड़ी सफाई से एक बीड़ा उठाया और अपने मुँह में डाल लिया। वह भी पान खाने की आदी नहीं थी, पर वह बड़ी सफाई से उसे चुपचाप चबाती रही। वह जानती थी कि जब तक वह पूरा चबा कर निगल न लिया जाय तब तक इस कला में उसके समान नौसिखिया के लिये मुँह से एक भी शब्द निकालने में खतरा है।

सहसा किशन दुष्टतापूर्वक बोल उठा: "यह लो तुम्हारे कपड़े में भी पीक टपक पड़ी!"

"कहाँ!" घबरा कर गिरिजा ने पूछा और उसके बोलते ही

सचमुच एक छींटा उसकी साड़ी पर पड़ गया।

किशन अट्टहास करता हुआ ताली बजाने लगा।

"तुम बहुत दुष्ट हो!" गिरिजा ने बच्चों की तरह मचलने के-से स्वर में कृत्रिम क्रोध प्रकट करते हुए कहा।

छींटे को रूमाल से पोंछ कर, पान को किसी तरह निगलने के बाद गिरिजा ने सहसा अपेक्षाकृत गंभीर स्वर में कहा: "अच्छा, अब परिहास छोड़ो। मैं जिस आवश्यक काम के लिये तुम्हें यहाँ लायी हूँ पहले उसकी ओर ध्यान दो।"

"वह क्या?" किशन ने भी कुछ गंभीर हो कर, उत्सुकता से पूछा।

गिरिजा ने आले की ओर संकेत किया, जहाँ एक सुनहरे फ्रेम में मढ़ा हुआ काफी बड़े आकार का चित्र एक झीने से सफेद कपड़े से ढका हुआ रखा था।

"तुम्हें इस चित्र का उद्घाटन करना होगा।"

"वह किसका चित्र है?"

"अम्माँ का।"

सहसा किशन के चेहरे पर एक शांत गंभीरता छा गयी। उसके लिये यह बिलकुल नयी जानकारी थी कि गिरिजा की अम्माँ का कोई फोटो सुरक्षित है।

"यह कहाँ से आया तुम्हारे पास?"

"एक दिन कभी परिहास में ही मैं एक छोटा सा केमरा ले आयी थी। तब अम्माँ बीमार नहीं हुई थी। मैं तब फोटो उतारना सीख ही रही थी। मैंने परिहास में ही अम्माँ का फोटो ले लिया था। बाद में अम्माँ को भी मैंने वह छोटा सा फोटो दिखाया था। देख कर अम्माँ

हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी थी। तब मैंने भी नौसिखिया हाथों से लिये गये उस फोटो को कोई महत्त्व नहीं दिया था और उसे निगेटिव के साथ अपनी मेज के ड्राअर में लापरवाही से डाल दिया था। प्रायः दो महीना पहले एक दिन कोई एक जरूरी कागज खोजने के लिये मैंने वह ड्राअर खोला। सहसा वह भूला हुआ फोटो निगेटिव के साथ मेरे हाथ लग गया। इतनी बड़ी चीज ऐसे अप्रत्याशित रूप से मेरे हाथ लगेगी इसकी कल्पना मैंने नहीं की थी। मैंने किसी को नहीं बताया। चुपचाप उसे एक नामी फोटोग्राफर के यहाँ ले गयी और उसे 'इनलार्ज' करने के लिये कहा। जब 'इनलार्ज' करा लिया तब एक अच्छे चित्रकार के पास उसे ले गयी और 'आयल पेंटिंग' के लिये उसे दे दिया। कल ही मैं बिना किसी को बताये, चोरी-छिपे, यह चित्र कलाकार के यहाँ से लायी हूँ। आज मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं है, किशन!" कहते हुए गिरिजा का स्वर गद्गद हो आया।

किशन पुलकित भाव से उसकी बातें सुन रहा था। गिरिजा उसी गद्गद स्वर में बोलती चली गयी: "जानते हो किशन, मैंने अपने इस नये मकान का नाम मातृ-मन्दिर क्यों रखा? मैं जानती हूँ कि कुछ मूर्ख इस नाम से 'मेटर्निटी होम' की कल्पना करने लगेंगे। पर मेरा उद्देश्य कुछ दूसरा ही है। तुम्हें याद है, बचपन में एक दिन हम दोनों मिट्टी का एक मंदिर बनाते हुए इस बात के लिये झगड़ पड़े थे कि उसमें किस देवता की स्थापना होगी? तब हम दोनों आपस में झगड़ने पर भी किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँच सके थे। आज मैंने उसी प्यारी स्मृति में इस पक्के मन्दिर का निर्माण किया है। और इसमें किस देवता की स्थापना करनी होगी, इस संबंध

में भी मैं आज निश्चित हूँ। इसमें किसी पौराणिक देवता की नहीं, बल्कि जन-देवता की स्थापना होगी। और उस जन-देवता की मूल आत्म-प्रेरिका मातृ-शक्ति का प्रतीक है—मेरी यही स्वर्गीया, भोली और भुलायी हुई अम्माँ। आज के इस शुभ और साथ ही पुण्य-दिन में हम दोनों यह पवित्र प्रतिज्ञा करें, किशन, कि हम अपने नये जीवन में, अपने वैभव में, कभी एक दिन के लिये भी इस वज्र-सत्य को न भूलें कि मैं उसी झमिया की लड़की हूँ जो जीवन-भर या तो खेतों में काम करती रही या चूल्हे-चक्की के कामों में जुटी रही; जो मरने के कुछ ही समय पहले तक कमरों में झाड़ू लगाती रही और मैले कपड़े फींचती रही। और तुम उस जग्गू के लड़के हो जो जीवन-भर अपने दो हाथों के श्रम पर ही भरोसा करता रहा। अम्माँ के इस चित्र के उद्‌घाटन का महत्त्व इसी बात पर निर्भर करता है। मुझे प्रसन्नता है कि मैं आज बहुत दिनों बाद अपने अंतर की बात खुल कर तुम्हारे आगे व्यक्त कर पायी हूँ। अब मैं जाती हूँ, चाचा और चाची को बुला लाती हूँ। तब तुम इस दुर्लभ चित्र का उद्‌घाटन करोगे।" कह कर गिरिजा बाहर चली गयी।

कुछ ही देर बाद वह महावीर, मालती और दोनों बच्चों के साथ फिर उसी कमरे में लौट आयी जहाँ किशन ध्यानमग्न अवस्था में उस ढके हुए चित्र के सामने सिर झुकाये खड़ा था।

"अब करो उद्‌घाटन!" गिरिजा ने उसके निकट जा कर कहा।

किशन का ध्यान टूटा। उसने चित्र के निकट जा कर धीरे से कपड़े को हटाया, एक क्षण में झमिया का चिर-परिचित भोला और सहज-सरस स्नेह से मुस्कराता हुआ मुख सब पर जैसे मंगलमय आशीर्वाद की वर्षा करने लगा। किशन और गिरिजा ने, बिना किसी के आदेश

के, अंतःप्रेरणा से, झुक कर उसके प्रति प्रणाम किया। उनकी देखा-देखी मालती और बच्चों ने भी वैसा ही किया। महावीर विस्मित, पुलकोच्छ्वसित आँखों से उस चित्र की ओर देखता रह गया। धीरे-धीरे उसकी आँखों से आनन्दाश्रु ढुलकते हुए दोनों गालों से हो कर बहने लगे। पर उसकी आँखों की हर्ष-विह्वल दृष्टि में उन आँसुओं से कोई अंतर नहीं पड़ा। कुछ देर तक वह उसी निश्चल और रोमांचित भाव से झमिया की उस सजीव सी लगनेवाली प्रतिमा की ओर निहारता रहा। उसके बाद धीरे-धीरे चित्र के एकदम निकट जा कर उसने आले पर, चित्र के ठीक नीचे, अपना माथा टेक दिया।

समाप्त